संपादक
एक साहित्याचार्य

कविता-कौमुदी

तीसरा भाग-संस्कृत

१९२४

सर्व शक्तिवान्
ओ३म् पिता नमस्ते

संसार के लिये नियम पालन करो।

१ ईश्वर की प्रार्थना रोज़ करो
२ लड़के लड़कियों को विद्या पढ़ाओ।
३ विद्या समाप्त होने पर विवाह करो।
४ उत्तम कामों के लिये दान राजा को देकर कराओ।
५ ऋषी साधुओं की सेवा करो।
६ मनुष्यों को दूसरों के धर्म के विरोधी मत बनों विनको साहायता दो
७ पशुओं की रक्षा करो पालो प्रेम करो।
८ हिन्सा करना पाप है माँस खाना शराब पीना देश का नाश करना है इसको छोड़ दो
९ क़र्ज़ लेकर खर्च करना क़र्ज़ लेकर तिज़ारत करना पाप है इसको छोड़ दो तुमको धर्म की शपथ है।
१० धर्म के पालन करने में तन मन धन स्त्री पुत्र मित्र राजा साधू सन्यासी सब को पालन करना मनुष्यों का कर्तव्य है स्वामी भिक्षानन्द का वैजीटेरियन सरस्वती संस्कृत आश्रम के लिये दान दीजिये।
स्वामी ने संस्कृत अध्यापकों के लिये १४०००) रुपया इलाहाबाद बैंक देहली में जमा किया है,

गाड ब्रह्म के लिये खुदा

आपका शुभचिन्तक स्वामी भिक्षानन्द आप के साम ने हाथ फैला कर, भिक्षा मांगते हैं भिक्षा देकर संस्कृत की वृधी कीजिये आप को धर्म लाभ होगा,

आपका शुभ चिन्तक स्वामी भिक्षानन्द

जी ए० नेटसन् पुस्तक प्रचारक, जिला बुलन्द शहर सन् १९८५
आठवीं बार ४०००   ट्रस्टी डाइरेक्टर किङ्ग कलक्टर
The Shiva Press, Allahabad.

ईश्वर के नाम

अव्यक्त अजर, अमर, अभय, अच्युत, अनन्त, अनुपम, अतिशक्ति, अगोचर, अतीन्द्रिय, आत्मा, ईश्वर, एकाक्षर, ओं., ओंकार, ओ३म् कर्माध्यक्ष, कलाग्नि, कालनियोग, गणेश, अनदाता, घनानन्द, चैतन्य, सर्वशक्ति, जनार्दन, जगत नारायन, तत्वरूप, त्रिकालिज्ञ त्रिदशाध्यक्ष, त्रिलोकीनाथ दयालु, दिव्य, दाता, दानी, दम्ब, दयानिधे, दीनानाथ, धर्माध्यक्ष, धीर्यवान, निर्विकार, नित्य, निरञ्जन नारायण, पालन कर्ता, पवित्र, पमेश्वर, परमानन्द, ब्रह्म, भगवान्, मर्मज्ञ, यम, रनन्ते, लावन्यता, व्यापक, विभू, वेद श्रृष्टिकर्ता, सिरजनहार, सच्चिदानन्द, हिरन्यगर्भ, खुदा, क्रयेटर, परफेक्, मेकर, ईश्वर, के अनन्त नाम हैं, लेकिन उनको न किसी ने देखा न दिखा सकता है न उसके काम को जान सकता है कि कब क्या करेगा मरने के बाद ही उसे देखेगा अच्छे किये हैं तो सुख पावेगा और अगर बुरे काम किये हैं तो दुःख भोगना पड़ेगा वहां कोई बचा नहीं सकता।

तत्व ५ हैं—पृथ्वी, जल, वायु अग्नि, आकाश।

इन्द्री ११हैं—नेत्र, नासिका, मुख, अरन्ध्र, कान, जिह्वा (रसना) हाथ, पांव, लिंग, गुदा, त्वाचा।

सूर्य, चन्द्र, सितारे, समुद्र, द्रब्य, बिजुली, बीज, मेघ, आयु रूप, रस, गन्ध ईश्वर ने इनको बनाया है।

संसार में सब परिश्रम धन संचय करने के लिये करते हैं परंतु मरने पर सब छोड़ जाते हैं फिर परिश्रम क्यों किया जावे ? लोभ के कारन

वड़ी जाति काहे से कहलाती है

(१) बल से (२) बुद्धि से (३) धन से (४) संख्या से (५) उम्र से (६) धर्म करने से (७) दान करने से (८) रक्षा करने से (९) प्रेम करने से (१०) अपना स्वामी बनाने से (११) स्वामी को अपने कर्तब्य पर ध्यान देना चाहिये।

कविता-कौमुदी ।

(तीसरा भाग-संस्कृत)

सम्पादक

एक साहित्याचार्य

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग ।

पहला संस्करण } चैत्र, १९८१ { मूल्य ३)

मुद्रक—श्री० सत्यव्रत, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।
प्रकाशक—पं० रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी-मंदिर प्रयाग ।

भूमिका

संस्कृत बहुत प्राचीन भाषा है। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास इसी भाषा में है। प्राचीन ऋषियों और पण्डितों ने इस भाषा में ऐसे ऐसे ग्रंथ लिखे, जिनसे भूमण्डल पर भारतवर्ष का गौरव चिरस्थायी हो गया है। इस भाषा में शब्दों की संख्या बहुत ही अधिक है। प्रकृति, प्रत्यय और विभक्ति के संयोग से शब्दों की ऐसी रचना की जा सकती है जिनसे मनुष्य के हृदय के गूढ़ से गूढ़ भाव प्रकट हो सकते हैं। ऐसी शक्ति संसार की अन्य भाषाओं में बहुत ही कम है। संस्कृत भाषा के व्याकरण के समान पूर्ण व्याकरण तो संसार की किसी भाषा में नहीं। विद्वानों का कथन है कि संस्कृत ही समस्त आर्य-भाषाओं की जननी है। भारतवर्ष के लोग इस भाषा को देववाणी कहते हैं। कोई समय ऐसा था कि संस्कृत इस देश की साधारण बोलचाल की भाषा थी। पर अब यह मृतभाषा कही जाती है।

संस्कृत भाषा के ग्रंथ साधारणतः दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—एक धर्मग्रंथ, दूसरे साहित्य। धर्मग्रंथ अठारह भागों में विभक्त हैं, जिन्हें अठारह विद्या कहते हैं। उनके नाम यह हैं—चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, चार उपाङ्ग। चारों वेदों के नाम हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्व। क्रमशः चारों उपवेदों के नाम हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और अर्थशास्त्र। छः वेदाङ्गों के नाम शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द, तथा चार

उपाङ्गों के नाम पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र हैं। इनमें से एक एक विषय से सम्बन्ध रखने वाले अनेक ग्रंथ हैं। धर्मग्रंथों में भी साहित्य विषयक बहुत सी बातें हैं और साहित्यग्रंथों में धर्म विषयक बातों की चर्चा है। फिर भी धर्म और साहित्य दो भिन्न भिन्न विषय माने गये हैं।

साहित्य-ग्रन्थों में मुख्य काव्यग्रंथ हैं जो दो भागों में बाँटे गये हैं, एक को श्रव्य और दूसरे को दृश्य कहते हैं। श्रव्य काव्य तीन प्रकार के होते हैं---एक पद्यमय, जैसे रघुवंश आदि; दूसरे गद्यमय, जैसे कादम्बरी आदि; और तीसरे गद्य-पद्य-मय, जिन्हें चम्पू कहते हैं, जैसे नल-चम्पू आदि। दृश्य काव्य नाटक कहलाते हैं। कविता-कौमुदी का विषय केवल साहित्यिक है। साहित्य में भी श्रव्य काव्यों की ही चर्चा इस में की गई है, और उन्हीं में से उदाहरण उद्धृत किये गये हैं।

सम्पादक महाशय ने इस पुस्तक के लिखने में बहुत परिश्रम किया है। कवियों के उत्तम उत्तम श्लोक चुनचुन कर उन्होंने संग्रह किये हैं, जिनसे सहृदय पाठकों को अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। कवियों के समय-निरूपण में बड़ा मत-भेद है। प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक महाशय ने अपनी स्वतंत्र सम्मति प्रकट की है। खेद है, कि प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ ज्यों की त्यों रह गई हैं। जिनके लिये हम अपने पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं। अगले संस्करण में सब अशुद्धियाँ ठीक कर दी जायँगी।

कविता-कौमुदी के प्रेमी पाठक इस पुस्तक के लिये बहुत दिनों से लालायित हैं। हमारे पास सैकड़ों पत्र आये

हैं जिनमें देरी करने के लिये हमें उलहना दिया गया है। उनसे हमारा सविनय निवेदन है कि अनेक कार्यों में व्यग्र रहने के कारण हम साहित्य-सेवा में कुछ पिछड़ गये हैं अवश्य; पर हमारा उत्साह कम नहीं हुआ है। इसके बाद उर्दू या अङ्गरेज़ी की कविता-कौमुदी में से जो पहले तैयार होगी, पाठकों की सेवा में उपस्थित करने की हम तैयारी कर रहे हैं।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।
रामनवमी, १९८१

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर प्रयाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

कविता-कौमुदी, पहला भाग-हिन्दी	३)
" " दूसरा भाग-हिन्दी	३)
" " तीसरा भाग-संस्कृत	३)
" " चौथा भाग-उर्दू (तैयार हो रहा है)	३)
स्त्रीकवि-कौमुदी—स्त्रीकवियों की जीवनी और कविताओं का संग्रह (तैयार हो रहा है)	३)
पथिक (खंडकाव्य)	॥)
" राजसंस्करण, सचित्र, सजिल्द	१)
मिलन (खंडकाव्य)	।)
कुल-लक्ष्मी—विवाह से पहले पढ़ने की पुस्तक, सजिल्द	१।)
दम्पति-सुहृद्—विवाह के बाद पढ़ने की पुस्तक	१।)
सुभद्रा—उपन्यास	॥)
हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास	≤)
हिन्दी-पद्य-रचना (पिंगल)	।)
रहीम—सुप्रसिद्ध रहीम कवि की जीवनी और कविता	≡)
नीति-शिक्षावली—नीति के श्लोक अर्थसहित	=)।
आकाश की बातें—	≡)
बाल-कथा कहानी, पहला भाग	।)
" " दूसरा भाग	।-)

प्रेम	।-)
रानी जयमती—उपन्यास, सजिल्द	॥≡)

रीडरें—बालकों के लिये

पहली पुस्तक—	-)
दूसरी पुस्तक—	≡)
तीसरी पुस्तक—	।-)
चौथी पुस्तक—	॥)

कन्याओं के लिये—

कन्या-शिक्षावली प० भा०	)
„ „ दू० भा०	-)
„ „ ती० भा०	≡)
„ „ चौ० भा०	।)

सम्मेलन-परीक्षा तथा हिन्दी के सब सुप्रसिद्ध प्रकाशकों की पुस्तकें मिलने का एकमात्र पता—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।

सूची ।

कविता-कौमुदी

अकाल जलद

अकालजलद का असली नाम क्या था, इसका पता अभी तक नहीं चल सका है। सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं, उनके साथ कर्ता का नाम "दाक्षिणात्य" लिखा है। इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया था कि नहीं, अभी तक इसका भी पता नहीं लगा है।

ये महाकवि राजशेखर के पितामह थे। राजशेखर ने बालरामायण की प्रस्तावना में अपना परिचय इस प्रकार लिखा है—

" स मूर्त्या यत्रासीद् गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुट पेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरल कविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले।

इस श्लोक में अकालजलद गुणी बतलाये गये हैं। ये दक्षिण देश के निवासी थे और यायावर कुल में उत्पन्न हुए थे। ये नवीं सदी में उत्पन्न हुए थे।

इनका अकालजलद नाम नहीं था, किन्तु एक श्लोक इन्होंने बनाया और उस श्लोक में अकालजलद शब्द का बड़ा

अच्छे ढंग से विन्यास किया। वह ढंग लोगों को बहुत पसन्द आया; तब से इनका नाम ही अकालजलद पड़ गया। इनका यह नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसने इनके असली नाम का लोप कर दिया। वह श्लोक नीचे लिखा जाता है।

"भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिवक्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः
पाठीनैः पृथुपंकपीठलुठितैर्यस्मिन् मुहुर्मूर्च्छितम्,
तस्मिन् शुष्कसरस्यकालजलदे नागत्य तच्चेष्टितम्,
येनाकण्ठनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते।

यहाँ अकाल जलद के कुछ मनोहर श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

मुग्धे मुञ्च विषादमत्र बलजित्कम्पो गुरुस्त्यज्यतां
सद्भावं किल पुण्डरीकनयने मान्यानिमान्मानय।
लक्ष्मीं बोधयतः स्वयंवरविधौ धन्वन्तरेर्वाक्छला-
दन्यत्र प्रतिषेधमात्मनि विधिं शृण्वन्हरिः पातु वः ॥ १ ॥

मुग्धे! विषाद छोड़ो; बल तोड़नेवाले इस कंप का त्याग करो; पुण्डरीकनयने! उत्तम वर्ताव करो; इन माननीयों का आदर करो; स्वयंवर के समय धन्वन्तरि ने इस प्रकार वाक्छल से लक्ष्मी को समझाया; जो दूसरों के लिए प्रतिषेध हुआ उसको अपने लिए विधि सुनते हुए विष्णु तुम्हारी रक्षा करें।

साधूत्पातघनौघ साधु सुधियां ध्येयं धरायामिदं
कोऽन्यः कस्तु मलं तवैव घटते कर्मेदृशं दुष्करम्।
सर्वस्यौपयिकानि यानि कतिचित्क्षेत्राणि तत्राशनिः
सर्वानौपयिकेषुदग्धसिकतारण्येष्वपां वृष्टयः ॥ २ ॥

उत्पाती मेघसमूह ! तुम धन्य हो, पृथिवी के बुद्धिमान् तुम्हारा ध्यान करेंगे । दूसरा कौन ऐसा कर सकता है ? यह कठिन काम तुम्हें ही शोभता है दूसरा कौन ऐसा कर सकता है सबको लाभ पहुँचानेवाले खेतों पर तो तुमने पत्थर बरसाये और किसी को लाभ न पहुँचानेवाले बालू के वन में तुमने पानी बरसाया ।

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः
पाठीनैः पृथुपंककूटलुठितैर्यस्मिन्मुहुर्मूर्च्छितम् ॥
तस्मिञ्छुष्कसरस्यकालजलदेनागत्य तच्चेष्टितं
येनाकण्ठनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते ॥ ३ ॥

कोटर में रहने वाले मेढक मरने के समान हो गये; कछुए पृथ्वी के भीतर घुस गये, मछलियाँ कीचड़ में लोट लोट कर जिस तालाब में मूर्च्छित हो गयी थीं, उस सूखे तालाब में आकर अकालजलद ने वह काम किया, जिससे हाथियों का यूथ गला डुबा डुबा कर पानी पी रहा है ।

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशान् विशन्तु प्रभो
धातस्त्वां शिरसा प्रणम्य कुरु मामित्यद्वय याचे पुनः ॥
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयालय
व्योम्नि व्योम तदीय वर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेनिलम् ॥ ४ ॥

शरीर नष्ट हो जाय, पञ्चभूत पञ्चभूतों में मिल जायँ, पर विधाता ! प्रणाम करके मैं आपसे यह माँगता हूँ कि आप मुझे उसके तालाब का जल, उसके दर्पण का प्रकाश, उसके घर के आकाश का आकाश, उसके मार्ग की भूमि और उसके पंखे की हवा बनावें ।

त्वं द्वित्राणि पदानि गच्छसि महीमुल्लंघ्य यान्ति द्विष-
स्त्वं बाणान्दशपञ्च मुञ्चसि निजान्मुञ्चन्ति शस्त्राणि ते ॥
ते देवीपतयस्त्वदस्त्रनिहितास्त्वं मानुषीणां पतिः ।
निन्दा तेषु कथं स्तुतिस्त्वयि कथं श्रीकर्ण निर्णीयताम् ॥ ५ ॥

तुम दो तीन पैर चलते हो और तुम्हारे शत्रु पृथिवी ही छोड़ कर चले जाते हैं। तुम दस पाँच बाण छोड़ते हो और तुम्हारे शत्रु शस्त्र ही छोड़ देते हैं। तुम्हारे अस्त्रों से मर कर वे अप्सराओं के पति हो जाते हैं और तुम मनुष्य स्त्रियों के पति हो। फिर उनकी निन्दा और तुम्हारी स्तुति क्यों की जाती है?श्रीकर्ण इसका निर्णय करो।

राजन्यशोहिममिषाच्छिशिरे. यदासीन्न भौलमन्किमुत तद्बलिसद्मयातम् ।
तत्राप्यमादिव ततोद्य मधौ त्वदीयं गोन्द्रिगमाशु धरणेः कुसुमच्छलेन ॥६॥

राजन्, हिम के व्याज से तुम्हारा जो यश शिशिर ऋतु में पृथिवी में शोभता था, वह क्या पाताल चला गया था? और क्या वहाँ पूरा स्थान न मिलने के कारण वसन्त ऋतु में फूलों के रूप में पृथिवी से वही उत्पन्न हो रहा है?

मेघाडम्बरमम्बरं यदि तदा निर्नष्टशोभा वयं
नित्यं तीक्ष्णकरेण तेन दिवसे तत्राप्यहो बाधिताः ॥
स्वामी नः शशभृत्क्षयोदयहतो दुःखादितीवागता
उद्याने नर देव सेवन पराः पुष्पच्छलात्तारकाः ॥ ७ ॥

जब बादल घिर आते हैं, उस समय हम लोगों की शोभा नहीं रहती और दिन में भी सूर्य की किरणों से हम लोग दुःख पाते हैं। हम लोगों के स्वामी चन्द्रमा हैं, उनका भी क्षय और अभ्युदय लगा रहता है। राजन्, मालूम होता है इसी दुःख से

तारायें तुम्हारे उद्यान में पुष्प के व्याज से आयी हैं और तुम्हारी सेवा कर रहीं हैं।

श्रीमन्नाथ तवानने भगवती वाणी नरीनृत्यते
तद्दृष्ट्वा कमला समागतवती लोलेति बद्धा गुणैः।
कीर्त्तिश्चन्द्रकरीन्द्रदन्तकुमुदक्षीरोदनीरोपमा
त्रासादम्बुनिधिं विलंघ्य भवतो नाद्यापि विश्राम्यति ॥ ८ ॥

हे नाथ, आपके मुख में भगवती सरस्वती नृत्य कर रही हैं; यह देखकर आपके पास लक्ष्मी आयीं, और वे चञ्चल हैं इसलिए आपने उन्हे गुणों (रस्सी या गुण) से बाँध लिया। पर चन्द्रमा, हाथीदाँत, कुमुद, क्षीर-समुद्र और जल के समान आपकी स्वच्छ कीर्ति डर गयी और समुद्र लाँघ कर चली गयी। उसे आजतक कहीं विश्राम नहीं मिला।

दिग्दन्तावलमण्डली विदलति स्वर्णाद्रिरुत्कम्पते
क्षोणी क्षुभ्यति बिभ्यति प्रतिदिशं सर्वेऽपि रत्नाकराः।
लंकातंक मुपैति शेवधपतिः शंकां परां गाहते
दानाय त्वयि राजशेखरमणे दर्भं समुद्बिभ्रति ॥ ९ ॥

दिग्गजों का समूह व्याकुल हो जाता है, सुमेरु काँपता है, पृथिवी काँपती है, सभी रत्नाकर (समुद्र) डर जाते हैं, लंका नगरी भयभीत हो जाती है, कुबेर के मन में अनेक प्रकार की शङ्काएँ उत्पन्न होती हैं। हे राजशिरोमणि, यह सब उस समय होता है जब दान करने के लिए आप हाथ में कुश लेते हैं। वे इस भयसे डरते हैं कि कहीं मुझे ही दान न करदें।

अप्पय दीक्षित

अप्पय दीक्षित दक्षिण के निवासी थे और शैव थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। वेदान्त, अलङ्कार आदि विषयों के इनके ग्रन्थों में से कतिपय ग्रन्थ पाये गये हैं। इनके भाई का नाम नीलकण्ठ दीक्षित था। इन्हीं नीलकण्ठ दीक्षित के पौत्र नारायण दीक्षित ने नीलकण्ठचम्पू नामक ग्रन्थ बनाया है। उन्होंने चम्पू के बनाये जाने का समय १६३७ बतलाया है। इससे अनुमानतः अप्पयदीक्षित का समय सोलहवीं सदी का अन्तिम भाग निश्चित किया जाना चाहिए।

अप्पय दीक्षित के ग्रन्थ

१ आत्मार्पण स्तुति
२ उपक्रम पराक्रम
३ कुवलयानन्द
४ चतुर्मतसार संग्रह
५ चन्द्रकुलास्तुतिः
६ चित्रमीमांसा
७ दशकुमारचरितसंक्षेप,
८ नामसंग्रहमाला
९ ब्रह्मतर्कस्तव,
१० भक्तिशतक
११ भारततात्पर्यसंग्रह
१२ मध्वमतविध्वंस
१३ रत्नत्रयपरीक्षा
१४ रसिकरञ्जनी
१५ रामायणसारस्वत
१६ वरदराजशतक
१७ वादनक्षत्रमालिका
१८ विधिरसायन सुखोपजीवनी
१९ वीरशैव
२० वृत्ति वार्तिक
२१ वैराग्यशतक
२२ शब्दप्रकाश
२३ शारीरिकन्यायरक्षामणिः
२४ शिवकर्णामृत

२५ शिवतत्त्वविवेक
२६ शिवादित्यमणिदीपिका
२७ शिवाद्वैतनिर्णय
२८ शिवार्चनचन्द्रिका
२९ सिद्धान्तलेशसंग्रह
३० हरिवंशसारचरितम्

यहाँ इनके कुछ मनोहर श्लोक उद्धृत किये जाते हैं:—

के चोराः के पिशुनाः के रिपवः केऽपि दायादाः
जगदखिलं तस्य वशे यस्य वशे स्यादिदं चेतः ॥ १ ॥

चोर कौन है, चुगलख़ोर कौन है, शत्रु कौन है, और भाई बन्धु कौन हैं? यह समस्त संसार उसके वश में है, जिसने अपने चित्त को अपने वश में कर लिया है।

पुष्पति पुरुषे सलिलैर्मुष्णाति पुष्पं फलं च तरव इव
वर्तन्ते सन्तः सममुपकर्तरि चापकर्तरि च ॥ २ ॥

जिस प्रकार वृक्ष जल से सींचने वाले अथवा फल फूल तोड़ने वाले दोनों के साथ समान व्यवहार करता है; उसी प्रकार अपकार करने वाले या उपकार करने वाले दोनों के साथ सज्जनों का समान व्यवहार होता है।

पितृभिः कलहायन्ते पुत्रानध्यापयन्ति पितृभक्तिम्
परदारानुपयन्तः पठन्ति शास्त्राणि दारेषु ॥ ३ ॥

पिता के साथ तो कलह किया जाता है, और पुत्रों को पितृभक्ति पढ़ाई जाती है। स्वयं परस्त्री का उपभोग करते हैं, और स्त्री को शास्त्रोपदेश सुनाते हैं।

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्या स्वाज्ञानज्ञानिनो विरला ॥ ४ ॥

नीति जानने वाले हैं; भाग्य जानने वाले, वेद जानने वाले और शास्त्र जानने वाले भी हैं ब्रह्म को भी जानने वाले मिल सकते हैं; पर अपने अज्ञान को जानने वाले बहुत कम हैं।

अश्नीत पिवत खादत जाग्रत संविशत तिष्ठत वा
सकृदपि चिन्तयतान्हः सावधिको देहवन्ध इति ॥ ५ ॥

खाओ, पीओ, जागो, बैठो, ठहरो; पर दिन में एक बार भी यह बात सोच लो कि इस शरीर का नाश निश्चय है।

भोगाय पामराणां योगाय विवेकिनां शरीरमिदम्
भोगाय च योगाय च न कल्पते दुर्विदग्धानाम् ॥ ६ ॥

मूर्खों के लिए यह शरीर भोग साधन है और विवेकियों के लिए योग का साधन है। पर दुर्विदग्धों के लिए न तो यह भोग का साधन है और न योग का।

अयुतं नियुतं वापि प्रदिशन्तु प्राकृताय भोगाय।
क्रीणन्ति न विल्वदलैः कैवल्यं पञ्चषैर्मूढाः ॥७॥

संसार के भोग के लिए तो मूढ़जन हज़ारों लाखों ख़र्च कर दिया करते हैं। पर पाँच छः विल्वपत्र से मुक्ति उनसे नहीं खरीदी जाती।

वङ्गाः कथमङ्गा कथमित्येनुयुंक्ते वृथा देशान्।
कीदृक् कृतान्तपुरमिति कोऽपि न जिज्ञासते लोकः ॥८॥

वङ्गदेश कैसा है? अङ्गदेश? कैसा है? इस प्रकार व्यर्थ ही देशों के संबंध में प्रश्न किया जाता है। पर यमराज की पुरी कैसी है? इस विषय में कोई भी मनुष्य कुछ प्रश्न नहीं करता।

त्यक्तव्यो ममकारस्त्यक्तुं यदि शक्यते नासौ
कर्तव्यो ममकारः किन्तु स सर्वत्र कर्तव्यः ॥ ९ ॥

ममभाव (यह मेरा है, ऐसा भाव) का त्याग कर देना चाहिए। यदि उसका त्याग करना कठिन हो तो ममभाव करना चाहिए और वह सर्वत्र करना चाहिए। समस्त संसार को अपना समझना चाहिए।

पुत्रा इति दारा इति पोष्यान् मूर्खो जनान्ब्रूते
अन्धे तमसि निमज्जन्नात्मा पोष्य इति नावैति ॥ १० ॥

मूर्ख मनुष्य पुत्रों और स्त्रियों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं, पर अज्ञान में डूबती अपनी आत्मा की रक्षा करना अपना कर्तव्य नहीं समझते ।

अमरुक

अमरुशतक नाम से एक पुस्तक इनकी प्रसिद्ध है । उसमें इनके बनाये स्फुट श्लोकों का संग्रह है । वे सब श्लोक श्रृङ्गार के हैं । इनकी कविता बड़ी ही उत्तम होती थी । ये जाति के सोनार थे । इनके विषय में लिखा है "विश्वप्रख्यात-नाडीन्धमकुलतिलको विश्वकर्मा द्वितीयः" । इनके विषय में एक किम्वदन्ती प्रचलित है । कहते हैं, शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए जब मण्डन मिश्र की स्त्री तैयार हुई और उन्होंने कामशास्त्र के प्रश्न किये तब शङ्कराचार्य ने कुछ समय माँगा । वे सन्यासी थे । उन्हे कामशास्त्र की बातें मालूम न थीं, अतएव उन्होंने नेपाल के राजा (जिनका उसी समय देहान्त हुआ था) के शरीर में प्रवेश किया और कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया । इस किंवदन्ती में कितनी प्रामाणिकता है, इसका निश्चय पाठक करेंगे ।

ये कवि नवमशतक के हैं । आनन्दवर्द्धन ने अपने ध्वन्या-लोक में इनके श्लोक उद्धृत किये हैं । इससे ये नवमशतक में प्रसिद्ध थे यह बात साबित होती है । ऐसी दशा में शङ्कराचार्य के ये समकालीन नहीं हो सकते ।

इनके बनाये श्लोक बड़े ही सरस हैं। अलङ्कार शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थों में इनके श्लोक उद्धृत हैं। इनके विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

अमरुक कवित्वडमरुकनादेन विनिन्हुता न संचरति
श्रृङ्गारभणितिरन्या धन्यानां श्रवणविवरेषु ।

अमरुक की कवितारूपी डमरू के शब्द से दूसरी श्रृङ्गार की कविताएँ छिप गयीं; जिससे वे धन्य मनुष्यों के कानों तक नहीं पहुँचतीं।

इनके कुछ मनोहर श्लोक सुनिये—

कृतकमधुराचारेत्यक्त्वा रुषा परुषीकृते
चरणपतनप्रत्याख्यानप्रकोपपराङ्मुखे ।
व्रजति रमणे निःश्वस्योष्णंस्तनाहितहस्तया
नयनसलिलच्छन्ना दृष्टिः सखीषु निपातिता ॥ १ ॥

मानवती को प्रसन्न करने के लिए नायक ने बनावटी खुशामदें कीं; उसने पैरों पर पड़ना चाहा, पर रुकावट हुई। इसीसे उसे क्रोध आया; उसकी कोमलता जाती रही; वह भी कठोर हो गया और छोड़ कर जाने लगा। उस समय मानवती ने गर्म गर्म साँस ली। छाती पर उसने हाथ रखे और जल से भरी आँखों से उसने अपनी सखियों को देखा।

आपृष्टासि विनिर्गतोध्वगजनस्तन्वङ्गि गच्छाम्यहं
स्वल्पैरेव दिनैर्ममागतिरिति ज्ञात्वा शुचं मा कृथाः ।
इत्याकर्ण्य वचः प्रियस्य सहसा तन्मुग्धयानुष्ठितं
येनाकण्डसमाप्तसर्वकरणक्लेशः कृतोन्यो जनः ॥ २ ॥

नायक विदेश जा रहा है; उसने कहा—तुमसे आज्ञा मिल हो गयी। जानेवाले पथिक घर से निकल आये; मैं भी जाता

हूँ; थोड़े ही दिनों में मेरा आना होगा यह जानकर तुम शोक मत करना। प्रिय की यह बात सुनकर मुग्धा ने वह किया जिससे दूसरों के सभी कष्ट अकस्मात् समाप्त हो गये। अर्थात् वह मर गयी और दूसरे पथिकों का जाना बन्द हो गया।

लोलाक्ष्या गुरुसंनिधौ मम कृतं नोवक्त्रमन्यादृशं
संलापाह्वपया न चाति करुणाः कर्तुं नवा पारिताः।
प्रस्थानाभिमुखस्य संततगलद्बाष्पौघया मुग्धया
दीर्घोष्णश्वसितैरसह्य मदनव्याधिः समावेदितः॥ ३॥

नायक घर से चलने के समय की बातें कहता है—जबमैं चलने को तैयार हुआ, तब चञ्चलाक्षी ने मुँह भारी नहीं किया। क्योंकि वहाँ माता पिता आदि थे। इसीसे वह अति दीन बाते भी न कर सकी। केवल आँसुओं की धारा बहाती रही और लम्बे और गर्म श्वासों से मदन-व्याधि की असहनीयता उसने बतलायी।

आदृष्टि प्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्विण्णया
विच्छिन्नेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति।
दत्त्वैकं सशुचा गृहं प्रतिपदं पान्थस्त्रियास्मिन्क्षणे
माभूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितम्॥ ४॥

जहाँ तक दिखायी पड़ता था वहाँ तक उसने पति के मार्ग को देखा। तदन्तर वह दुःखी हुई, दिन ढल गया, अन्धकार फैलने लगा, इससे रास्ता साफ़ साफ़ दिखायी न पड़ा। पुनः दुःख से पथिक की स्त्री ने घर बन्द किया। उसी समय उसे सन्देह हुआ कि कहीं आये तो नहीं, इससे पुनः वह फिर कर देखने लगी।

चटुलनयने शून्या दृष्टिः कृता खलु केन ते
क इह सुकृती द्रष्टव्यानामुवाह धुरं पराम् ।
यत्नभिलिखितप्रख्यैरङ्गैर्न मुञ्चसि चेतसा
वदनकमलं पाणौ कृत्वा निमीलितलोचना ॥ ५ ॥

हे सुन्दरनेत्रे, किसने तुम्हारी आँखों को शून्य बनाया ? कौन पुण्यात्मा द्रष्टव्य वस्तुओं की सीमा बना हुआ है ? अर्थात् वह सुन्दर पुरुष कौन है जिसका ध्यान तुम कर रही हो। चित्रलिखित के समान होकर जिसे तुम हृदय से नहीं छोड़ती और हाथों पर मुखकमल रखकर तथा आखें बन्द कर जिसकी तुम पूजा कर रही हो।

अन्योन्यग्रथिताङ्गुलिनमत्पाणिद्वयोस्योपरि,
न्यस्योद्वासविकम्पिताधरदलं निर्वेदशून्यं मुखम् ।
आमीलन्नयनांन्तवान्तसलिलं श्लाघ्यस्य निन्द्यस्य वा
कस्येदं दृढसौहृदं प्रतिदिनं दीनंत्वया स्मर्यते ॥ ६ ॥

किसी विरहिणी से कोई पूछता है—दोनों हाथों की अँगुलियों को मिलाने से नमित हुए हाथों पर तुमने अपना मुख रखा है, जल्दी जल्दी साँस के चलने से अधर काँप रहा है, दुःख से मुँह फिट्ट हो गया है, बन्द आँखों के कोनों से अश्रु-धारा बह रही है। इस प्रकार तुम किस अच्छे या बुरे मनुष्य की मित्रता का प्रतिदिन दीनता पूर्वक स्मरण किया करती हो ?

निःश्वासा वदनं दहंति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तंदिनं रुद्यते ।
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तदोपेक्षितः
सख्यःकं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः ॥ ७ ॥

साँस मुँह को जला रहे हैं, समूचा हृदय दहक रहा है, नींद नहीं आती और प्रिय का मुख भी दिखायी नहीं पड़ता, दिनरात रो रही हूँ, अंग सूख रहे हैं, उस समय पैर पर पड़े हुए प्रिय की ओर मैंने देखा तक नहीं, सखियो। किस गुण के भरोसे तुम सभों ने हमसे प्रिय पर मान कराया।

उत्कम्पो हृदये स्खलन्ति वचनान्यावेगलोलं मनो,
गात्रं सीदति चक्षुरश्रुकलुषं चिन्तामुखं शुष्यति।
यस्यैषा सखि पूर्वरङ्गरचना मानः स मुक्तो मया
धन्यास्ता अपि योषितः क्षितितले यासामयं संमतः॥ ८॥

हृदय काँप रहा है, बात नहीं निकलती, उद्विग्नता से मन चञ्चल हो रहा है, अंग शिथिल हो रहे हैं, आँखों में आँसू भर गया है, चिन्ता से मुँह सूख रहा है, हे सखि! जिस मान के करने के पहले मेरी यह दशा है उसका मैंने त्याग किया। वे स्त्रियाँ संसार में धन्य हैं जो मान न करना उचित समझती हैं।

अद्यारभ्य यदि प्रिये पुनरहं मानस्य वान्यस्य वा,
गृह्णीयां विपरूपिणः शठमतेर्नामापि संक्षोभिणः।
तत्तेनैव विना शशाङ्ककिरणस्वच्छाट्टहासा निशा,
ह्येको वा दिवसः पयोदमलिनो यायान्मम प्रावृषि॥ ९॥

प्रिये, आज से मैं विपरूपी शठमति और मन को चंचल करनेवाले मान या और किसी का नाम न लूँगा। यदि लूं तो उसीके बिना चन्द्रमा की स्वच्छ किरणों से हंसती हुई एक रात या मेघों से मलिन एक दिन वर्षा काल में मेरा बीते।

मानव्याधिनिपीड़िताहमधुना शक्नोमि तस्यान्तिकं
नो गन्तुं न सखीजनोस्ति चतुरो यो मां बलान्नेष्यति।

मानी सोपि जनो न लाघवभयादभ्येति मातः स्वयं
कालो याति चलंच जीवितमिति क्षुण्णं मनश्चिन्तया ॥१० ॥

मैं मानरूपी रोग से दुःखी हूँ, मैं स्वयं उनके पास इस समय नहीं जा सकती और कोई चतुर सखी भी नहीं है जो ज़बरदस्ती मुझे ले जाय। वे भी मानी हैं, अपनी लघुता के भय से नहीं आते। समय बीत रहा है, जीवन चञ्चल है, इन विचारों से मेरा मन चंचल हो रहा है।

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते
मानं धत्स्व धृतिं विधान ऋजुतां दूरीकुरु प्रेयसि।
सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना
नीचैः शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति ॥११॥

बाले। क्या बालपन से ही समस्तकाल बिताना चाहती हो। मान करना सीखो, धैर्य धारण करो, प्रिय के प्रति सिधाई अच्छी नहीं। सखी ने जब इस प्रकार समझाया, तब डरती डरती वह बोली, धीरे धीरे बोलो, नहीं तो हृदय में रहने वाले प्राणेश्वर तुम्हारी ये बातें सुन लेंगे।

चपलहृदये किं स्वातन्त्र्यात्तथा गृहमागत-
श्चरणपतितः प्रेमार्द्रार्द्रः प्रियः समुपेक्षितः।
तदिदमधुना यावज्जीवं निरस्तसुखोदया
रुदितशरणा दुर्जातानां सहस्व रुषां फलम् ॥१२॥

चञ्चल हृदयवाली। प्रिय घर में आया था, वह तुम्हारे चरणों पर पड़ता था, पर उस प्रेमी प्रिय की तुमने उपेक्षा-की, अब तुम्हारे जीवन के सब सुख दूर हुए, अब रोया करो और अपने क्रोधों का फल भोगो।

पत्रं न श्रवणेस्ति वाष्पगुरुणोर्नेत्रयोः कज्जलं
रागोपूर्वं इवाधरे चरणयो स्तन्वा न चालक्तकः।
वार्त्तोच्छित्तिषु निष्ठुरेति भवता मिथ्यैव संभाव्यते
सालेखं लिखतु च्युतोपकरणा न्यायेन केनाधुना ॥१३॥

कानों में गहने नहीं हैं, आँसुभरे आँखों में काजल नहीं है, पहले के समान ओंठ पर लाली भी नहीं है, पैरों पर महावर भी नहीं है, सिर्फ़ बातें न करने के कारण तुम्हारा उसको निष्ठुर समझना झूठा मालूम होता है। वह जब पत्र लिखने लगती है, तो हाथ से कलम कागज छूट जाते हैं, अब पत्र किस प्रकार लिखे ?

प्रम्लाने नयने विपाण्डुरधरः क्षामं कपोलद्वयं
स्रस्ते बाहुलते शिरोरुहचयो व्यस्तस्थितिःसर्वतः।
यैवं मद्गमवार्तयापि हि दशामन्त्यां समारोपिता
याते सा मयि जीवतीति वचनं भ्रातर्न संभाव्यते ॥१४॥

आँखे मलिन हो गयी हैं। ओष्ठ पीला पड़ गया है। दोनों गाल दुर्बल हो गये हैं। बाँह कंधे से उतरी हुई सी मालूम होती है। सिर के बाल उलझे हुए हैं। मेरे जाने की बात सुनकर ही जिसकी ऐसी दशा हो जाती है, जो मरने लगती है, वह मेरे चले आने पर जीती है, भाई ! यह बात सच मालूम नहीं पड़ती।

याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते
नो कार्या नितरां कृशासि कथयत्येवं सवाष्पे मयि।
लज्जामन्थरतारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा
दृष्ट्वा मां हसितेन भावि मरणोत्साहस्तया सूचितः ॥१५॥

गये हुए पुनः मिलते हैं इसलिए हे सुन्दरी ! तुम मेरे लिए चिन्ता मत करना। क्योंकि तुम बहुत दुर्बल हो। आँखों में आँसू भर कर जब मैंने यह कहा, तब लज्जा से उसकी आंखें स्थिर हो गई, गिरते आँसू को उसने पी लिया और मेरी ओर देखकर हँसती हुई भावी मृत्यु के लिए अपना उत्साह बतलाया।

अच्छिन्नं नयनाम्बु बन्धुषु कृतं तापः सखीष्वाहितो
न्यास्तं दैन्यमशेषतः परिजने चिन्ता गुरुभ्योर्पिता ।
अद्यश्वः किल निर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परंखिद्यते
विस्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया ॥ १६ ॥

सदा बहनेवाली अश्रुधारा बन्धुओं को दे दी, ताप सखियों में रख दिया, अपनी समूची दीनता साथ रहनेवालों को दी, माता पिता आदि को उसने चिन्ता अर्पित की, आजकल वह बहुत सुखी है, केवल प्राण कष्ट दे रहे हैं, आप निश्चिन्त रहें। वियोग व्यथा को उसने इस प्रकार बाँट दिया है।

असद्वृत्तो नायं न च खलु गुणैरेष रहितः
प्रियो मुक्ताहारस्तव चरणमूले निपतितः ।
गृहाणेमं मुग्धे व्रजतु निजकण्ठप्रणयिता-
मुपायो नास्त्यन्यस्तव हृदयसंतापशमने ॥ १७ ॥

यह बुरा नहीं है और गुणहीन भी नहीं है; यह प्रिय मुक्ताहार तुम्हारे चरणों पर पड़ा है। इसको उठा लो और गले में धारण करो। तुम्हारे हृदय के सन्ताप को दूर करने के लिए दूसरा उपाय नहीं है। दूती प्रिय के सामने नायिका को चतुरता से समझाती है।

इससे प्रसन्न हो जाओ, अपना काम है, नहीं तो पछताना पड़ेगा।

क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे प्राणाधिको वसति यत्र निजः प्रियो मे
एकाकिनी वद कथं न बिभेषि बाले शूरोस्ति पुङ्खितशरो मदनःसहायः॥१८॥

हे करभोरु! इस अंधेरी रात में कहाँ के लिए तुमने प्रस्थान किया है? जहाँ प्राणाधिक प्रिय रहते हैं। बाले तुम अकेली हो, डर नहीं लगता? वीर कामदेव धनुर्बाण लेकर साथ हैं।

अमितगति

ये एक जैन ग्रन्थकार हैं। ये धारा नगरी के प्रसिद्ध राजा भोजदेव के चाचा मुंजदेव की सभा में थे। इन्होंने धर्म-परीक्षा, सुभाषितरत्नसन्दोह, श्रावकाचार आदि ग्रन्थ लिखे हैं। इन्होंने सुभाषितरत्नसन्दोह के अन्त में उसकी समाप्ति का समय इस प्रकार लिखा है:—

समारूढ़ेतस्मिँरूत्रिदशवसतिं विक्रमनृपे
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पंचाशदधिके
समाप्तं पञ्चम्यां भवति धरणिं मुंजनृपतौ
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम्।

विक्रम के स्वर्गारोहण के एक हज़ार पचास वर्ष बीतने पर, मुंजराज के राज्य के समय पौष शुक्ल पञ्चमी के दिन निर्मल और विद्वानों का हितकारक यह शास्त्र समाप्त हुआ। अर्थात

विक्रमी १०५० संवत् में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ, जिसका ई० सन् ९९३ होता है।

यहाँ इनके कुछ उत्तम श्लोक दिये जाते हैं।

कोपोस्ति यस्य मनुजस्य निमित्तमुक्तो,
नो तस्य कोऽपि कुरुते गुणिनोऽपि भक्तिं।
आशीविषं भजति को ननु दंदशूकं,
नानोग्ररोगशमिना मणिनापि युक्तं ॥ १ ॥

जो मनुष्य बात बात में क्रोध करता है, अपनी और दूसरे की आत्मा को दुःख पहुँचाता है, वह मनुष्य चाहे गुणी—अनेक गुणों का भण्डार भी क्यों न हो; कोई उसकी भक्ति—सेवा शुश्रूषा, नहीं करता, क्योंकि उससे अशांति का भय रहता है। देखो, नाना प्रकार के रोगों को शांत करने वाली मणि से युक्त भी दंदशूक जाति के सर्प को कोई नहीं पालता या पकड़ता, क्योंकि वह हानि पहुँचाता है, विष से संयुक्त होता है और पकड़ने पर मनुष्य को काट लेता है।

पुण्यं चितं व्रततपोनियमोपवासैः
क्रोधः क्षणेन दहतींधनवद्धुताशः।
मत्वेति तस्य वशमेति न यो महात्मा
तस्याभिवृद्धिमुपयाति नरस्य पुण्यं ॥ २ ॥

जो महात्मा पुरुष यह सोचकर कि, "जिस प्रकार अग्नि इंधन के समूह को क्षण भर में जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार यह क्रोध भी व्रत, तप, यम, नियम और उपवासों द्वारा उत्पन्न हुए पुण्य को बात की बात में नष्ट कर देता है, उसके वश नहीं होता—क्रोध नहीं करता—वह (महात्मा) अपने पुण्य की वृद्धि करता है, उसका पुण्य बढ़ता है।

क्रोधं न तं नृपतयो रिपवोऽपि रुष्टाः कुर्वंति केसरिकरींद्रमहोरगा वा।
धर्मं निहत्य भवकाननदावबह्निं यं दोषमत्र विदधाति नरस्य रोषः॥ ३॥

इस संसार में इस जीव का जितना अहित (हानि) क्रोध करता है, उतना न तो कुपित हुए राजा और न शत्रु ही कर सकते हैं, न सिंह, हाथी और साँप ही कर सकते हैं; क्योंकि ये तो अधिक से अधिक यदि हानि कर सकते हैं तो एक भव जन्म में केवल प्राणों ही का घात कर सकते हैं और यह क्रोध तो संसार रूपी वन को जलाने वाले धर्म का नाश कर जन्म जन्म में नाना दुःख देता है।

यः कारणेन वितनोति रुषं मनुष्यः
कोपं प्रयाति शमनं तदभावतोऽस्य
यस्तत्र कुप्यति विनापि निमित्तसंगी
नो तस्य कोऽपि शमनं विदधातुमीशः॥ ४॥

जो मनुष्य ऐसे तो सर्वदा शांत रहता है; परंतु किस कारणवश क्रुद्ध हो जाता है, तो उसका वह क्रोध उस कारण के नष्ट हो जाने से नष्ट हो जाता है परंतु जो मनुष्य बिना कारण ही कुपित होता रहता है, उसके क्रोध को कौन शांत कर सकता है?

आयासकोपभयदुःखमुपैति मर्त्यो
मानेन सर्वजननिन्दितवेषरूपः
विद्यादयादमयमादिगुणांश्च हंति
ज्ञात्वेति गर्ववशमेति न शुद्धबुद्धिः॥ ५॥

मनुष्य मान के कारण मानसिक पीड़ा, कोप, भय, और दुःख को प्राप्त होता है, निंदित रूप और वेष को धारण करता है, एवं विद्या, दया, यम आदि समस्त गुणों से हाथ धो बैठता

है । इस लिए जो श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष हैं, वे कभी मान नहीं करते । वे सदा अपने को अगुणी ही समझा करते हैं ।

लोकार्चितोऽपि कुलजोऽपि बहुश्रुतोऽपि,
धर्मस्थितोऽपि विरतोऽपि शमान्वितोऽपि ।
अक्षार्थपन्नगविषाकुलितो मनुष्य–
स्तन्नास्ति कर्म कुरुते न यदत्र निंद्यम् ॥ ६ ॥

इन्द्रियविषय रूपी सर्प के विष से पीड़ित लोग नीच से नीच काम भी कर डालते हैं, और यहाँ तक कि अपने लौकिक सम्मान, कुलीनता, पाण्डित्य, धर्मात्मापन, विरागिता, शांति आदि समस्त गुणों को बिलकुल भूल जाते हैं, अर्थात् लौकिक सम्मानादि गुणों से विशिष्ट पुरुष भी विषयों में फँस निंद्य से निंद्य काम करने में नहीं चूकते ।

लोकार्चितं गुरुजनं पितरं सवित्रीं,
बन्धुं सनाभिमबलां सुहृदं स्वसारं ।
भृत्यं प्रभुं तनयमन्य जनञ्च मर्त्यो,
नो मन्यते विषयवैरिवशः कदाचित् ॥ ७ ॥

इन्द्रिय विषय भोग रूपी वैरी के पक्ष में पहुँच कर ये मनुष्य अपने हितू और प्यारे लोग जो गुरु, माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, मित्र, स्वामी, सेवक आदि हैं उन्हे भी भूल जाते हैं और इनकी कुछ भी चिंता नहीं करते ।

येनेंद्रियाणि विजितान्यतिदुर्धराणि,
तस्याविभूतिरिह नास्ति कुतोपि लोके ।
श्लाध्यं च जीवितमनर्थविमुक्तमुक्तं,
पुंसो विविक्तमतिपूजिततत्वबोधैः ॥ ८ ॥

जिस मनुष्य ने इन दुर्जेय इन्द्रियों का जय कर लिया है, इनके वश में न होकर इनपर ही अपना अधिकार जमा लिया है, उस मनुष्य के समान इस संसार में किसी की भी विभूति नहीं है और न किसी का जीवन ही प्रशंसनीय है। भावार्थ—हरएक मनुष्य को इन्द्रियों का जय करना ही योग्य है और उसी से अपने जीवन को कृतार्थ मानना चाहिये।

जनयति वचोऽव्यक्तं वक्त्रं तनोति मलाविलं
स्खलयति गतिं हन्ति स्थाम श्लथीकुरुते तनुम्।
दहति शिखिवत्सर्वांगानां च यौवनकाननं।
गमयति वपुर्मर्त्यानां वा करोति जरा न किम्॥ ९॥

बुढ़ापे के आने से मनुष्य के वचन अव्यक्त हो जाते हैं, जीभ लड़खड़ाने लगती है, मुँह सर्वदा मल से भरा रहता है (लार, कफ आदि बहने लगते हैं) गति स्खलित हो जाती है चलने पर पैर कहीं रखने पर कहीं पड़ जाते हैं, सामर्थ्य नष्ट हो जाता है, शरीर शिथिल होने लगता है, अग्नि से जलाए गए वन के समान यौवन ख़ाक में मिल जाता है और कहाँ तक कहें जिस का पहले कभी अनुमान भी नहीं कर सकते, वह अवस्था बुढ़ापे से इस शरीर की हो जाती है।

प्रबलपवनपातध्वस्तप्रदीपशिखोपमै-
रलिसलनिभै:कामोद्भूतैः सुखैर्विषसन्निभैः।
समपरिचितैर्दुःखप्रान्तैः सतामतिनिंदितै-
रितिकृतमनाः शंके वृद्धः प्रकम्पयते करौ॥ १०॥

हमारा अनुमान है कि बुढ़ापे के कारण जो मनुष्य हाथ कँपाते हैं वे सर्वदा अपने अंतरंग के इस प्रकार के भाव प्रकट करते रहते हैं। वे कहते हैं—भाइयो! हमने जो यौवनावस्था में

कामजन्य सुख भोगे थे, वे अब विषतुल्य हानिकारक सिद्ध हुए। आँधी के वेग से बुझाई गई दीपक की लौ के समान क्षण विनाशी और महादुःख के स्थान निकले। सज्जन लोग जो पहले से इनकी निंदा करते हैं, सो बिलकुल ठीक है, उसमें तनिक भी झूठ नहीं। इसलिए इनका भोगना सर्वथा अनुचित ही है।

चलयति तनुं दृष्टेर्भ्रान्तिं करोति शरीरिणां
रचयति बलादव्यक्तोक्तिं तनोति गतिक्षतिं।
जनयति जनैर्नाना निंदामनर्थपरंपरां
हरति सुरभिं गन्धं देहाज्जरा मदिरा यथा ॥ ११ ॥

जिस प्रकार मदिरा पीने से शरीर को चल विचल कर देती है, आखों को घुमा देती है, अस्फुट वचन कहलवाती है, चलने में बाधा डालती है, लोगों में निन्दा का पात्र बना देती है, और देह की सुगंधि हर उसे दुर्गंधित कर देती है उसी प्रकार जरा (वृद्धावस्था) भी शरीर को कँपा देती है, आँखों की ज्योति कम कर देने से दृष्टि में भ्रांति कर देती है, टूटे फूटे कुछ के कुछ शब्द बुलवाती है, पूर्व की भाँति ठीक ठीक नहीं चलने देती, लोगों में नाना प्रकार की निंदाएं करवाती है और शरीर को दुर्गन्धमय कर देती है।

भवति मरणं प्रत्यासन्नं, विनश्यति यौवनं,
प्रभवति जरा सर्वाङ्गानां विनाशविधायिनी।
विरमत बुधाः कामार्थेभ्यो वृषे कुरुतादरं
वदितुमिति वा कर्णोपत्रान्तस्थितं पलितं जने ॥ १२ ॥

वृद्धावस्था आने के समय जो कुछ केश श्वेत हो जाते हैं, वे लोगों के कान के पास आकर अपने आगमन से इस बात

को सूचना देते हैं कि हे विद्वानो, हिताहितविवेकियो ! तुम्हारा मरण अब समीप है, शीघ्र ही मरण आने वाला है, यौवन की अवधि पूरी हो चुकी, यह भी अब नष्ट होने के ही क़रीब है। देखो ! वह तुम्हारे पीछे पीछे बुढ़ापा आ रहा है, जिससे कि तुम्हारे वे अंग जो कि इस समय काम करने में समर्थ हैं, शक्तिहीन हो जायंगे। इसलिए काम, अर्थ को छोड़ो; इनको जो अब तक भोग चुके सो भोग चुके, अब धर्म की ओर ध्यान दो। अंत के दिनों में भी कुछ अपना हित कर लो।

तृष्णां चित्ते शमयति मदं ज्ञानमाविष्करोति,
नीतिं सूते हरति विपदं संपदं संचिनोति।
पुंसां लोकद्वितयशुभदा संगतिः सज्जनानाम्,
किंवा कुर्यान्न फलममलं दुःखनिर्नाशदक्षा॥ १३॥

सज्जनो की संगति करने से चित्त की तृष्णा(डाह) बुझ जाती है, मद नष्ट हो जाता है. ज्ञान की वृद्धि होती है, नीति न्याय का आचरण करना आने लगता है, विपत्ति दूर भाग जाती है, सम्पत्ति एकत्र होकर आश्रय करने लगती है, और दोनों लोक में शुभ फल प्राप्त होता है। इसलिए बहुत कहने से क्या ! समस्त दुःखों के नाश करने में समर्थ सज्जनों की संगति से क्या क्या उत्तम फल नहीं प्राप्त होते ?

चित्ताह्लादि व्यसनविमुखं शोकतापापनोदि,
प्रज्ञोत्पादि श्रवणसुखदं न्यायमार्गानुयायि।
तथ्यं पथ्यं व्यपगतमदं सार्थकं मुक्तवादं,
यो निर्दोषं रचयति वचस्तं बुधाः सन्त माहुः॥ १४॥

जो पुरुष चित्त को प्रसन्न करने वाले, व्यसनों के विरुद्ध शोक सन्ताप के नाशक, बुद्धि के बढ़ाने वाले, सुनने में प्रिय, न्याय्यमार्ग के अनुसरण करने वाले, सच्चे, हितकारक अर्थवाले, बाधारहित, निर्मद और निर्दोष बचन बोलनेवाले होते हैं, उन्हें विद्वान् लोग सज्जन कहते हैं। भावार्थ—जो मनुष्य सज्जन बनना चाहें उन्हें चाहिए कि वे उपर्युक्त गुण-वाले बचन बोलें।

अश्वघोष

महाकवि अश्वघोष कब उत्पन्न हुए थे? इसके निश्चय करने का कोई उपाय नहीं है। यह बौद्ध थे; क्योंकि भदन्त अश्वघोष के नाम से इनका परिचय पाया जाता है। भदन्त बौद्ध सन्यासियों को कहते थे। अन्यान्य ग्रन्थों के देखने से पता मिलता है कि बुद्धचरित के अतिरिक्त और भी ग्रन्थ इनके बनाये हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह बौद्ध नहीं थे और इनके नाम के साथ भदन्त शब्द भ्रम से जोड़ा गया है और उस भ्रम का कारण केवल यही है कि इन्होंने बुद्धचरित नाम का एक ग्रन्थ बनाया है, पर यही किसीके बौद्ध या अबौद्ध होने का प्रमाण नहीं है; क्योंकि महाकवि व्यासदास क्षेमेन्द्र ने भी तो "बोधिसत्वावदान कल्पलता" नाम की पुस्तक बनायी है जो कि बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तक है। पर वे बौद्ध नहीं थे। बुद्धचरित की समाप्ति और प्रारम्भ की शैली देखने से भी इनके बौद्ध होने का पूरा प्रमाण नहीं मिलता।

बुद्धचरित का वर्णन रामायण और रघुवंश से समानता रखता है। आदिकवि वाल्मीकि और महाकवि कालिदास ने जिस तरह प्रसाद गुण का आदर किया है और उसमें अपना अनुराग प्रकट किया है, उसी तरह इस महाकवि ने भी। कालिदास के पीछे होनेवाले कवियों के ग्रन्थों में जिस रीति की प्रधानता देखी जाती है, उसका परिचय इस महा-कवि के ग्रन्थ में कहीं नहीं है। इससे इस बात के मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि यह महाकवि कालिदास के पहले या पीछे उत्पन्न हुआ था।

इस समय इस महाकवि का बनाया केवल एकही ग्रन्थ "बुद्धचरित" पाया जाता है। इस ग्रन्थ में शान्तरस प्रधान है और करुणरस अप्रधान। प्रसाद और माधुर्य्यमयी वैदर्भी रीति है। इनके ग्रन्थ में शान्तरस की जैसी पुष्टि हुई है, जैसा मधुर वर्णन हुआ है, वैसा अन्यान्य कवियों के प्रबन्धों में, कालिदास के प्रबन्धों को छोड़कर, दूसरी जगह नहीं पाया जाता। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ बुद्धचरित से कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं, जिनसे इनके विषय में ऊपर कही हुई बातों की पुष्टि होगी।

ततस्तथा भर्तरि राज्यनिस्पृहे तपोवनं याति विवर्णवाससि।
भुजौ समुत्क्षिप्य ततः स वाजिभृद्भृशं विचुक्रोश पपात च क्षितौ ॥ १ ॥

जब राज्य से निस्पृह होकर फटे कपड़ों से महाराज (बुद्ध) वन में गये, तब घोड़े का साईस दोनों हाथों को उठा कर रोने लगा और वह भूमि पर गिर पड़ा।

विलोक्य भूयश्च रुरोद सस्वरं हयं भुजाभ्यामुपगूहय कन्थकम्।
ततो निराशो विलपन्मुहुर्मुहुर्ययौ शरीरेण पुरं न चेतसा ॥ २ ॥

पुनः वह कन्थक नाम के घोड़े को दोनों हाथों से पकड़ कर चिल्ला चिल्लाकर रोने लगा। जब बुद्ध के लौट चलने की आशा जाती रही, तब वह केवल शरीर से नगर की ओर चला, चित्त से नहीं।

यमेकरात्रेण तु भर्तुराज्ञया जगाम मार्गं सह तेन वाजिना।
इयाय भर्तुर्विरहं विचिन्तयँस्तमेव पन्थानमहोभिरष्टभिः॥ ३॥

स्वामी (बुद्ध) की आज्ञा से जिस मार्ग को उसने उसी घोड़े के साथ एक रात में तै किया था, उसी मार्ग में स्वामी के विरह के कारण उसको आठ दिन लग गये।

निशम्य च स्रस्तशरीरगामिनौ विनागतौ शाक्यकुलर्षभेण तौ।
मुमोच वाष्पं पथि नागरो जनः पुरारथे दाशरथेरिवागते॥ ४॥

शाक्य कुल के दीपक के विना शिथिल अङ्ग से चलने वाले उन दोनों को देखकर मार्ग में नगरवासियों ने आँसू बहाये। जैसे पहले रामचन्द्र को वन में छोड़ कर लौटे हुए रथ को देखकर नगरवासी रोये थे।

पुनः कुमारो विनिवृत्त इत्यथो गवाक्षमालाः प्रतिमंदिरेऽङ्गनाः।
विविक्तपृष्ठं च विलोक्य वाजिनं पुनर्गवाक्षाणि पिधाय चुक्रुशुः॥ ५॥

नगर की स्त्रियों ने सुना कि कुमार लौट आये, अतः वे अटारी पर चढ़कर खिड़की खोलकर देखने लगीं। पर जब उन लोगों ने घोड़े की पीठ खाली देखी, उस समय खिड़की बन्द कर वे रोने लगीं।

विगाहमानश्च नरेन्द्रमन्दिरं विलोकयन्नश्रु वहेन चक्षुषा।
स्वरेण पुष्टेन रुराव कन्थको जनाय दुःखं प्रतिवेदयन्निव॥ ६॥

जब वह राजभवन में गया, तब उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे और वह उन्हीं आँखों से चारों ओर देख रहा था। वह अपने पुष्ट स्वर से रोता था, मानो अपना दुःख लोगों को बतला रहा था।

ततः सबाष्पा महिषी महीपतेः प्रनष्टवत्सा महिषीव वत्सला ।
प्रगृह्य बाहू निपपात गौतमी विलोलपर्णा कदलीव काञ्चनी ॥ ७ ॥

तब महाराज की प्रधान रानी गौतमी जिसकी आँखें आँसू से भर गयी थीं और जिसकी दशा बछड़े के नष्ट होने पर वत्सला भैंस के समान थी; वह हाथ बाँध कर गिर पड़ी, जैसे चञ्चल पत्ते वाली सोने की कदली गिरती है।

तथैव रोषप्रविरक्तलोचना विषादसम्बन्धकषायगद्‌गदम् ।
उवाच निश्वासचलत्पयोधरा विगाढ़शोकाश्रुधरा यशोधरा ॥ ८ ॥

यशोधरा (बुद्ध की स्त्री) की आँखें शोकावेग के कारण आँसू से भर गयी थीं, क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गयी थीं, अधिक शोक होने के कारण वह बोल नहीं सकती थी, निश्वास से उसकी छाती धड़कती थी। वह बोली—

निशि प्रसुप्तामवशं विहाय मां गतः क्वसच्छन्दक मन्मनोरथः ।
उपागते च त्वयि कन्थके च मे समं गतेषु त्रिषु कम्पते मनः ॥ ९ ॥

हे छन्दक (सेवक) रात को निद्रा में अचेत पड़ी हुई मुझको छोड़कर वह मेरा मनोरथ कहाँ चला गया? तुम तो लौट आये, और कन्थक भी आया। तीनों के एक साथ जाने से मेरा हृदय काँप रहा था।

अप्रेक्ष वश्येन हितेन साधुना त्वया सहायेन यथार्थकारिणा ।
गतोऽर्यपुत्रो ह्यपुनानवृत्तये रमस्व दिष्ट्या सफलः श्रमस्तव ॥ १० ॥

तुम प्रिय थे, अपने अधीन थे, हितकारी थे, सज्जन थे, ठीक ठीक काम करते थे और तुम्हारी ही सहायता से मेरे पति नहीं लौटने के लिए चले गये। आनन्द करो, तुम्हारा परिश्रम सफल हुआ।

वरं मनुष्यस्य विचक्षणो रिपुर्न मित्रमप्राज्ञमयोगपेशलम्।
सुहृद्ब्रुवेण ह्यविपश्चित त्वया कृतः कुलस्यास्य महानुपप्लवः ॥११॥

मनुष्य का शत्रु यदि बुद्धिमान हो तो वह अच्छा है, मूर्ख और समय न समझनेवाला मित्र अच्छा नहीं। मित्र कहाने वाले मूर्ख तुमने मेरे समस्त कुल का आज नाश कर दिया।

अनर्थकामोऽस्यजनस्य सर्वथा तुरङ्गमोऽपिध्रुवमेष कन्थकः।
जहार सर्वस्वमतस्तथाहि मे जने प्रसुप्ते निशि रत्न चौरवत् ॥ १२॥

यह कन्थक घोड़ा भी निश्चय मेरा अनिष्ट चाहने वाला है, जिसने मेरा सर्वस्व रात को सब लोगों के सोने पर रत्न चोर के समान ले गया।

यदा समर्थः खलु सोढुमागतानिषुप्रहारानपि किं पुनः कशाः।
गतः कशापातभयात् कथं त्वयं श्रियं गृहीत्वा हृदयं च मे समम् ॥ १३॥

यह घोड़ा जब आये हुए बाणों को भी सह सकता है, तब इसके लिए कोड़ा कौन सी वस्तु है, जो यह कोड़े के भय से मेरी सम्पत्ति और मेरा हृदय लेकर चला गया।

अनार्यकर्मा भृशमद्य हेषते नरेन्द्रधिष्ण्यं प्रतिपूरयन्निव।
यदा तु निर्वासयतिस्म मे प्रियं तदा हि मूकस्तुरगाधमोऽभवत् ॥ १४॥

यह दुराचारी आज बार बार बोल रहा है। महाराज के मकान को अपने शब्द से गुँजा रहा है, पर जिस समय यह

मेरे प्रिय को ले जा रहा था उस समय यह अधम घोड़ा चुप हो गया था।

समाप्तजाप्यः कृतहोममङ्गलो नृपस्तु देवायतनाद्विनिर्ययौ ।
जनस्य तेनार्तरवेण चाहतश्चचाल वज्रध्वनिनेव वारणः ॥ १५ ॥

महाराज का जब जप समाप्त हुआ, जब होम मङ्गल उन्होंने कर लिया, तब वे देव-मन्दिर से निकले। निकलते ही महाराज जनसमुदाय के हाहाकार को सुनकर विचलित हो गये, जैसे वज्र के नाद से हाथी विचलित होता है।

निशम्य च च्छन्दककन्थकावुभौ सुतस्य संश्रुत्य च निश्चयं स्थिरम् ।
पपात शोकाभिहतो महीपतिः शचीपतेर्वृत्त इवोत्सवे ध्वजः ॥ १६ ॥

छन्दक और कन्थक को देखकर तथा अपने पुत्र का निश्चय सुनकर महाराज अचेत होकर गिर पड़े, जिस प्रकार इन्द्र के उत्सव में वृत्रध्वज गिरता है।

ततो मुहूर्तं सुतशोकमोहितो जनेन तुल्याभिजनेन धारितः ।
निरीक्ष्य दृष्ट्या जलपूर्णया हयं महीतलस्थो विललाप पार्थिवः ॥१७॥

थोड़ी देर तक महाराज सुतशोक से अचेत थे, उनको बन्धु बान्धव सम्भाले हुए थे। महाराज आँसू भरी आँखों से घोड़े को देखकर ज़मीन में पड़े पड़े विलाप करने लगे।

बहूनि कृत्वा समरे प्रियाणि मे महत्त्वया कन्थक विप्रियं कृतम् ।
गुणप्रियो येन वने स मे सुतः प्रियोपि सन्नप्रियवत्प्रचारितः ॥ १८ ॥

कन्थक, रणो में तुमने मेरे बहुत से प्रिय काम किये हैं, पर आज तुमने मेरा बड़ा ही अपकार किया, क्योंकि गुण-प्रिय मेरे प्रिय पुत्र को तुमने शत्रु के समान वन में भेज दिया।

तदद्य मां वा नय तत्र यत्र स व्रज द्रुतं वा पुनरेनमानय ।
ऋतेहि तस्मान् मम नास्ति जीवितं विगाढरोगस्य सदौषधादिव ॥१९॥

तो आज तुम मुझको वहाँ ले चलो जहाँ मेरा वह पुत्र है। अथवा तुम स्वयं शीघ्र जाकर उसीको ले आओ। क्योंकि उसके बिना मेरा जीना असम्भव है। जैसे किसी रोगी का जीवन अच्छे औषध के विना असम्भव होता है।

प्रचक्ष्वमे भद्र तदाश्रमाजिरं हृतस्त्वया यत्रस मे जलाञ्जलिः ।
इमे परिप्सन्तिहि मे पिपासवो ममासवः प्रेतगतिं यियासवः ॥२०॥

ऐ भलेमानुस, मुझे बतलाओ वह स्थान कहाँ है ? जहाँ मेरी जलाञ्जलि (जल देने वाले पुत्र) को तू ले गया है। मेरे प्यासे ये प्राण जो प्रेत—गति को जाने वाले हैं, उसको चाहते हैं।

इति तनयवियोगजातदुःखः क्षितिसदृशं सह विहाय धैर्यम् ।
दशरथ इव रामशोकवश्यो बहु विललाप नृपो विसंज्ञकल्पः ॥२१॥

पुत्र के वियोग से महाराज को बहुत दुःख हुआ। पृथिवी के समान उनकी स्वाभाविक धीरता जाती रही। राम के शोक से जैसे दशरथ ने विलाप किया था, उसी प्रकार अचेत होकर महाराज विलाप करने लगे।

आनन्दवर्द्धन

ये ध्वन्यालोक नामक अलङ्कार ग्रन्थ के कर्ता थे। कश्मीर राज अवन्तिवर्मा के समय में ये वर्तमान थे, यह बात राज-तरङ्गिणी से जानी जाती है। राजा अवन्ति वर्मा ने ई० नवीं सदी के ५५ वें वर्ष से ८४ तक काश्मीर का राज्य किया था। राजतरङ्गिणी में लिखा है—

"मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।

इनके बनाये ग्रन्थों के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

१—ध्वन्यालोक।
२—विषमवाण लीला (प्राकृत काव्य)
३—हरिविजय
४—अर्जुनचरित
५—मतपरीक्षा
६—धर्मोत्तमविनिश्चयटीका
७—देवीशतक

महाकवि राजशेखर ने इनके विषय में लिखा है,

"ध्वनिनातिगभीरेण काव्यतत्त्वनिवेशिना।
आनन्दवर्द्धनः कस्य नासीदानन्दवर्द्धनः॥

इनके कुछ मनोहर श्लोक नीचे लिखे जाते हैं:—

अविरताम्बुजसङ्गतिसङ्गलद्दहलकेसरसंवलितेव वः।
ललितवस्तुविधानसुखोल्लसत्तनुरुहा तनुरात्मभुवोव तात्॥

सदा साथ के कारण कमल के निकले केशर से जो लिप्त हो गया है और उत्तम वस्तुओं के निर्माण के सुख से जो रोमाञ्चित हो रहा है, वह ब्रह्मा का शरीर आपका कल्याण करे।

एकस्थं जीवितेशे त्वयि सकलजगत्सारमालोकयामः।
श्यामे चक्षुस्तवास्मिन्वपुषि निविशते नाल्पपुण्यस्य पुंसः॥
कस्यान्यत्रामृतेस्मिन्रतिरतिविपुला दृष्टिरेवामृतं ते।
दैत्यै रित्युच्यमानो मुनिभिरपिहरिः स्त्रैण रूपोवताद्वः ॥२॥

प्राणेश, आपमें समस्त जगत् का सार मैं एक स्थान पर देखता हूं। तुम्हारे इस श्याम शरीर को बड़े पुण्यात्मा देखते हैं। इस अमृत को छोड़ कर किस मनुष्य का अनुराग दूसरी वस्तु में होगा? तुम्हारी बड़ी बड़ी आँखें ही अमृत हैं। स्त्री रूपधारी हरि को दैत्य और मुनि दोनों ने इस प्रकार कहा। वे हरि आपकी रक्षा करें।

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
एतत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तमाभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ॥३॥

महाकवियों की वाणी में जो बात मालूम होती है वह कुछ और ही है। जिस प्रकार स्त्रियों के शरीर में प्रसिद्ध अङ्गों के अतिरिक्त लावण्य एक विलक्षण ही शोभा देता है।

या साधूनिव साधुवादमुखरान्मात्सर्यमूकानपि
प्रोच्चैर्नो कुरुते सतां मतिमतां दृष्टिर्न सा वास्तवी॥
या याताः श्रुतिगोचरं च सहसा हर्षोल्लसत्कंधरा
स्तिर्यञ्चोपि न मुक्तशस्यकवलास्ताः किं कवीनां गिरः ॥४॥

जो द्वेश मूक बने हुओं को भी साधुओं के समान साधुवाद देने के लिए पक्तान बना दे वह बुद्धिमान सज्जनों की

दृष्टि यथार्थ दृष्टि नहीं है और जिसके सुनाई पड़ते ही सहसा पक्षियों का भी कन्धा हर्ष से उल्लसित न हो जाय, और वे दाना खाना न छोड़ दें, वह क्या कवियों की वाणी है?

ये श्रमं हर्तुमीहन्ते महतां चिरसंभृतम्।
वन्द्यास्ते सरलात्मानो दुर्जनाः सज्जना इव ॥ ५ ॥

बहुत दिनों का सञ्चित सज्जनों का परिश्रम जो हरण करना चाहते हैं, वे दुर्जन भी सज्जनों के समान नमस्करणीय हैं।

यः प्रशंसति नरो नर मन्यं देवतासु वरदासु सतीषु।
मुग्धधीर्धनलवस्पृहयालुस्तं नृशंसमहमाद्यमवैमि ॥ ६ ॥

वर देनेवाले देवताओं के रहते जो मनुष्य दूसरे मनुष्य की प्रशंसा धन के लोभ से करता है, वह मूर्ख है और मैं उसे पहला नृशंस समझता हूँ।

उद्यन्त्यमूनि सवहूनि महामहांसि चन्द्रोप्यलं भुवनमण्डलमण्डनाय।
सूर्यादृते न तदुदेति न चास्तमेति येनोदितेन दिनमस्तमिते नरात्रिः ॥७॥

ये अनेक बड़े बड़े प्रकाश उदित होते हैं, चन्द्रमा भी संसार की शोभा ही बढ़ाता है, पर उदय होना तो एक सूर्य का है, जिसके उदय होने से दिन होता है और अस्त होने से रात्रि होती है।

लोकानन्दाद्विरमति न यः क्षीयमाणोपि भूयः
स्वःस्थे तस्मिन्किल दिनमुखं नूतनं नाभविष्यत्
दैवं कीदृक्कथमपि यथा भर्तुमात्मानमेव
व्यग्रः कालं गमयति सखे सोप्ययं पश्य चन्द्रः ॥ ८ ॥

स्वयं क्षीण होने पर भी जो सदा लोकों को आनन्दित करता है, उसके स्वर्ग में रहने पर नया प्रातःकाल नहीं

होता । पर भाग्य कैसा है, वह चन्द्रमा भी अपना ही भरण करने के लिए व्याकुल रहता है और इसीमें उसका सब समय बीतता है ।

नास्योच्छ्रायवती तनुर्न दशनौ नोदीर्घदीर्घः करः
सत्यं वारण नैष केसरि शिशुस्त्वाडम्बरैः स्पर्धते ॥
तेजोबीजमसह्यमस्य हृदये न्यस्तं पुरा वेधसा ।
तादृक् त्वादृशमेव येन सुतरां भोज्यं पशुं मन्यते ॥९॥

उसका लंबा शरीर नहीं है, बड़े दो दांत भी नहीं है और न बड़ा बड़ा कर (सूँड़) है । हाथी ! यह ठीक है कि आडम्बर में यह सिंह का बच्चा तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता, पर इसके हृदय में ब्रह्मा ने एक बड़ा तेजोबीज रखा है, जिससे तुम्हारे समान पशुओं को यह अपना भोजन समझता है ।

केलिं कुरुष्व परिभुंक्ष्व सरोरुहाणि ।
गाहस्व शैलतटनिर्झरिणीपयांसि ॥
भावानुरक्तकरिणीकरलालिताङ्ग ।
मातङ्ग मुञ्च मृगराजरणाभिलाषम् ॥१०॥

आनन्द करो, कमलों को खाओ, पहाड़ी नदियों के जल का अवगाहन करो, पर मातङ्ग ! सिंह से युद्ध की इच्छा छोड़ दो, क्योंकि प्रेमिका हथिनी के हाथों से तुम्हारे अङ्ग लालित होते हैं ।

मनोरथशतैर्वृतो भुवननाथचूड़ोचित—
स्तृणैरलमधः कृतः कृतपदः क्वचिद्ग्रावसु ॥
व्रजत्यपि सचेतसां विषयमीदृशां यो दृशो ।
लुठत्यचलकन्दरे विधुर एष चिन्तामणिः ॥ ११ ॥

जो अनेक मनोरथों से वरण किया जाता है और राजाओं का मस्तक जिसके लिए उचित स्थान है, उस चिन्तामणि को घास ने छिपा लिया, उस समय जब कि पत्थरों में कहीं उसे आश्रय मिला था, चेतन मनुष्यों के दृष्टिपथ में जो भाग्य से आती है पर पर्वतों की कन्दरा में वही चिन्तामणि ठुकराया जाता है।

आक्रन्दाः स्तनितैर्विलोचनजलान्यश्रान्तधाराम्बुभि--
स्त्वद्विच्छेदभुवश्च शोकशिखिनस्तुल्यास्तडिद्विभ्रमैः ॥
अन्तर्मे दयितामुखं तव शशी वृत्तिः समाप्यावयो--
स्तत्किं मामनिशं सखे जलधर त्वं दग्धुमेवोद्यतः ॥ १२ ॥

तुम्हारा गर्जन ही रोदन है, वृष्टि अश्रुधारा है, तुम्हारे वियोग से उत्पन्न विद्युत् की चेष्टाएँ शोकाग्नि के समान हैं, मेरे हृदय में दयिता का मुख है, और तुम्हारे भीतर चन्द्रमा है, हे मेघ ! इस प्रकार हमारी तुम्हारी दोनों की दशा समान है, फिर मित्र, तुम मुझको ही जलाने के लिए क्यों तैयार रहते हो।

दृष्टमङ्कुरितमर्जुनसृष्टौ यन्महापुरुषनिर्मितिबीजम् ।
तत्तवोदयविधाविह धातुर्दृश्यते कुसुमितं फलितं च ॥१३॥

अर्जुन की सृष्टि में जो महापुरुष-निर्माण बीज अङ्कुरित हुआ था, वह आज तुम्हारे उदय के समय कुसुमित और फलित देखा जाता है।

त्वयि जनार्दन भक्तिरचञ्चला यदि भवेदफलप्रवणा मम ।
अभिलषाम्यपवर्गपराङ्मुखः पुनरपीह शरीरपरिग्रहम् ॥ १४ ॥

जनार्दन, यदि आपके चरणों में मेरी कामनारहित स्थिर भक्ति हो तो मैं मुक्ति को छोड़ कर पुनः शरीर ग्रहण करने की इच्छा करता हूँ।

कल्हण

ये कवि काश्मीर देश के निवासी थे। काश्मीर के इतिहास "राजतरङ्गिणी" का निर्माण इन्होंने ही किया है। कश्मीर-राज जयसिंह के समय में इन्होंने राजतरङ्गिणी बनायी थी। जयसिंहाभ्युदय नामक एक काव्य भी इन्होंने बनाया है। इन्होंने राजतरङ्गिणी बनाने का समय राजतरिङ्गणी में इस प्रकार लिखा है—

लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशेशककालस्य साम्प्रतम् ।
सप्तत्यात्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सरा ॥

१०७० शक में इन्होंने राजतरङ्गिणी बनायी। ये कश्मीर राज्य के प्रधान मन्त्री भी थे।

अन्य काश्मीरक कवियों के समान इनकी कविता भी प्रौढ़ और सरस है। देखिए—

वृत्तिं स्वां बहुमन्यते हृदि शुचं धत्तेनुकम्पोक्तिभि—
व्यंक्तं निन्दति योग्यतां मितमतिः कुर्वंन्स्तुतीरात्मनः ॥
गर्ह्योपायनिषेवणं कथयति स्थास्नुं वदन्व्यापदं ।
श्रुत्वा दुःखमरुंतुदां वितनुते पीड़ां जनः प्राकृतः ॥ १ ॥

दुर्जन मनुष्य अपनी वृत्ति—दुर्जनता को अच्छा समझता है, दया की बातों से उसका हृदय दुःखी होता है, अपनी प्रशंसा करता है और योग्यता की निन्दा करता है, क्योंकि उसकी बुद्धि थोड़ी होती है। अनेक प्रकार की आपत्तियों का उल्लेख करके बुरे उपायों के अवलम्बन का समर्थन करता है, दुःख का नाम सुनकर अति तीव्र पीड़ा पहुँचाता है।

पाकश्चेन्न शुभस्यमेदय तदसौ प्रागेव नादात्किमु
स्वार्थश्चेन्न मयास्य किंन भजते दीनान्स्वबन्धूनयम् ॥

मत्तो रन्ध्र दृशोस्थ भीर्यदि न तल्लुब्धः किमेष त्यजे—
दित्यन्तःपुरुषोऽधमः कलयति प्रायः कृतोपक्रियः ॥ २ ॥

दुर्जन मनुष्य किसी के द्वारा उपकृत होने पर प्रायः इस प्रकार सोचता है, यदि आज मेरे भाग्यों का उदय नहीं हुआ तो आज के पहले ही इन्होंने क्यों नहीं दिया ? यदि मुझसे स्वार्थसिद्धि की आशा न होती; तो ये अपने ग़रीब भाई बन्धुओं को ही क्यों न देते ? मैं इसकी बुराइयों को जानता हूँ इसी डर से यह मुझको देता है, नहीं तो यह कृपण कब का देनेवाला है, उपकृत होने पर अधम पुरुष इसी प्रकार सोचते हैं।

कर्णे तत्कथयन्ति दुन्दुभिरवै राष्ट्रे युदुद्घोषितं
तन्नम्राङ्गतया वदन्ति करुणं यस्मान्धपावान्भवेत् ॥
श्लाघन्ते तदुदीर्यते यदरिणाप्युः न मर्मान्तक
द्येकेचिन्नतु शाठ्यसौग्ध्यनिधयस्ते भूभृतां रञ्जकाः ॥ ३ ॥

नगारे की आवाज़ के साथ जो देश में घोषित किया गया है, वह भी जो कानों में कहता है, लज्जा देने वाली बातों को नम्रतापूर्वक प्रकाशित करता है, हृदय को जलाने वाली जो बातें, शत्रु नहीं कह सकते उनकी भी तारीफ़ करता है, इस प्रकार की जिसमें शठता और भोलापन होता है, वे ही राजाओं को प्रसन्न कर सकते हैं।

हा कष्टं तटवासिनोपि विफल प्राग्भारमालोक्य मा—
मन्यत्रैव पिपासवः प्रतिदिनं गच्छन्त्यमी जन्तवः ॥
इत्थं व्यर्थ जलातिभारवहनप्रोद्भूतखेदादिव
स्वांमूर्तिं वड़वानले जलनिधिर्मन्ये जुहोत्यन्वहम् ॥ ४ ॥

यह बड़े कष्ट की बात है कि मेरे इस जलराशि को विफल समझ कर मेरे तीर पर रहनेवाले जन्तु भी पिपासा से

पीड़ित होकर दूसरी जगह जाते हैं, इस व्यर्थ जलराशियों के वहन करने से उत्पन्नदुःख से समुद्र अपना जल बड़वानल में हवन करता है।

मर्यादा परिपालनेन महतां क्षोणीभृतां रक्षणा—
द्विश्रान्त्या मधुसूदनस्य सुचिरं यत्किंचिदासादितम् ॥
गाम्भीर्योचितमात्मनो जलधिना मन्थव्यथासंभ्रमा
देवेष्वर्पयताम्तं हुतमहो सर्वं तदुत्पुंसितम् ॥ ५ ॥

बड़ों की मर्यादा के पालन करने से, पर्वतों की रक्षा करने से और विष्णु को विश्राम करने के लिए स्थान देने से समुद्र ने जो अपनी गम्भीरता का उचित फल पाया था, वह सब मन्थन पीड़ा की घबड़ाहट से देवताओं को अमृत देकर उसने नष्ट कर दिये।

आश्चर्यं बड़वानलः स भगवानाश्चर्यमम्भोनिधि—
र्यत्कर्मातिशयं विचिन्त्य मनसः कम्पः समुत्पद्यते ॥
एकस्याश्रयघस्मरस्य पिवतस्तृप्तिर्न जाता जलै—
रन्यस्यापि महात्मनो न वपु स्वल्पोपि जातः श्रमः ॥ ६ ॥

आश्चर्य बड़वानल के लिये है, विष्णु के लिए है और समुद्र के लिए भी है, जिसके अद्भुत काम को सोचकर मनुष्य का मन कम्पित होने लगता है, एक की—जो अपने आश्रय को ही खाता है—जल पीने से तृप्ति नहीं हुई। अर्थात् बड़वानल आज तक जलपीने से तृप्त नहीं हुआ, और विष्णु को वहाँ सोने में कोई कष्ट नहीं हुआ। और दूसरे महात्मा के शरीर को थोड़ा भी श्रम नहीं हुआ।

नोद्वेगं यदि यासि यद्यवहितः कर्णं ददासि क्षणं
त्वां पृच्छामि यदम्बुधे किमपि तन्निश्चित्य देत्युत्तरम् ॥

नैराश्यात्तु शयातिमात्रनिशितं निःश्वस्य यद्दृश्यते
तृष्यद्भिः पथिकैः कियत्तदधिकंस्यादौर्वदाहादतः ॥ ७ ॥

यदि तुम घबड़ा न जाओ और यदि तुम सावधान हो कर सुनो, तो मैं तुमसे पूछता हूँ—सोच कर उत्तर दो, प्यासा पथिक तुम्हारे यहाँ आकर निराशा-जनित तीखे पश्चात्ताप से गर्म साँस लेकर जो तुम्हारी ओर देखता है, उससे बड़वानल का दाह कितना अधिक है।

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्त्र दीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते ॥
इतश्च बड़वानलः सहसमस्तसंवर्तकै-
रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिंधोर्वपुः ॥ ८ ॥

एक ओर विष्णु सोते हैं, दूसरी ओर विष्णु के शत्रुओं का समूह सोता है, एक ओर शरण में आये हुए पर्वतों का समूह वास करता है, एक ओर संवर्तक नाम के मेघों के साथ बड़वानल है। ओह, समुद्र का शरीर कितना बड़ा है और वह कितना भार सहता है।

वैकुण्ठाय श्रियमभिनवं शीतभानुं भवाय
प्रादादुच्चैःश्रवसमपि वा वज्रिणे तन्न गण्यम् ॥
तृष्णार्ताय स्वमपि मुन्ये यद्ददातिस्म देहं
कोन्यस्तस्माद्भवति भुवनेष्वम्बुधेर्बोधिसत्वः ॥ ९ ॥

लक्ष्मी विष्णु को दी, नवीन चन्द्र शिव को दिया और इन्द्र को उच्चैःश्रवा दिया, इनकी तो कोई गिनती नहीं; प्यासे मुनि को (अगस्त को) समुद्र ने अपना शरीर तक दे दिया, उस समुद्र से बढ़कर संसार में कौन बड़ा त्यागी है ?

रत्नोज्ज्वलाः प्रविकिरँल्लहरीः समीरैरब्धिः क्रियेत यदि रुद्धतटाभिमुख्यः ।
दोषोर्थिनः स खलु भाग्यविपर्ययाणां दातुर्मनागपि न तस्य तु दातृतायाः १०

रत्न के समान उज्ज्वल लहरियों को वायु के द्वारा फैलाने वाले समुद्र के तट यदि रोक लिये जांय, तो यह याचकों के भाग्य का ही दोष है, दाता की दानशक्ति का दोष नहीं है।

अन्तर्ये सततं लुठन्त्यगणितास्तानेव पाथोधरै–
रात्तानापततस्तरंगवलयैरालिङ्ग्य गृह्णन्नसौ ॥
व्यक्तं मौक्तिकरत्नतां जलकणान्संप्रापयत्यम्बुधिः
प्रायोऽन्येन कृतादरो लघुरपि प्राप्नोर्च्यते स्वामिभिः ॥ ११ ॥

जो जल के कण सदा समुद्र में ही रहते हैं, उन्हेंही मेघ लेजाकर जब पुनः समुद्र को देता है, तब तरङ्गों से आलिङ्गन कर के समुद्र उनका ग्रहण करता है और उन्हींको मोती बना देता है। छोटा भी हो, यदि उसका दूसरे आदर करते हैं, तो स्वामी भी उसका आदर करता है।

परामृशति सस्पृहं मुहुरपेलवं वीक्ष्यते
महत्किमपि रत्नमित्यसमसमद्रं गूहते ॥
कुतोपि परिपेलवच्छविसवाप्य काचोपले
वहत्यतिकदर्थनां वत वराककः पामरः ॥ १२ ॥

विचारा मूर्ख मनुष्य कहीं से काँच का टुकड़ा पाता है तो उसे बड़ी लालसा से छूता है, बार बार उसे देखता है, यह बड़ा भारी कोई रत्न है यह समझ कर प्रसन्नता पूर्वक उसे छिपाता है, इस प्रकार वह अनेक कष्ट उठाता है।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरहो चन्द्रो न संभाव्यते
नो देवः कुसुमायुधो न च मधुर्दूरे विरिञ्चिः प्रभुः ॥
एतन्मे मतमुत्थितं यममृतात्काचित्स्वयं सिंधुना
या मन्थाचललोडितेन हरये दत्वाश्रियं रक्षिता ॥ १३ ॥

इसकी सृष्टि करने के लिए चन्द्रमा प्रजापति नहीं बना था। कामदेव भी प्रजापति नहीं था। फिर ब्रह्मा के प्रजापति होने की बात तो दूर ही है। मैं तो समझता हूँ कि यह अमृत से स्वयम् उत्पन्न हुई है और मन्थन के समय समुद्र ने विष्णु को लक्ष्मी देकर इसकी रक्षा की थी। अर्थात् लक्ष्मी से भी यह सुन्दरी है। इसी श्लोक के समान कालिदास का भी श्लोक है।

भास्वद्बिम्बाधरा कृष्णकेशी सितकरानना ।।
हरिमध्या शिवाकारा सर्वदेवमयीव सा ।। १४ ।।

इसका बिम्बाधर भास्वत (सूर्य या प्रकाशमान है) है, केश कृष्ण है, मुँह चन्द्रमा है, मध्यभाग हरि (सिंह या विष्णु) के समान है, उसका आकार शिव (सुन्दर या महादेव) है, वह सर्वदेवमयी है।

सत्क्षेत्रप्रतिपादितः प्रियवचोवद्धालवालावलि
निर्दोषेण मनःप्रसादपयसा निष्पन्न सेकक्रियः ॥
दातुस्तत्तदभीप्सितं किल फलन्कालेपि वालोप्यसौ
राजन्दानमहीरुहो विजयते कल्पद्रुमादीनपि ॥ १५ ॥

अच्छे क्षेत्र (पात्र) में दिया हुआ दानवृक्ष कल्पद्रुम आदि को भी जीत लेता है। प्रियवचनों द्वारा इसके आलबाल बनवाये जाते हैं और दोषरहित मानसिक प्रसन्नतारूपी जल से यह सींचा जाता है, छोटा होने पर भी यह दाता के मनोरथों को पूर्ण करता है।

यो यं जनापकरणाय सृजत्युपायं तेनैव तस्य नियमेन भवेद्विनाशः ॥
धूमं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्निभूत्वाम्बुदःसशमयेत्सलिलैस्तमेव ॥१६॥

दूसरे के उपकार करने के लिए जो उपाय किये जाते हैं, उन्हींसे उपाय करने वाले का निश्चय नाश होता है। अग्नि से आँखों को अन्धा करने के लिए धूम उत्पन्न होता है, पर वही धूम जल बनकर अग्नि का नाश कर देता है।

मौर्ख्यं सर्वापदां निष्ठा का हि नापदजानतः ॥
तस्मिन्नप्यविषण्णो यः क्व सोन्यत्र विषत्स्यति ॥ १७ ॥

मूर्खता सब आपत्तियों से बड़ी है, जो नहीं जानता उसके लिए सभी आपत्ति ही है। उससे भी जिसको विषाद नहीं है, उसको कहीं विषाद नहीं होगा।

यदि नाम कुले जन्म तत्किमर्थं दरिद्रता ॥
दरिद्रत्वेपि मूर्खत्वमहो दुःखपरंपरा ॥ १८ ॥

यदि कुल में जन्म हुआ तब दरिद्रता क्यों ? दरिद्रता में यदि मूर्खता हो तो फिर दुःखों का क्या पूछना।

कः स्वभावगभीराणां जानीयाद्बहिरापदम् ॥
वालापत्येन भृत्येन यदि सा न प्रकाश्यते ॥ १९

जिनका स्वभाव गम्भीर है, उनकी आपत्तियाँ बाहरवाले कैसे जान सकते हैं ? यदि छोटे बच्चे या नौकर प्रकाशित न करें।

कालिदास

प्रसिद्ध महाकवि कालिदास के विषय में पूर्वीय और पश्चिमीय विद्वानों ने बड़ी खोज की है। इनके विषय में अनेक मत प्रकाशित हुए हैं। उन सब का यहाँ सङ्कलन करना न मेरे लिए आवश्यक ही है और न मैं वैसा करना ही चाहता हूँ।

क्यों कि वैसा करना हिम्मत का काम है, साहस का काम है। उन मतों के समर्थन करने की शक्ति मुझमें नहीं है। एक विद्वान ने कालिदास को गुप्त राजाओं का समकालीन बतलाया है और अपने इस मत में उन लोगों ने प्रमाण यह दिया है कि कालिदास ने रघुवंश में "गुप्त" शब्द का प्रयोग किया है। इस मत का समर्थन करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। इस मत का जब मैं समर्थन करना चाहता हूँ, उस समय "सगुप्तमूल प्रत्यन्तः" के गुप्त-शब्द में ऐसी कोई योग्यता दिखाई नहीं पड़ती, जो गुप्त राज्य के समय कालिदास के होने को प्रमाणित करे। यहाँ गुप्त शब्द रक्षित के अर्थ में आया है, यह नामान्त प्रयोज्य गुप्त शब्द नहीं है। यदि इसी प्रकार किसी प्रयुक्त शब्द को देख कर किसी के समय का अनुमान किया जा सकता है, तब ऐसा कोई काल नहीं, जिसमें कालिदास का होना प्रमाणित न किया जा सके। कालिदास पुरुरवा के समय हुए थे, क्योंकि शब्द ही नहीं, किन्तु पुरुरवा पर इन्होंने विक्रमोर्वशीय नाटक बनाया है। इसी प्रकार दुष्यन्त, शिव और रघु, अज, दशरथ, राम आदि सभी के समय कालिदास हुए थे, क्योंकि इन सब का इन्होंने वर्णन किया है। इन्हीं कारणों से मैं कहता हूँ, उन खोजों का सङ्कलन करना मेरे लिए आवश्यक नहीं है। हाँ, कालिदास के विषय में संस्कृत कवियों की जो उक्तियाँ मिलती हैं, उनका संग्रह कर देना ही मेरे लिए पर्याप्त और प्रामाणिक है।

अभिनन्द महाकवि ने कवियों के संबन्ध में एक श्लोक लिखा है, उसमें कतिपय कवि और उनके आश्रयदाता राजाओं का वर्णन है।

हालेनोत्तम पूजया कविवृषः श्री पालितो लालितः
ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना
श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणी फलम्
सद्यः सत्क्रिययाभिनन्दमपि च श्रीहार वर्षोऽग्रहीत् ॥

इस श्लोक से मालूम होता है कि शक विजयी विक्रमादित्य के यहाँ कालिदास रहते थे। कुछ लोग कहते हैं, कि इस श्लोक में बहुवचन का प्रयोग किया गया है, जिससे कम से कम तीन कालिदासों का होना सिद्ध होता है। इस संबन्ध में महाकवि राजशेखर का एक श्लोक भी उद्धृत किया जाता है, जिसमें तीन कालिदासों का होना स्पष्ट लिखा है—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
श्रृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयो किमु ॥

इस प्रकार नवमसदी के पहले तीन कालिदास हुए थे, यह बात मालूम होती है। कालिदास के नाम से इस समय जो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, उनमें कौन किस कालिदास का बनाया है इसका निर्णय करना कठिन है, क्योंकि इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

कालिदास कब हुए थे? उनका समय क्या है? यह बड़ाही जटिल विषय बनाया गया है। विक्रमादित्य की सभा में कालिदास थे और विक्रमादित्य का जो समय है अर्थात् ईसवी सदी से पहले, वही समय कालिदास का समय है, यह भारतीय पण्डितों का कहना है। पर पश्चिमी पण्डित कालिदास का समय ५वीं या ६वीं सदी मानते हैं। धारा नगरी के राजा सिन्धुराज की सभा में परिमल नाम के एक कवि रहते थे, जिन्होंने

अपने को अभिनव कालिदास लिखा है। इससे कुछ लोग इन्हींको कालिदास समझते हैं और सिन्धुराज का समय कालिदास का बतलाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नामक नाटक में शुङ्गराज अग्निमित्र का वर्णन किया है और उनके युद्ध का उल्लेख किया है जो आखों देखे के समान वर्णन हुआ है। इससे कालिदास का होना ई० स० से पहले मानना चाहिए। रघुवंश, कुमार-सम्भव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय ये छः ग्रन्थ कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सब ग्रन्थ एकही कालिदास के बनाये हैं,या भिन्न भिन्न कालि-दासों के, इसका निर्णय करना कठिन है। पर इनकी भाषा पर ध्यान देने से इनके एककर्तृत्व होना मानने की इच्छा होती है। इनके अतिरिक्त ऋतुसंहार, नलोदय आदि ग्रन्थ भी कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हैं, इनके कर्ता कोई दूसरे कालिदास होंगे।

ज्योतिर्विदाभरण नामक ज्योतिष ग्रन्थ के कर्ता भी कालिदास थे; पर ये कालिदास प्रसिद्ध कालिदास से भिन्न थे।

(रघुवंश से)

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच॥ १॥

भगवान रामचन्द्र पुष्पक विमान के द्वारा आकाश मार्ग से लङ्का से चले। वहाँसे उन्होंने समुद्र को देखा। उस समय उनके मनमें समुद्र के विषय में जो भाव उत्पन्न हुए वे राम-चन्द्रजी ने अपनी स्त्री से कहे।

विदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥ २ ॥

वैदहि, देखो, मेरे सेतु के द्वारा यह फेनिल समुद्र मलयाचल तक दो भागों में विभक्त हुआ मालूम पड़ता है। यह समुद्र शरत्काल के आकाश के समान मालूम पड़ता है, जिसमें सुन्दर ताराएँ छिटकी हों और जो छायापथ के द्वारा दो भागों में विभक्त हुआ हो।

गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरंगे ।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ॥ ३ ॥

इस समुद्र को मेरे पूर्वजों ने ही बढ़ाया है। पिता यज्ञ करना चाहते थे कपिल उनके यज्ञीय अश्व को रसातल में लेकर चले गये। उसी अश्व के लिए मेरे पूर्वजो ने पृथ्वी खोदी और उससे यह समुद्र बढ़ा।

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।
अविन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ॥ ४ ॥

इस समुद्र से सूर्य की किरणें गर्भ धारण करती हैं, इस समुद्र में रत्नों की वृद्धि होती है। बिना इंधन के जलनेवाली आग यह समुद्र धारण करता है और प्रसन्न करनेवाली ज्योति रात्रि को धारण करता है।

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥ ५ ॥

यह अनेक अवस्थाएँ धारण करता है। अपनी महिमा से दशों दिशाओं में फैला हुआ है। विष्णु की महिमा के समान

इसकी भी महिमा ऐसी है और इतनी है इसका निश्चय नहीं किया जा सकता है।

नाभिप्ररूढ़ाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते॥ ६॥

प्रलय काल में भगवान् विष्णु समस्त लोकों को एकत्र करके इस समुद्र में शयन करते हैं और वहाँ ही विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न आदि ब्रह्मा उनकी स्तुति करते रहते हैं।

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः।
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते॥ ७॥

इन्द्र पर्वतों का पक्ष-छेदन करने लगे। तब अनेक पवत इसकी शरण गये, जिस प्रकार पीड़ित राजा उदासीन धर्मात्मा राजा की शरण में जाते हैं। कहते हैं कि मैनाक आदि कई पर्वत समुद्र की शरण में अब तक वर्तमान हैं।

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव॥ ८॥

वराहावतार में जब भगवान रसातल से पृथवी को अपने दाँतों पर रखकर निकाल रहे थे, तो उस समय बढ़ा हुआ प्रलयकालीन इसका स्वच्छ जल, एक मुहूर्त उनके मुख की शोभा के लिए हुआ था।

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः॥
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धुः॥ ९॥

नदियाँ समुद्र की ओर मुख करने में स्वभाव से ही प्रगल्भ हैं और समुद्र भी अपना तरङ्गरूपी अधर देने में दक्ष

है। समुद्र का अपनी स्त्रियों के प्रति यह व्यवहार अनुपम है, वह नदियों का अधर स्वयं पीता है, अपना उनको पीने के लिए देता है।

ससत्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान्॥ १०॥

इन तिमी नाम की मछलियों ने नदी के मुहाने पर का प्राणिसहित जल अपने मुँह में लिया। खाने की इच्छा से जब इन्होंने अपना मुँह बन्द किया, तब इनके रन्ध्रयुक्त मस्तक से जलधारा निकलने लगी।

मातङ्गनक्रैःसहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान्।
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम्॥ ११॥

वह देखो, जल के हाथी कूद रहे हैं, उनके कूदने के समय समुद्र फेन दो भागों में विभक्त हो जाता है, जो फेन इनके कपोलों पर लगा रहता है, वह एक क्षण के लिए चामर के समान मालूम पड़ता है।

वेलानिलायप्रसृता भुजंगा महोर्मिविस्फर्जथुनिर्विशेषाः।
सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैर्व्यजन्त एते मणिभिः फणस्थैः॥ १२॥

समुद्र के तीर पर बड़े बड़े अजगर सर्प पड़े हुए हैं, जो समुद्र की बड़ी बड़ी लहरियों में मिल गये हैं। सूर्य की किरणों के पड़ने से इनके फण के मणि जब प्रकाशित होते हैं, तब ये पहचाने जाते हैं।

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम्॥ १३

तुम्हारे अधर की समानता करने वाले मूँगों पर लहरियों के वेग से यह शंखों का समूह फैल गया है और मूँगों के ऊपर उठते हुए टहनियों में शंखों का मुँह फँस गया है, जिस कारण वे कठिनता से वहाँ से निकल पाते है ।

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद्भ्रमता घनेन ।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥ १४ ॥

मेघ ने जल पीना प्रारम्भ ही किया था कि जल के चक्कर के वेग से वह घूमने लगा, ऐसी दशा में मालूम होता है यह समुद्र पुनः पर्वत के द्वारा मथा जाता है ।

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा ॥ १५ ॥

वह लवण समुद्र लोहे के चक्के के समान है, दूरसे छोटी मालूम पड़ने वाली उसकी तीरभूमि, जो माल ताली आदि वृक्षों से नीली होरही है—कलङ्करेखा के समान मालूम पड़ती है।

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायताक्षि ।
मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेत्तीव विम्बाधरबद्धतृष्णम् ॥ १६ ॥

समुद्रतीर का वायु केतकरेणु से तुम्हारे मुख को शोभित कर रहा है, यह जानता है कि तुम्हारे विम्बाधर का मैं अभिलाषी हूँ । और उसके सजाने आदि में जो समय लगेगा, उसके सहने में मैं असमर्थ हूँ ।

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिःपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।
प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्कूले फलावर्जितपूगमालम् ॥ १७ ॥

एक मुहूर्त में ही विमान के वेग से हम लोग समुद्र के उस तीर पर पहुँच गये हैं, जहाँ तीर की रेतीली ज़मीन पर

फूटी हुई सीपों से मोतियां फैली हुई हैं और फलशून्य सुपारी के वृक्ष हैं ।

कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम् ।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ॥ १८ ॥

हे करभोरु, तुम्हारे नेत्र मृग के समान है, इसलिए तुम पीछे—जिस मार्ग को हम लोग छोड़ आये हैं—देखो, यह समुद्र से दूर होनेवाली भूमि और वन मानों पास दौड़े आते हैं ।

क्वचित्पथा संचरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च ।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥१९॥

कभी देवताओं के मार्ग से, कभी मेघ मार्ग से और कभी पक्षियों के मार्ग से यह विमान चल रहा है, इसके चलने के विषय में जैसी मेरे मन की इच्छा होती है, वैसेही यह विमान भी चलता है ।

असौ महेन्दुद्विपदानुगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते ॥ २० ॥

यह आकाश—वायु जो इन्द्र के हाथी के मदगन्ध से वासित है और गङ्गा की तरङ्गों के संसर्ग से शीतल हो गया है—दोपहर के कारण तुम्हारे मुँह पर जो पसीना आया है उसे पोंछता है ।

करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या ।
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते ॥ २१ ॥

हे चंडि, कुतूहलिनी होकर तुमने खिड़की से हाथ निकाल कर मेघ को छुआ, उससे मेघ का विद्युत्‌रूपी आभरण प्रका-

शित हो गया और मालूम पड़ने लगा कि वह तुम्हे दूसरा आभरण पहना रहा है ।

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि ।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि ॥ २२ ॥

जनस्थान के सभी बाधाविघ्न दूर हो गये, यह समझ कर ये मुनिगण नये झोपड़े बना रहे हैं और अपने अपने आश्रमों में जो बहुत दिनों से छूटा हुआ था—रहे हैं ।

सैपास्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥ २३ ॥

यही भूमि है जहाँ तुम को ढूँढ़ते हुए मैंने पृथिवी पर गिरा हुआ तुम्हारा एक नूपुर देखा था, जो तुम्हारे चरणों के वियोग दुःख से मानो चुपचाप पड़ा था ।

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥ २४ ॥

हे भीरु, राक्षस तुमको हर कर जिस मार्ग से ले गया वह मार्ग कृपाकर इन लताओं ने मुझे बतलाया था । वे बोल नहीं सकती थीं, पर पल्लवहीन शाखाओं के द्वारा इन्होंने बतलाया ।

मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम् ।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीवविलोचनानि ॥ २५ ॥

तुम्हारा पता मुझे इन मृगियों ने बताया । इन्हों ने घास खाना छोड़ दिया, और विकसित कमल के समान अपनी आँखें दक्षिण दिशा की ओर उठायीं, इससे तुम्हारा दक्षिण दिशा में जाना मुझे मालूम हुआ ।

एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥ २६ ॥

इस माल्यवान् पर्वत के आगे जो आकाश को छूने वाला पर्वत का शिखर दिखायी पड़ता है, वहाँ मेघों ने तो नवीन जल बरसाया और मैंने तुम्हारे वियोग से उत्पन्न आसूँ ।

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्गतकेशरं च ।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे ॥२७॥

जहाँ तुम्हारे बिना मुझे ये सब चीज़ें असह्य मालूम पड़ती थीं—वृष्टि के कारण छोटे छोटे जलाशयों से उत्पन्न गन्ध, अर्धविकसित कदम्ब पुष्प और मयूरों की मनोहर कूक ।

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम्
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्घनगर्जितानि ॥ २८ ॥

भीरु, उस समय पहले का अनुभूत तुम्हारा सकम्प आलिङ्गन मैंने स्मरण किया और उसी स्मृति से गुहा में फैलनेवाला मेघगर्जन का समय मैंने किसी प्रकार बिताया ।

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः ।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ॥ २९ ॥

उस शिखर पर मैंने विकसित कन्दली के नये पुष्प देखे । वृष्टि से सींची हुई भूमि के भाफ के कण उसमें लगे हुए थे । उनको देखने से मुझे विवाह के धूम से लाल हुई तुम्हारी आँखों का स्मरण हो गया और उससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ ।

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥ ३० ॥

यह पम्पा का जल समीपस्थ वेतस वन से छिपा हुआ है। पर चञ्चल सारस थोड़ा दिखायी पड़ते हैं। उस पम्पा जल को दूर से पड़ी हुई मेरी दृष्टि मानों थक कर पान कर रही है अर्थात् वहाँ से हटना नहीं चाहती।

अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि॥३१॥

यहीं पम्पासर पर मैंने अवियुक्त चक्रवाक दम्पती को देखा था। वे आपस में एक दूसरे को कमल केशर दे रहे थे उनको तुमसे दूर रहने वाले मैंने बड़ी स्पृहा से देखा था।

इमां तटाशोकलतां च तन्वीस्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्।
त्वत्प्राप्तिबुध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः॥३२॥

इस पतली पम्पातीर की अशोकलता को, जो गुच्छरूपी स्तनों के कारण नय गयी है, देख कर मैंने समझा कि तुम मिल गई और आलिंगन करने के लिए चला, पर रोते हुए लक्ष्मण ने मुझे वैसा करने से रोक दिया।

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं कांचनकिंकिणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम्॥३३॥

विमान के भीतर लटकनेवाली सुवर्ण की घंटियों का शब्द सुन कर आकाश में उड़ने वाली यह गोदावरी के सारसों की पंक्ति तुम्हारी ओर आ रही है।

एषा त्वयापेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे॥३४॥

यह पंचवटी है, जहाँ छोटे छोटे आम के वृक्षों को घड़े के जल से तुमने बढ़ाया था, जिसमें कृष्णमृग ऊपर की ओर

देख रहे हैं । बहुत दिनों पर देखने के कारण वह पंचवटी मुझे आनन्दित कर रही है ।

> अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरंगवातेन विनीतखेदः ।
> रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्ण मूर्धा स्मरासि वानीरगृहेषु सुप्तः ॥ ३५ ॥

यहाँ गोदावरी के तीर पर मैं शिकार से लौट कर आया । गोदावरी की तरंगों से मेरी थकावट दूर हुई और तुम्हारी गोद में मैं सोगया । मैं वतस गृह का अपना सोना स्मरण करता हूँ ।

> भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ।
> तस्याविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेःस्थानपरिग्रहोऽयम् ॥३६॥

जिन्होंने भृकुटि के संचालन मात्र से नहुष को इन्द्रपद से हटा दिया था, उस मुनि का—जो गोद ले जल को शुद्ध बनाते हैं यह पृथवी का स्थान है, अर्थात् अगस्त्य का आश्रम है ।

> त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।
> घ्रात्वा हविर्गन्धिरजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा ॥३७॥

उस महर्षि के तीनों अग्नियों का धूम जिसमें हवि की गन्ध है, विमानमार्ग तक आरहा है, उसके सूँघने से मेरा मन निष्पाप होगया है और वह हलका मालूम पड़ता है ।

> एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि
> अमाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुविम्बम् ॥ ३८ ॥

हे मानिनी,यह शातकर्णी मुनि के पञ्चाप्सर नामक क्रीडा-सर है, जो चारो तरफ़ से वन से घिरा हुआ, मेघों से छिपे हुए ईषत् दृश्य चन्द्रमा के समान मालूम पड़ता है ।

पुरा स दर्भांकुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोना ।
समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् ॥३९॥

पहले वे मुनि दर्भाङ्कुर खाते थे और मृगों के साथ रहते थे। उनकी तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने पाँच अप्सराओं को भेज कर कपट जाल रचा था।

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसंगीतमृदङ्गघोषः ।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥४०॥

छिपी हुई अटारी में रहनेवाले उस मुनि के यहाँ सदा वजनेवाले मृदङ्ग का घोष, पुष्पक विमान के ऊपरवाले कमरे को प्रतिध्वनित कर रहा है।

हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः ।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः ॥४१॥

सौम्यचरित सुतीक्ष्ण नाम के ये दूसरे तपस्वी तपस्या करते हैं, ये पंचाग्निव्रत कर रहे हैं, पंचाग्नि में चार तो अग्नि हैं और पाचवाँ सूर्य है।

अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसंदर्शितमेखलानि ।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि ॥४२॥

यद्यपि इनकी तपस्या से भी इन्द्र को शङ्का होगयी है, उसने इनके लिए भी अप्सरायें भेजी हैं। पर मुस्कुराहट और हँसी मिला उनका देखना, किसी बहाने करधनी का दिखलाना तथा उनके और विलास व्यवहार इनको विचलित नहीं कर सके।

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते ॥४३॥

ये ऊर्ध्व बाहु हैं, हमारे स्वागत के लिए इन्होंने दक्षिण भुजा हमारी ओर उठायी है, उसमें अक्षमाला का वलय धारण किया है और वह हाथ मृगों की खुजलाहट दूर करता है तथा कुश लाता है ।

वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किंचित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्रार्चिषि संनिधत्ते ॥४४॥

ये मौनी हैं, इस कारण शिर थोड़ा हिला कर इन्होंने मेरा प्रणाम ग्रहण किया है, विमान के व्यवधान से मुक्त हुई दृष्टि को पुनः सूर्य की किरणों में ये लगाते हैं ।

अदः शरण्यः शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः ।
चिराय संतर्प्य समिद्भिरग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ॥४५॥

यह अग्निहोत्री शरभंग मुनि का पवित्र तपोवन है । जहाँ शरणार्थियों की रक्षा होती है। लकड़ियों से बहुत दिनों तक अग्नि को सन्तुष्ट कर जिसने अन्त में मन्त्रपूत अपने शरीर का भी हवन कर दिया ।

छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठ सभाव्यफलेष्वमीषु ।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विवपादपेषु ॥४६॥

आज शरभंग के अतिथियों की परिचर्या सुपुत्र के समान उनके आश्रम के वृक्षों पर है, वे वृक्ष अपनी छाया द्वारा पथिकों के परिश्रम को दूर करते हैं, और अनेक प्रकार के फल देते हैं । अर्थात् महर्षि अब नहीं हैं ।

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंकः ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ॥४७॥

दरीरूपी मुख से सदा शब्द हो रहा है, जिसके शृङ्ग (शिखर या सींग) मेघ रूपी वप्रपंक लगा हुआ है, हे बन्धुवर,

गात्रि, वह चित्रकूट पर्वत मस्त बैल के समान मेरी आँखों को बाँध रहा है।

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकंठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः॥ ४८॥

यह मन्दाकिनी नदी बहुत दूर होने के कारण छोटी मालूम पड़ती है, इसका प्रवाह सुन्दर और निश्चल है, पर्वत के पास वह नदी पृथ्वी के गले में पड़ी हुई मोतियों की माला के समान मालूम पड़ती है।

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।
यवाङ्कुरा पाण्डुकपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्ते॥ ४९॥

पर्वत के पास सुन्दर उत्पन्न हुआ यह तमाल वृक्ष दिखाई पड़ता है, जिसके सुगन्धित पल्लव लेकर यवाङ्कुर के समान पीले तुम्हारे कपोलों पर शोभने वाला कर्णभूषण मैंने बनाया था।

अनिग्रहत्रासविनीतसत्वमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धि वृक्षम्।
वनंतपः साधनमेतदत्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्॥ ५०॥

यह अत्रि मुनि की तपस्या का वन है, जहाँ उनका विशाल प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। बिना दण्ड और भय के ही यहाँ के जन्तु विनीत हैं और पुष्प के बिनाही वृक्ष फल देते हैं।

अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्।
प्रवर्तयामास किलानुसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम्॥ ५१

अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया ने यहाँ तपस्वियों के स्नान आदि के लिए गंगा को प्रवाहित किया है, जिस गंगा से सप्तर्षिगण सुवर्ण-कमल तोड़ते हैं और जो गङ्गा शिवजी के मस्तक की माला है।

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाममीसमध्यासितवेदिमध्याः ।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ॥५२॥

जिस वेदी पर वीरासन से बैठ कर ऋषि लोग ध्यान करते हैं, उस वेदी पर के वृक्ष वायु के न होने के कारण निष्कम्प हैं और वे योगी के समान मालूम पड़ते हैं।

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति ॥ ५३ ॥

तुमने पहले जिससे प्रार्थना की थी, यह वही प्रसिद्ध श्यामवट है, जो हरित मणि के राशि के समान मालूम होता है और फलने पर पद्मराग युक्त हरितमणि के राशि के समान मालूम पड़ता है।

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥ ५४ ॥

गङ्गा और यमुना की तरङ्गों के आपस में मिलने से मालूम पड़ता है कि मुक्तामयी यष्टि में प्रकाशमान इन्द्रनील जड़े हों और श्वेत कमल की माला के समान मालूम पड़ता है जिसके बीच बीच में नील कमल गूथे गये हों।

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥ ५५ ॥

कहीं मानसरोवर के प्रेमी श्वेत हंसों की पंक्ति—जिसमें नीले हंसों से मिली हुई सी मालूम होती है, और कहीं पृथिवी पर चन्दन से चित्र बनाया गया है जो काले अगरु की बीच बीच में रेखा खींची गयी सा मालूम पड़ता है।

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैःशबली कृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ॥ ५६ ॥

कहीं छाया में छिपे अन्धकार से मिली हुई चन्द्रमा की प्रभा के समान और कहीं शरद् के शुभ्र मेघ के समान मालूम पड़ता है जिसके मध्य में आकाश दिखाई पड़ता है ।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥ ५७ ॥

कहीं महादेव के शरीर के समान मालूम पड़ती है, जिसमें काले सर्प लिपटे हैं और जो भस्म के कारण श्वेत है। हे सुन्दराङ्गि, यमुना की तरङ्गों से मिलने के कारण गङ्गा ऐसी मालूम पड़ती हैं, यह तुम देखो ।

अभिज्ञानशाकुन्तल से

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिरनिशं चिन्ताजडं दर्शनम्,
वैक्लव्यं मम तावदीदृश मही स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ५८ ॥

आज शकुन्तला जायगी, इससे मेरा हृदय उत्कंठित हो गया है, गले में वाष्प के रुक जाने से आवाज़ नहीं निकलती, आँखों से कुछ दिखाई नहीं पड़ता । मैं वनवासी हूँ, फिर भी स्नेह के कारण इतना व्याकुल होगया हूँ । तब संसारी जन कन्या के नवीन वियोगदुःख से क्यों पीड़ित न होते होंगे ।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवं
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याभवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ५९ ॥

वृक्षों को सम्बोधन करके महर्षि कण्व कहते हैं, आप सब को बिना जल दिये जो स्वयं पहले जल न पीती थी, यद्यपि उसको गहने प्यारे थे तथापि स्नेह से आप सब के पत्ते न तोड़ती थी, जब आप सब को पहले पहल फूल आता था, उस समय जो उत्सव करती थीं, वह शकुन्तला आज अपने पतिगृह में जाती है, आप सब आज्ञा दें।

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे,
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥ ६० ॥

जिस मृग को कुश का डाभ लगने से घाव होगया था और उसमें इङ्गुदी का तेल तुमने लगाया था, क्योंकि वह तेल घाव भरने के लिए प्रसिद्ध है, जिसको तुमने साँवा की मुट्ठी देकर पाला था, वह तुम्हारा कृत्रिम पुत्र मृग तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता।

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैःकुलं चात्मनः
स्त्वय्यस्याः कथमप्यवान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्,
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ ६१ ॥

मुनि शकुन्तला के लिए राजा को सन्देशा कहते हैं—हम लोग तपस्वी हैं इस बात को सोच कर अपने ऊँचे कुल की

ओर देख कर और बान्धवों की आज्ञा के बिना भी इसने जो तुम पर प्रेम किया है, उसकी ओर देख कर तुम अपनी स्त्रियों में इसे साधारण प्रतिष्ठा का पद देना, इसके बाद जो कुछ है वह भाग्याधीन है, वह कन्या के स्वजनों के कहने की बात नहीं है।

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तं सपत्नीजने,
भर्तुर्विप्रकृतापिरोषणतया मास्म प्रतीपं गमः,
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः ॥ ६२ ॥

पतिगृह में जाने के समय मुनि ने शकुन्तला को उपदेश दिया—बड़ों की सेवा करो, अपनी सौतों से प्रियसखी के समान व्यवहार करो, पति यदि अपमान भी करें तो क्रोध से उनके विरुद्धाचरण मत करो, नौकर चाकरों के साथ उदारता पूर्वक व्यवहार करो। अपने भाग्य का गर्व मत करो, स्त्रियाँ इसी प्रकार गृहणी पद पाती हैं, इससे विपरीताचरण करनेवाली कुल की कण्टक होती हैं।

अर्थोहि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिगृहीतुः
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ ६३ ॥

कन्या परकीय धन है, उसको पति के पास भेज कर मेरी आत्मा हल्की होगयी है, जिस प्रकार किसी की थाती लौटाने पर आत्मा प्रसन्न होती है।

मेघदूत से

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धिमामम्बुवाहं
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्,
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्,
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ ६४ ॥

यक्ष मेघ से अपनी स्त्री से कहने के लिए सन्देश कहता है। मैं तुम्हारे पति का मित्र हूँ, मुझे तुम मेघ समझो। तुम्हारे पति का संदेश लेकर मैं आया हूं, मेरा गर्जन सुन कर मार्ग में विश्राम करनेवाले वे पथिक जाने के लिए जल्दी करते हैं, जो अपनी स्त्री के वियोगिनी चिन्ह वेणी बंध खुलवाने के लिए उत्सुक रहते हैं।

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैव,
श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता सौम्यसीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किंचिदूनः ॥ ६५ ॥

जब तुम ऐसा कहोगे तो वह हनुमान को जानकी के समान उत्कण्ठित होकर तुम्हारी ओर देखेगी और तुम्हारा सत्कार करेगी। इसके पश्चात् सावधान होकर तुम्हारी बातें सुनेगी। सौम्य स्त्रियों के लिए पति का संदेश उसके मित्र के द्वारा यदि मिले तो संगम से थोड़ा ही कम है।

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः
अव्यापन्नः कुशलमवले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ६६ ॥

आयुष्मन्, मेरे कहने से और अपने उपकार के लिए भी तुम उससे कहना, तुम्हारा वियोगी साथी जो इस समय रामगिरि पर है सकुशल है और तुम्हारा कुशल पूछता है; क्यों कि सदा आपत्तियों से घिरे हुओं से पहले यही पूछना चाहिए।

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्
सोतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥ ६७ ॥

जो पहले सखियों के बीच में शब्द से कही जानेवाली बात को भी तुम्हारे मुखस्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिए चञ्चल होता था, आज वह तुमसे इतनी दूर पर है कि उसकी बात तुम सुन नहीं सकती, अपनी आँखों से उसे देख नहीं सकती, इसलिए उसने उत्कंठित होकर मेरे द्वारा ये बातें कहलायी हैं।

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥ ६८ ॥

प्रियंगुलता में तुम्हारे अंगों की शोभा, चकित हरिणी के देखने में तुम्हारा देखना, चन्द्र में मुख की कांति, मयूरों की चोटी में केशपाश की शोभा और पतली नदी की तरङ्गों में तुम्हारा भ्रू-विलास मैं देखता हूँ, पर दुःख है कि ऐसी एक कोई भी वस्तु नहीं है, जिसमें तुम्हारी पूरी समानता पायी जाय।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया—
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्,

अस्त्रैस्तावन्मुहरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥ ६९ ॥

गेरू आदि धातुओं से पत्थर पर मैं तुम्हारी प्रणय कुपित-मूर्ति अङ्कित करता हूँ, और उस मूर्त्ति के चरणों पर जब मैं पड़ना चाहता हूँ उस समय आँसू से आँखें भर जाती हैं, क्रूर भाग्य ऐसी दशा में भी हम लोगों का सङ्गम नहीं देख सकता ।

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु,
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थली देवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिशलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ७० ॥

स्वप्न में जब कभी मैं तुमको पाता हूँ, तब गाढालिङ्गन करना चाहता हूँ और गाढालिङ्गन करने के लिए आकाश में—शून्य में हाथ बढ़ाता हूँ, मेरी यह दशा देख कर बन देवताओ के बड़े बड़े अश्रुविन्दु वृक्षों के पत्तों पर गिरते हैं ।

भित्त्वा सद्यः किशलयपुटान् देवदारुद्रुमाणाम्
ये तत्क्षीरस्त्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः
आलिंग्यन्ते गुणवतिमया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वस्पृष्टं यदि किलभवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥ ७१ ॥

देवदारू वृक्ष के पत्तों से होकर और उसके दूध से सुरभित जो हिमालय की वायु दक्षिण की ओर से चलती है उसका मैं इस अभिप्राय से आलिङ्गन करता हूँ कि पहले इस वायु से तुम्हारे अंगों का संयोग हुआ होगा ।

कुमारदास

इन्होंने जानकीहरण नाम का काव्य लिखा है, इनका यह काव्य कालिदास के काव्यों के बराबरी का है। महाकवि राजशेखर ने इनके विषय में इस प्रकार लिखा है:—

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति
कविः कुमारदासो वा रावणो वा यदि क्षमौ ।

कुछ लोगों का कहना है कि ये कुमारदास सिंहल के राजा थे और कालिदास के मित्र थे। छठी सदी में कुमारदास नाम का एक राजा सिंहल द्वीप में था, इसका पता मिलता है। सम्भव है तीन कालिदासों में का दूसरा या तीसरा कालिदास इनका मित्र भी रहा हो। सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने बतलाया है कि कालिदास की समाधि का पता सिंहल में लगा है।

जोहो, इन बातों से यह मानना कि रघुवंश कर्ता कालिदास के मित्र कुमारदास थे यह ठीक नहीं; क्योंकि दोनों के समय में विशेष अन्तर है। हां सिंहल के राजा की रामचन्द्र में ऐसी प्रगाढ़ भक्ति का होना अवश्य ही एक आश्चर्य की बात है।

कुमारदास की कविता बड़ी ही सरस और स्वाभाविक होती थी, इन्होंने अपना काव्य रघुवंश को आदर्श मान कर बनाया है, दुःख की बात है कि आज इसका प्रचार नहीं। इनके कुछ श्लोक सुनिये।

शिशिरशीकरवाहिनि मारुते
चरति शीतभयादिव सत्वरः ।

मनसिजः प्रविवेश वियोगिनी-
हृदयमाहितशोकहुताशनम्।

शिशिर ऋतु में ठंढे जलकण लेकर जब हवा बहती थी तब शीत के भय से कामदेव शीघ्रही वियोगिनियों के हृदय में घुस गया, क्योंकि वियोगिनियों के हृदय में शोकाग्नि रक्खी हुई है।

भ्रान्त्वा विवस्वानथ दक्षिणाशा,
मालम्ब्य सर्वत्र करप्रसारी,
ऋत्विक्ततो निःस्व इव प्रतस्थे
वसूपलब्ध्यै धनदस्य वासम्।

दरिद्र पुरोहित जिस प्रकार दक्षिणा की आशा से चारों तरफ हाथ फैलाता फिरता है और धन के लिए दाता के पास जाता है। उसी प्रकार सूर्य दक्षिणाशा दक्षिण दिशा में घूम कर उसने सब जगह कर—हाथ फैलाये और प्रकाश प्राप्त करने के लिए कुवेर की दिशा—उत्तर दिशा में वह गया।

अपि विजहीहि दृढोपगूहनं
त्यज नवसंगमभीरु वल्लभे,
अरुणोद्गम एव वर्तते
वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः,

दृढ़ आलिङ्गन अब छोड़ो, नवसंगम से त्रस्त बल्लभे, छोड़ो यह अरुणोदय होरहा है, कुक्कुट बोल रहे हैं।

पश्यन् हतो मन्मथदृष्टिपातैः
शक्तो विधातुं न निमील्य चक्षुः
ऊरू विधात्रा हि कृतौ कथं ता-
वित्यास तस्यां सुमतेर्वितर्कः

यदि देखता हुआ बनाता तो कामदेव के दृष्टिपात से अवश्य मारा जाता और आँखे बन्द कर बनाने की उसमें शक्ति ही नहीं है, फिर ब्रह्मा ने जंघा कैसे बनाये, यह बुद्धिमानों का उसके विषय में वितर्क है।

वयः प्रकर्षादुपचीयमान-
स्तनद्वयस्योद्वहनश्रमेण
अत्यन्तकार्श्यं वनजायताक्ष्या
मध्यो जगामेति ममैष तर्कः।

उमर के साथ साथ बढ़ने वाले स्तनों के ढोने के परिश्रम से उस कमलाक्षी की कमर पतली होगयी है, यह मेरा तर्क है।

कृष्णमिश्र यति

इन्होंने प्रबोधचन्द्रोदय नाम का एक नाटक बनाया है। कीर्तिवर्मा नाम के चालुक्य राजा के आश्रय में ये रहते थे। कीर्तिवर्मा "चन्द्रान्वय" कहे जाते थे, चालुक्य वंशवाले अपने को चन्द्रवंशी समझते हैं इसी कारण कीर्तिवर्मा का विशेषण "चन्द्रान्वय" था, कलचूरी वंश का राजा कर्ण कीर्तिवर्मा का शत्रु था। उसने कीर्तिवर्मा को पराधीन बना दिया था, पुनः उसके सेनापति ने इन्हें स्वाधीन बनाया, ये ग्यारहवीं ई० सदी में उत्पन्न हुए थे।

कृष्णमिश्र का प्रबोध चन्द्रोदय धार्मिक नाटक है, उसमें कामक्रोध आदि कुवृत्तियों के आस्फालन का वर्णन है, क्षमा सन्तोष आदि से होनेवाले लाभ भी बतलाये गये हैं, अन्त में ब्रह्मतत्व का भी निरूपण अच्छे ढंग से किया गया है। यह नाटक भक्तिप्रधान है।

एकामिषप्रभवमेव सहोदराणाम्
मुज्जम्भते जगति वैरमिति प्रसिद्धम्,
पृथ्वीनिमित्तमभवत्कुरुपाण्डवानाम्,
तीव्रस्तथाहि भुवनक्षयकृद्विरोधः ।

एक वस्तु की चाह से सहोदर भाइयों में भी वैर होजाता है यह प्रसिद्ध है। पृथिवी के ही कारण कौरव पाण्डवों का कठिन विरोध हुआ था और उससे संसार का नाश हुआ।

सहजमलिनवक्रभावभाजां
भवति भवः प्रभवात्मनाशहेतुः
जलधरपदवीमवाप्य धूमो
ज्वलनविनाशमनुप्रयाति नाशम् ।

स्वभाव से नीच और कुटिल प्रकृतिवाले मनुष्यों का जन्म अपने और अपने कुल के नाश के लिए होता है। धूम मेघ बन कर पहले अग्नि का नाश करता है पुनः स्वयम् भी नष्ट होजाता है।

अन्धीकरोमि भुवनं वधिरीकरोमि,
धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि ।
कृत्यं न पश्यति न येन हितं शृणोति,
धीमानधीतमपि न प्रतिसन्दधाति ।

क्रोध कहता है कि मैं लोगों को अन्धा बना देता हूं, बहरा बना देता हूं, मैं ऐसा कर देता हूं जिससे मनुष्य अपना कर्त्तव्य भूल जाता है, बुद्धिमान मनुष्य भी पढ़े हुए विषयों का स्मरण नहीं कर सकता है।

ध्यायन्ति यां सुखिनि दुःखिनि चानुकम्पां
पुण्यक्रियासु मुदितां कुमतावुपेक्षाम् ।
एवं प्रसादमुपयाति हि रागलोभ--
द्वेषादिदोषकलुषोऽप्ययमन्तरात्मा ।

जो सुखियों से मैत्री, दुखियों से प्रेम, पुण्य से प्रसन्नता का अनुभव और कुबुद्धि की उपेक्षा करते हैं उनका अन्तरात्मा, राग लोभ द्वेष आदि दोषों से कलुषित होने पर भी शुद्ध हो जाता है ।

प्रायः सुकृतिनामर्थे देवायान्ति सहायताम्,
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ।

पुण्यात्माओं के कार्यों में प्रायः देवता लोग भी सहायता करते हैं और कुमार्ग जानेवाले का साथ सहोदर भाई भी छोड़ देता है ।

क्रमो न वाचां शिरसो न शूलं
न चित्ततापो न तनो र्विमर्दः
न चापि हिंसादिरनर्थयोगः
श्लाघ्या परं क्रोध जयेऽहमेका ।

वचन को परिश्रम नहीं करना पड़ता । शिर में दर्द ही होता है, चित्त को भी दुःख नहीं होता, शरीर के टूटने फूटने का भी भय नहीं रहता, हिंसा आदि पापों के होने का भी भय नहीं रहता, केवल मैं ही (क्षमा) क्रोध को जीतने के लिए उत्तम साधन हूँ ।

तं पापकारिणमकारणबाधितारं
स्वाध्यायदेवपितृयज्ञतपःक्रियाणाम्
क्रोधंस्फुलिङ्गमिव दृष्टि भिरु मामन्तं
कात्यायनीवमहिषं विनिपातयामि ।

उस पापी को जो विना कारण स्वाध्याय, देव यज्ञ पितृ-यज्ञ आदि क्रियाओं को नष्ट करता है, आखों से अग्नि स्फुलिंग उगलता है जिस प्रकार कात्यायनी ने महिषा सुर को मारा था—मैं (क्षमा) पछाडूंगी ।

फलं स्वेऽच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहाम्,
पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम् ।
मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलतापल्लवमयी
सहन्ते सन्ताप तदिह धनिनां द्वारि कृपणाः ।

प्रत्येक वन में वृक्षों के फल बिना परिश्रम—अनायास मिल सकते हैं, स्थान स्थान पर पवित्र नदियों का ठंढा और मीठा जल मिलता है, सुन्दर लता और पल्लवों की कोमल शय्या है, फिर भी कृपण मनुष्य धनियों के द्वारों पर कष्ट उठाया करते हैं, पर कारण कुछ नहीं है ।

मोहान्धकारमवधूय विकल्पनिद्रा
मुन्मथ्य कोऽप्यजति बोधतुषाररश्मिः
श्रद्धाविवेकमतिशान्तियमादिकेन
विश्वात्मकः स्फुरति विष्णुरहं स एवः

अज्ञानान्धकार का नाश करके और भ्रमरूपी निद्रा को दूर करके ज्ञान रूपी चन्द्रमा का उदय हो गया; श्रद्धा विवेक बुद्धि शान्ति और चितवृत्ति के निरोध आदि के द्वारा विश्व-स्वरूप जो प्रकाशित होता है वह विष्णु मैं स्वयं हूँ ।

सङ्गं न केनचिदुपेत्य किमप्यपृच्छन्
गच्छन्नतर्कितफलं विदिशं दिशं वा,
शान्तेप्यपेतभयशोककषायमोहः
स्वायंभुवो मुनिरहं भविता स्मिसद्यः ।

किसीका भी साथ न करनेवाला, किसीसे कुछ न पूछनेवाला, बिना उद्देश्य चारों ओर घूमनेवाला, भय शोक रागद्वेष मोह आदि को दूर करनेवाला मैं शीघ्र ही नित्य मुक्त होऊंगा ।

क्षेमेन्द्र

ये कश्मीर के रहनेवाले थे । काश्मीरराज अनन्तराज के समय में इन्होंने समय मातृका नामका एक ग्रन्थ बनाया था। ये दसवीं सदी के समझे जाते हैं। ये बहुत बड़े पंडित लोक-व्यवहार-चतुर सुकवि और परिश्रमी थे, इन्होंने बौद्ध-साहित्य की भी पुस्तकें लिखी हैं। इनके बनाये तीस ग्रन्थों का पता अभी तक मिला है।

क्षेमेन्द्र के बनाये ग्रन्थ

१ अमृततरंग काव्य,	१६ बोधिसत्वावदानकल्पलता
२ अवसरसार,	१७ भारतमंजरी,
३ औचित्यविचार चर्चा,	१८ मुक्तावली,
४ कनकजानकी,	१९ राजावली,
५ कलाविलास	२० रामायणमंजरी,
६ कविकंठाभरण,	२१ लावण्यवती,
७ चतुर्वर्गसंग्रह,	२२ लोकप्रकाशकोश
८ चारुचर्या,	२३ वात्स्यायनसूत्रसार,
९ चित्रभारत,	२४ व्यासाष्टक,
१० दशावतार चरित,	२५ शशिवंशमहाकाव्य,
११ देशोपदेश,	२६ समय मातृका,
१२ नीतिकल्पतरु,	२७ सुवृत्त तिलक,
१३ पद्यकादंबरी,	२८ सेव्यसेवकोपदेश,
१४ पवनपंचाशिका,	२९ शिवसूत्रविमर्शिनी
१५ बृहत्कथा मंजरी,	३० स्पन्दनिर्णय,

शैव बौद्ध दर्शनों में इनका अनुराग था, इस कारण कुछ लोगों की समझ है कि ये पहले शैव थे और पुनः बौद्ध हो गये थे। इनके कतिपय ग्रन्थों में इनका शिवानुराग और कतिपय ग्रन्थों में बुद्धानुराग दीख पड़ता है। दोनों दर्शनों से संबन्ध रखनेवाले ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं।

स्वाम्ये पेशलता गुणेप्रणयिता हर्षे निरुत्सेकता
मंत्रे संवृतता श्रुतौसुमतिता वित्तोदये त्यागिता ॥
साधौ सादरता खले विमुखता पापे परं भीरुतां
दुःखे क्लेशसहिष्णुता च महतां कल्याणमाकांक्षति ॥ १ ॥

प्रभुता में निपुणता, गुणों में प्रेम, हर्ष में निरभिमानिता, मन्त्र में गुप्ति, शास्त्रों में सुबुद्धि, धन होने पर दान, साधुओं का आदर, खलों से पराङ्मुखता, पापों से डर, दुःख में क्लेश सहन करने की शक्ति ये सब गुण महात्माओं को कल्याण देने वाले हैं।

साभिमानमासंभाव्यमौचित्यच्युतमप्रियम्
दुःखावमानदीनं वा न वदन्ति गुणोन्नताः ॥ २ ॥

गुणी मनुष्य ऐसी बातें नहीं कहते जिनसे अभिमान जाहिर हो, जो असम्भव हो, उचित न हो, प्रिय न हो, दुःख अपमान अथवा दीनतायुक्त हो।

व्रते विवादं विमतिं विवेके सत्येतिशंकां विनये विकारम्
गुणेवमानं कुशले निषेधं धर्मे विरोधं न करोति साधुः ॥ ३ ॥

व्रत में विवाद, विवेक में मतभेद, सत्य में सन्देह, विनय में दुर्भावना, गुण में अपमान, कुशल का निषेध और धर्म का विरोध सज्जन मनुष्य कभी नहीं करते।

न्यायः खलैः परिहृतश्चलितश्च धर्मः कालः कलिः कलुष एव परं प्रवृत्तः ।
प्रायेण दुर्जनजनः प्रभविष्णुरेव निश्चक्रिकः परिभवास्पदमेव साधुः ॥ ४ ॥

खलोंने न्याय नष्ट कर दिया, धर्म विचलित हुआ, पाप-रूपी कलियुग प्रवृत्त हुआ, प्रायः दुर्जन मनुष्य ही शक्तिमान हुए और छलकपटहीन सज्जन पुरुषों का पराजय हुआ ।

पात्रं पवित्रयति नैव गुणान्क्षिणोति स्नेहं न संहरति नापि मलं प्रसूते ।
दोषावसानरुचिरश्चलतां न धत्ते सत्संगमः सुकृतिसद्मनि कोपि दीपः ॥५॥

पात्र को पवित्र करता है, गुणों को (गुण या दीपक की बत्ती) नष्ट नहीं करता, स्नेह (तेल या प्रेम) का नाश नहीं करता, कालिख (बुराई या कालिख) भी उत्पन्न नहीं करता, दोषों को (दोषा रात्रि या दोष) समाप्त करना चाहता है और चञ्चल नहीं होता । यह सत्समागम रूपी एक अद्भुत दीप सज्जनों के घर में रहता है ।

जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनरुत्थिताः
किं कनिष्ठा उत ज्येष्ठा घटीयन्त्रेस्य दुर्जनाः ॥ ६ ॥

जीवन (जल या प्राण) के ग्रहण करने में नम्र, और जीवन ग्रहण कर पुनः उठ खड़े होने वाले दुर्जन, क्या अरहट से छोटे हैं या बड़े ? जल लेना होता है तो अरहट नम्र होजाती है और जल लेकर वह ऊँची होजाती है, इसी प्रकार दुर्जन भी काम के समय नम्र होजाते हैं, और काम होजाने पर अलग हो जाते हैं ।

सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च
नमऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च ॥ ७ ॥

खल और उलूखल दोनों को नमस्कार, दोनों ही खण्डन (काँडना या खण्डन) के योग्य हैं, दोनों के हृदय में तुष (भूसा या दुर्विचार) भरा हुआ है और दोनों ही अनेक बीज वाले हैं।

जिह्वादूषितसत्पात्रः पिण्डार्थी कलहोत्कटः ॥
तुल्यतामशुचिर्नित्यं विभर्ति पिशुनः शुनः ॥ ८ ॥

चुगल कुत्ते के समान है, क्योंकि दोनों ही अपनी जीभ से सत्पात्र (शुद्धपात्र या सज्जन मनुष्य) को दूषित करते हैं, दोनों टुकड़े के अभिलाषी होते हैं, कलह करने में पक्के होते हैं और दोनों ही सदा अशुद्ध रहते हैं।

अहो बत खलः पुण्यैर्मूर्खोऽप्यश्रुतपण्डितः ।
स्वगुणोदीरणे शेषः परनिन्दासु वाक्पतिः ॥ ९ ॥

खल, भाग्यवश मूर्ख होने पर भी अद्भुत पण्डित हैं, यह आश्चर्य है । वह अपने गुणों के कहने में शेष और दूसरों की निन्दा करने में वृहस्पति हैं।

खलः सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः
सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वसावृत्य तिष्ठति ॥ १० ॥

सज्जनों की चुगलखोरी करने में खल के सभी ओर आँख, सिर और मुँह होते हैं, सब ओर उसके कान हैं और सब को घेर कर वह रहता है।

सत्साधुवादे मूर्खस्य मात्सर्यगलरोगिणः
जिह्वा कङ्कमुखेनापि कृष्टा नैव प्रवर्तते ॥ ११ ॥

जिसके गले में मत्सरता नामक रोग हुआ है, उस मूर्ख की जिह्वा कङ्कमुख नाम यन्त्र के द्वारा खींची जाने पर भी नहीं खुलती।

मायामयः प्रकृत्यैव रागद्वेषमदाकुलः ॥
महतामपि मोहाय संसार इव दुर्जनः ॥ १२ ॥

संसार और दुर्जन दोनों ही समान हैं, दोनों मायामय हैं, स्वभाव से ही राग, द्वेष और मद से वे दोनों व्याकुल रहते हैं, इनसे बड़ों को भी मोह उत्पन्न हो जाता है ।

खचित्रमपि मायावी रचयत्येव लीलया ॥
लघुश्च महतां मध्ये तस्मात्खल इतिस्मृतः ॥ १३ ॥

माया के द्वारा अनायास ही (ख) आकाश का भी चित्र वह बना लेता है, बड़ों के मध्य में वह लघु है, इसलिए खल कहा जाता है ।

खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना ॥
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे क्व गमिष्यसि ॥ १४ ॥

खल यदि धनी हो, नीच यदि शक्तिशाली हो, चुगल यदि अधिकारी हो तो इस प्रजा की क्या दशा होगी ।

न लज्जते सज्जनवर्जनीयया भुजंगवक्रक्रिययापि दुर्जनः ॥
धियं कुमायां समयाभिचारिणीं विदग्धतामेव हि मन्यते खलः ॥१५॥

सज्जनों के द्वारा गर्हित, चुगलखोरी के काम से भी दुर्जन मनुष्य लज्जित नहीं होते । खल मनुष्य छल कपट करनेवाली बुद्धि को विद्वत्ता ही समझते हैं ।

साश्चर्यं युधि शौर्यमप्रतिहतं तत्खण्डिताखण्डलं,
याञ्चोत्तानकरः कृतः स भगवान्दानेन लक्ष्मीपतिः ॥
ऐश्वर्यं स्वकरात्तसप्तभुवनं लब्धाब्धिपारं यशः
सर्वं दुर्जनसंगमेन सहसा स्पष्टं विनष्टं बलेः ॥ १६ ॥

युद्ध में जिसका अप्रतिहत शौर्य था, जिससे इन्द्र भी परास्त होगये थे, जिसने दान के लिए, विष्णु से भी याञ्चा करने के लिए हाथ फैलवाया, अपने हाथों से जिसने सातों भुवनों का ऐश्वर्य पाया था, जिसका यश समुद्र पार तक गया हुआ था, उस बलि का भी शीघ्र ही दुर्जनों के साथ से नाश हो गया।

शमयति यशः क्लेशं सूते दिशत्यशिवां गतिं
जनयति जनोद्वेगायासं नयत्युपहास्यताम्
भ्रमयति मतिं मानं हन्ति क्षिणोति च जीवितं
क्षिपति सकलं कल्याणानां कुलं खलसंगमः ॥ १७ ॥

दुर्जनों का साथ यश नाश करता है, क्लेश उत्पन्न करता है, बुरी दशा बनाता है, मनुष्यों का उद्वेग और परेशानी बढ़ाता है, हँसी कराता है, बुद्धि को घुमाता है, मान नष्ट करता है, प्राणों को भी हर लेता है। इस प्रकार वह समस्त कल्याणों के समूह का नाश करता है।

न शान्तान्तस्तृष्णा धनलवणवारिव्यतिकरैः
क्षतच्छायः कायश्चिरविरसरुक्षाशनतया ॥
अनिद्रामन्दाग्निर्नृपसलिलचौरानलभया—
त्कदर्याणंकष्टं स्फुटमधमकष्टादपि परम् ॥ १८ ॥

धनरूपी खारे जल से मन की तृष्णा शान्त नहीं हुई, बहुत दिनों तक नीरस और सूखे भोजन से शरीर की कान्ति भी जाती रही, राजा जल चोर और जल के भय से अनिद्रा का रोग और मन्दाग्नि का रोग होगया है, इस प्रकार कृपणों को जो कष्ट होता है, वह दरिद्रों के कष्ट से भी बढ़ कर है।

तद्वक्त्राब्जजितः प्रसह्य भजते क्षैण्यं क्षपावल्लभ,—
स्तद्भ्रूविभ्रमतर्जितं च विनतिं धत्ते धनुर्मान्मथम् ॥
तस्याःपेलवपल्लवद्युतिमुषा शोणाधरेणार्दितं
नूनं प्राप्य विरक्ततां वनमहो विम्बं समालम्ब्यते ॥ १९ ॥

उसके मुख से हार कर चन्द्रमा लाचारी से क्षीण हो रहा है, उसके भौंहों के विलास से तिरस्कृत होकर कामदेव का धनुष नम्र हो गया है, उसके कोमल पल्लवों के समान सुन्दर लाल ओठों से पीड़ित होकर विम्वफल विरक्त होगया और उसने वन में आश्रय लिया, यह बिलकुल सत्य वात है।

जानेऽन्यासहितं विलोक्य कुटिलं तंकूटवेषं त्वया
प्रत्यक्षागसि निह्नवासहनया कोपेन दष्टोऽधरः ॥
श्वासायासविसंस्थुला न च कुचोत्कम्पं विमुञ्चत्यहो,
मोहाद्दुःसहविप्लवे चपलते किं प्रेषिता त्वं मया ॥ २० ॥

मालूम होता है कि तुमने कपट वेश धारण करने वाले उस (कुटिल हमारे प्रिय) को किसी दूसरी स्त्री के साथ देखा, इस प्रत्यक्ष अपराध को तुम छिपा न सकी और क्रोध से तुमने अपने होंठ काट डाले, श्वास की अधिकता से तुम व्याकुल होगयी हो और इस समय भी तुम्हारे स्तन कांप रहे हैं, हे चञ्चले मैंने मूर्खता वश तुमको भेजा। यह नयिका की उक्ति अपराधिनी दूति के प्रति है।

नखदशननिपातजर्जराङ्गी रतिकलहे परिपीड़िता प्रहारैः ॥
यदिह मरणमेव किं न यायाद्यदि न पिवेदधरामृतं प्रियस्य ॥ २१ ॥

नख और दांतों के लगने से अङ्ग जर्जर हो जाते हैं, रति कलह में प्रहारों से पीड़ित हो जाना पड़ता है, ऐसी दशा में मृत्यु ही हो जाती, यदि प्रिय का अधरामृत पान न किया जाता।

जाने कोपतरङ्गिताङ्गलतिका तेनाहमालिङ्गिता
संस्पृष्टा कुचयोर्निरर्गलतया हारोपि पार्श्वे कृतः ।
एतावत्तु सखि स्मरामि यदतो वृत्तं परं तत्परं
धैर्यस्योद्दलनं शरीरशमनं ध्यात्वापि नो वेद्मि किम् ॥ २२ ॥

मैं यह जानती हूं कि कोप से काँपते हुए मेरे अङ्गों का उन्होंने आलिङ्गन किया था, मेरे स्तनों को छुआ था और गले के हार को भी एक बगल कर दिया था, हे सखि, इतना तो मुझे स्मरण है, इसके बाद जो हुआ उससे धीरता छूट जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है और ध्यान करने पर भी उसे मैं समझ नहीं सकती ।

मूर्छाच्छादितमीक्षते न नयनं तापे तनुः पच्यते,
कम्पः सूचयतीव जीवगमनं मोहे मनो मज्जति
प्राग्जन्मार्जित कर्मणा वलवता कालेन कामेन वा
को जानाति स केन मे धृतिहरः कण्ठे भुजंगोऽर्पितः ॥ २३ ॥

मूर्छा से आँखें वन्द हैं वे देख नहीं सकतीं, शरीर अग्नि में पक रहा है, शरीर के कांपने से मालूम होता है कि अब प्राण ही चला जायगा, कुछ सुझायी नहीं पड़ता । पहले जन्मों के वलवान् कर्मों से, काल से या काम से मालूम नहीं किससे, वह मेरी धीरता को हरण करने वाला सांप मेरे गले में पड़ा । अर्थात् प्रिय का हाथ गले में पड़ा ।

व्योम्नः श्यामा विरहिणस्तारकाश्रुकणावली ।
बालमित्रकरोन्मृष्टा जगामादर्शनं शनैः ॥ २४ ॥

श्याम (रात्रि या स्त्री) के विरही आकाश के अश्रुरूप में ये तारा फैली हैं । वालमित्र (वालसूर्य या वाल्यकाल का मित्र) के कर (हाथ या किरण) से पीछे जाने पर वह लुप्त हो जाता है ।

यत्नात्संगममिच्छतोः प्रतिदिनं दूतीकृताश्वासयो--
रन्योन्यं परिशुष्यतोर्नवरतिप्राप्तिस्पृहां तन्वतोः ॥
संकेतोन्मुखयोः कथं कथमपि प्राप्ते चिरात्संगमे,
यत्सौख्यं नवरक्तयोस्तरुणयोस्तत्केन साम्यं व्रजेत् ॥ २५ ॥

यत्न पूर्वक संगम चाहने वाले को, प्रति दिन दूति से ढाढ़स बँधाए हुओं को, सूखते हुओं को, नवीन सुरत प्राप्ति की आशा रखते हुओं को, और संकेत स्थान की ओर उन्मुखों को, यदि वहुत दिनों पर भी संगम प्राप्त होजाय, तो उन तरुण नवीन अनुरागी स्त्री पुरुषों को जो सुख होता है उसकी तुलना किससे की जाय।

वित्तेन वेत्ति वेश्या स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम्
वित्तं विनापि वेत्ति स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ॥ २६ ॥

वेश्या धन के कारण कोढ़ी और बूढ़े को भी कामदेव के समान समझती है और धन के विना कामदेव के समान मनुष्य को भी वह कोढ़ी और बूढ़ा समझती है।

निन्द्यं जन्म प्रमोहस्थिरतरतमसां यन्मनुष्यत्वहीनं
बुध्दया हीनो मनुष्यः शुभफलविकलस्तुल्यचेष्टः पशूनाम् ॥
बुद्धिः पाण्डित्यहीना भ्रमति सदसतोस्तत्वचर्चाविचारे
पाण्डित्यं धर्महीनं शुकसदृशगिरा निष्फलक्लेशमेव ॥ २७ ॥

जिनका मोह के कारण अज्ञान दृढ़ होगया है उनका मनुष्यत्वहीन जन्म निन्दित है, निर्बुद्धि मनुष्य को कोई शुभ फल नहीं मिलते और वह पशु के समान है, विद्याहीन बुद्धि भी सत् और असत् के विचार में घूमा करती है वह कुछ निश्चय नहीं कर सकती। धर्महीन पाण्डित्य भी शुक की वाणी के समान केवल निष्फल क्लेश ही है।

धर्मः शर्म परत्र चेह च नृणां धर्मोऽन्धकारे रविः
सर्वापत्तिशमक्षमः सुमनसां धर्माभिधानो निधिः ।
धर्मो बन्धुरबान्धव पृथुपथे धर्मः सुहृन्निश्चलः
संसारोऽरुमरुस्थले सुरतरुर्नास्त्येव धर्मात्परः ॥ २८ ॥

इस लोक में और परलोक में धर्म कल्याणकारी अज्ञान अन्धकार के लिए धर्म सूर्य है, बन्धुहीन लम्बे मार्ग में धर्म ही बन्धु है, धर्म दृढ़ मित्र है, सँसार रूपी बड़ी भारी मरुभूमि में धर्म से बढ़ कर कल्पवृक्ष दूसरा नहीं है ।

प्राणानां परिरक्षणाय सततं सर्वाः क्रियाः प्राणिनां,
प्राणेभ्योप्यधिकं समस्तजगतां नास्त्येव किञ्चित्प्रियम् ।
पुण्यंत्तस्यन शक्यते गययितुं यः पूर्णकारुण्यवा
न्प्राणानामभयं ददाति सुकृतिस्तेषामहिंसा व्रतम् ॥ २९ ॥

प्राणियों के सभी प्रयत्न अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए ही सदा होते हैं । समस्त संसार को प्राणों से बढ़कर प्रिय कोई दूसरी वस्तु नहीं है, उसके पुण्यों की गणना नहीं हो सकती, जो पूर्ण दयालु प्राणों को आप देते हैं, वे पुण्यात्मा हैं और उनका अहिंसाव्रत है ।

शीलं शीलयतां कुलं कलयतां सद्भावमभ्यस्यतां,
व्याजं वर्जयतां गुणं गणयतां धर्मे धियंवध्नताम् ॥
क्षान्तिं चिन्तयतां तमः शमयतां तत्वश्रुतिं शृण्वताम्
संसारे न परोपकारसदृशं पश्यामि पुण्यं सताम् ॥ ३० ॥

शील रखने वाले, कुल के अनुसार चलने वाले, सद्भाव का अभ्यास करने वाले, छल कपट का त्याग करने वाले, गुणों की गणना करने वाले, धर्म में बुद्धि रखने वाले, क्षमा की चिन्ता करने वाले, अज्ञान को दूर करने वाले, और तत्व ज्ञान

सुनने वाले सज्जनों के लिए इस संसार में परोपकार से बढ़-कर दूसरा पुण्य नहीं है।

किं जीवावधिवन्धनैर्गुणगणैराराधितैर्बन्धुभि—
येयान्त्यन्तदिने क्षणाश्रु पतनप्रत्यायनापात्रताम्।
सद्धर्म्माधिगमः क्रियाऽप्युपरमः सत्संगमः संयमः
पर्यन्तेष्वचला विरक्तमनसामेते सतां बान्धवाः ॥ ३१ ॥

मरण पर्यन्त वन्धनरूप इन गुणों से क्या लाभ, बन्धुओं को आराधना से भी क्या फल, जो अन्त समय में केवल आँसू बहाकर विश्वास उपजा देते हैं। सद्धर्म की प्राप्ति, कार्यों से निवृत्ति, सज्जनों का सङ्गम और संयम, ये विरक्त मनुष्यों के अन्त तक भी अचल रहते हैं, ये ही सज्जनों के बन्धु हैं।

विदशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः
परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्रवै धनम् ॥ ३२ ॥

विदेश में धन विद्या है, आपत्ति में धन बुद्धि है, परलोक में धन धर्म है, और शील सब स्थानों में भूषण है।

दाता बलिर्याचनको मुरारिर्दानं मही वाजिमखस्य मध्ये।
दातुः फलं वन्धनमेव जातं नमोस्तु दैवाय यथेष्टकर्त्रे ॥ ३३ ॥

अश्वमेध यज्ञ में दान देनेवाला बलि है दान लेने—वाले स्वयं विष्णु हैं, और दान दी जानेवाली वस्तु पृथिवी है। पर दाता को फल बन्धन मिला, अर्थात् इस दान का फल स्वरूप बलि को बन्धन मिला। उस भाग्य को नमस्कार, जो जैसा चाहता है वैसा करता है।

भवति भिषगुपायैः पथ्यभुङ्नित्यरोगी
धनहरणविनिद्रच्छिद्रगोप्ता दरिद्रः।

६

अनयचयविधायी निश्चलैश्वर्यधैर्यः
स्ववशनिशितशक्तेः शासनेनैव धातुः ॥ ३४ ॥

वैद्य के बतलाये उपायों के अनुसार पथ्यपूर्वक रहने वाला सदा रोगी ही रहा करता है, जो सदा इधर उधर से धन कमाने में लगा रहता है और खर्च होने के मार्गों को रोक देता है, वह दरिद्र होता है, अनेक प्रकार की अनीति करने वाले सदा धनी और धीर बने रहते हैं। यह सब उसी ब्रह्मदेव की इच्छा से होता है।

अम्भोधिःस्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां
मेरुर्मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणप्रायताम् ॥
वन्हिः शीतलतां हिमं दहनतामायाति यस्येच्छया
स्वेच्छादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने दैवाय तस्मै नमः ॥ ३५ ॥

जिसकी इच्छा से समुद्र स्थल हो जाते हैं, स्थल समुद्र हो जाते हैं, धूलि के कण पर्वत हो जाते हैं, और मेरु पर्वत धूलि के कण के समान हो जाता है, तृण वज्र के समान और वज्र तृण के समान हो जाता है, आग शीतल हो जाती है और वर्फ आग बन जाता है उस दैव को नमस्कार जो अपनी इच्छा से सोख होकर अनेक प्रकार की लीला रचा करता है।

परिभ्रमसि किं मुधा क्वचन चित्त विश्रम्यतां
स्वयं भवति यद्यथा भवति तत्तथा नान्यथा ॥
अतीतमननुस्मरन्नपि च भाव्यसंकल्पय—
न्नतर्कितगमागमाननुभवामि भोगानहम् ॥ ३६ ॥

चित्त, व्यर्थ क्यों घूम रहे हो, कहीं विश्राम करो, स्वयं जो कुछ होता है वह वैसाही होता है उसमें कुछ परिवर्तन

नहीं होता, अतीत को भूल जाता हूँ, भावी की कल्पना भी नहीं कर पाता हूं, आकस्मिक आने जाने वाले भोगों का मैं अनुभव करता हूँ।

पुत्राप्यधिकं च विन्दति विभुर्भृत्यं हि भाग्योदये
पश्चात्सोपि तमेव निन्दति यथा शत्रुं विरुद्धे विधौ।
किं कष्टेन दिवानिशं विहितया भक्त्या भृशं सेवया
दैवाधिष्ठितमेव तिष्ठति फलं जन्तोःशुभं वाशुभम्॥ ३७॥

भाग्योदय होने पर स्वामी को पुत्र से भी अच्छा भृत्य मिलता है और भाग्य के विरुद्ध होने पर उसी स्वामी को वही भृत्य शत्रु के समान देखता है, भक्ति पूर्वक दिन रात सेवा करने से क्या लाभ, जब कि मनुष्य को अच्छा या बुरा फल भाग्य के अनुसार ही होता है!

जीवन्त्यर्थक्षये नीचा याञ्चोपद्रववञ्चनैः।
कुलाभिमानमूकानां साधूनां नास्ति जीवनम्॥ ३८॥

धन के नाश होने पर नीच मनुष्य भिक्षा डाँका और ठगी के द्वारा जीते हैं, पर कुलाभिमान के कारण चुप रहने वाले साधुओं का जीना कठिन है।

मद्गेहे मशकीव मूषकवधूर्मूषीव मार्जारिका
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहणी वाच्यः किमन्यो जनः॥
इत्यापन्नशिशूनसून्विजहतः संप्रेक्ष्य झिल्लीरवै-
र्लूतातन्तुवितानसंवृतमुखी चुल्ली चिरं रोदिति॥ ३९॥

मेरे घर में चूही मशकी के समान हो गयी है, बिल्ली चूही के समान होगयी है, कुत्ती बिल्ली के समान और गृहणी कुत्ती के समान हो गयी है, और के लिए क्या कहा जाय, दुःखी

लड़कों को प्राण छोड़ते देख कर चूल्हे ने मकरे के जाला से अपना मुंह छिपा लिया और वह झिल्ली शब्द के द्वारा रो रहा है ।

आसे चेत्स्वगृहे कुटुम्बभरणं कर्तुं न शक्तोऽस्म्यहं
सेवे चेत्सुखसाधनं मुनिवनं मुष्णन्ति मां तस्कराः
श्वभ्रे चेत्स्वतनुं त्यजामि नरकाद्भीरात्महत्यावशा—
त्को जाने करवाणि दैव किमदं मर्तुं न वा जीवितुम् ॥ ४० ॥

यदि अपने घर आऊं तो क्यों, क्योंकि मैं अपने कुटुम्ब का पालन करने में असमर्थ हूं, यदि मुनियों के आश्रम में जाऊँ तो वहां चोर पड़ते हैं, यदि खड्डे में गिर कर मर जाऊं तो आत्महत्या के कारण नरक का भय है, हे भाग्य, मुझे मालूम नहीं मैं क्या करूं, जीऊं या मरूं ।

मा भूज्जन्म महाकुले तदपि चेन्मा भूद्विपत्सापि चे—
न्माभूद्भूरिकलत्रमस्ति यदि तन्मा भूद्दयार्द्रं मनः
तच्चेदस्ति तदस्तु मृत्युरथ चेत्तस्यापि नास्ति क्षण—
स्तज्जन्मान्तरनिर्विशेषसदसद्देशान्तरेस्तु स्थितिः ॥ ४१ ॥

बड़े कुल में जन्म ही न हो, यदि हो भी तो विपत्ति न हो, यदि वह भी हो, तो बड़ा कुटुम्ब न हो, यदि वह भी हो तो दयालु मन न हो, यदि वह भी हो तो मृत्यु हो जाना अच्छा, यदि वह न हो तो मृत्यु के समान सदा देशान्तर में रहना हो ।

अप्रस्तावस्तुतिभिरनिशं कर्णशूलं करोति
स्वं दारिद्र्यं वदति वसनं दर्शयत्येव जीर्णम् ।
छायाभूतश्चलति न पुरः पार्श्वयोनैं वपश्चा—
न्निःस्वः खेदं दिशति धनिनां व्याधिवद् दुश्चिकित्स्यः ॥ ४२ ॥

अप्रासङ्गिक स्तुति के द्वारा कानों में शूल उत्पन्न करता है, अपनी दरिद्रता कहता है, फटा वस्त्र दिखाता है, छाया के समान चलता है, न आगे चलता है न पीछे और न बगल में, इस प्रकार दरिद्र मनुष्य धनियों को दुश्चिकित्स्य व्याधि के समान दुःख देता है ।

सत्ये शंकाचकितमनसो वंचकग्रामलीनाः
शैलस्थूलोपकृतविफलाः स्वल्पदोषेऽतिकोपाः ।
मन्नोद्विशाः पिशुनवचसा धर्मनर्मोक्तिदुष्टाः
साधुद्विष्टाः प्रखलपुरुषाः सर्वथा भूमिपालाः ॥ ४३ ॥

राजा लोग ठगों के समूह में रहते हैं इस कारण सत्य को शङ्का की दृष्टि से देखते हैं, पत्थर के साथ किया उपकार जिस प्रकार विफल होता है उसी प्रकार राजा के प्रति किया उपकार भी विफल होता है, छोटे अपराध से भी वे बहुत क्रोध करते हैं, चुगली करनेवालों के वचन से सन्तुष्ट रहते हैं; धर्म की दिल्लगी करनेवाले, साधुओं के द्वेषी और खलों के साथी राजा लोग होते हैं ।

द्वारे रुद्धमुपेक्षते कथमपि प्राप्तं पुरो नेक्षते
विज्ञप्तौ गजमीलनानि कुरुते गृह्णाति वाक्यच्छलम् ।
निर्यातस्य करोति दोषगणनां स्वल्पापराधे यमः
सस्वामी यदि सेव्यते मरुतटे किं नः पिशाचैः कृतम् ॥ ४४ ॥

द्वार पर रुके हुए की उपेक्षा करते हैं, यदि किसी प्रकार सामने चला जाय तो उसकी ओर देखते नहीं, उसके निवेदनों पर आँखे बन्द करते हैं और इधर उधर की बातें करते हैं, चले जाने पर उसके दोषों की गणना करते हैं, थोड़े अपराध पर भी यमराज बन जाते हैं, वह स्वामी यदि सेवनीय है तो मरुस्थल के पिशाचों ने हमारा क्या बिगाड़ा है ।

गोवर्धनाचार्य

ये गीतगोविन्द कर्ता जयदेव कवि से प्राचीन हैं। जयदेव ने गीतगोविन्द में इनके विषय में लिखा है "श्रृङ्गारोत्तरसत्प्रमेय रचनैराचार्यगोवर्धनस्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः" जयदेव कहते हैं कि श्रृङ्गार रचना में आचार्य गोवर्धन की समानता करनेवाला कोई प्रसिद्ध न हुआ। इससे गोवर्धनाचार्य की जयदेव से प्राचीनता सिद्ध होती है। बङ्गाल के राजा लक्ष्मण-सेन की सभा में गोवर्धनाचार्य भी थे, यह बात नीचे लिखे श्लोक से विदित होती है।

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च।

लक्ष्मणसेन ई० सन् की ग्यारहीं सदी में हुए थे यह इति-हासज्ञों का कहना है।

आर्या सप्तसती नाम का एक ग्रन्थ इनका बनाया है। इसमें सात सौ आर्याछन्द के वृत्तों का संग्रह है। यह स्फुट श्लोकों का संग्रह है, इसमें किसी एक विषय को लेकर वर्णन नहीं किया गया है। वर्णन मनोहारी है, सरस है और काव्य के उत्तम गुणों से युक्त है। श्रृङ्गार के वर्णन में ये सिद्धहस्त हैं, इनका वर्णन मनोरम और आस्वाद्य होता है।

मा वम संवृणु विषमिदमिति सातङ्कं पितामहेनोक्तः
प्रातर्जयति सलज्जः कज्जलमलिना धरःशंभुः ॥ १ ॥

प्रातःकाल (पार्वती के) अक्षिचुम्बन करने के कारण शिवजी के ओष्ठ पर कज्जल लगा था, ब्रह्मा ने समझा कि ये काला काला विष उगल रहे हैं, इसलिए डर कर उन्होंने कहा मत उगलो, निगल जाओ, यह सुनकर शिव लज्जित हो गये।

संध्यासलिलाञ्जलिमपि कङ्कणफणिपीयमानमविजानन् ।
गौरीमुखार्पितमना विजयाहसितः शिवो जयति ॥ २ ॥

शिव ने सन्ध्या के लिए अञ्जलि में जल लिया था, और पार्वती के मुख की ओर उनका चित्त था, वे उधाती देख रहे थे, कङ्कण का सर्प वह जल पीने लगा, पर शिव को यह मालूम नहीं हुआ, यह देख विजया पार्वती की सखी हंसने लगी ।

ब्रह्माण्डकुम्भकारं भुजगाकारं जनार्दनं नौमि ।
स्फारे यत्फणचक्रे धरा शरावश्रियं वहति ॥ ३ ॥

ब्रह्माण्ड के कुम्भकार सर्पस्वरूप जनार्दन को नमस्कार, जिनके विशाल फण पर रखी हुई पृथिवी, शराव (मिट्टी परई) के समान मालूम पड़ती है ।

विहितघनालंकारं विचित्रवर्णावलीस्फुरणम् ।
शक्रायुधमिव वक्रं वल्मीकभुवं कविं नौमि ॥ ४ ॥

जिन्होंने अनेक अलंकार बनाये हैं और अनेक प्रकार के वर्ण जिसमें हैं और जो इन्द्रधनुष के समान टेढ़े हैं, उन वाल्मीकि कवि को नमस्कार, इन्द्रधनुष भी बाल्मीक से ही निकलता है, उसके भी अनेक प्रकार के रंग होते हैं, और वह मेघों का अलङ्कार बनता है ।

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे ।
भूषणतयैव संज्ञां यदङ्कितां भारती वहति ॥ ५ ॥

व्यासदेव की वाणी के सार और विश्व के सार भारत नामक ग्रन्थ को नमस्कार, जिससे भूषित होने के कारण सरस्वती को भारती कहते हैं ।

अतिदीर्घजीवि दोषाद्व्यासेन यशोऽपहारितं हन्त
कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः ॥ ६ ॥

दुःख की बात है कि चिरजीवी होने के कारण व्यासदेव ने अपना यश खो दिया, यदि वे चिरजीवी न होते तो कौन नहीं कहता कि व्यासदेव ही दूसरे जन्म में गुणाढ्य हुए हैं।

श्रीरामायणभारतबृहत्कथानां कवीन्नमस्कुर्मः
त्रिस्रोता इव सरसा सरस्वती स्फुरति यैर्भिन्ना: ॥ ७ ॥

रामायण महाभारत और बृहत्कथा के कवियों को नमस्कार, जिनके कारण भिन्न भिन्न स्वरूप धारण करनेवाली रसवती सरस्वती गङ्गा के समान हो गयी है।

अकलितशब्दालंकृतिरनुकूला स्खलितपदनिवेशापि ।
अभिसारिकेव रमयति सूक्तिः सोत्कर्षशृङ्गारा ॥ ८ ॥

जिसमें शब्द नहीं, अलङ्कार नहीं, पदों का निवेश भी ठीक नहीं, वह उक्ति भी यदि सरस हो, यदि उसमें उत्कट शृङ्गार हो, तो वह अभिसारिका के समान प्रसन्न करती है; क्योंकि शब्दों का न माननाही अभिसारिका के लिए अलंकार है, उसके पैर नीचे ऊँचे पड़ते हैं, तथापि वह अनुकूल और रतिपोषिका है इस कारण मन को प्रसन्न करती है।

अयि विविधवचनरचने ददासि चन्द्रं करे समानीय ।
व्यसनदिवसेषु दूति क्व पुनस्त्वं दर्शनीयासि ॥ ९ ॥

दूति, तुम अनेक प्रकार की बातें बनाना जानती हो और चन्द्र को लाकर हाथ में दे रही हो, पर दुःख के दिनों में क्या तुम्हारे दर्शन मिलेंगे, जब अपकीर्ति फैलेगी, या वियोग होगा, तब तो तुम कोई उपाय न कर सकोगी।

अन्धत्वमन्धसमये वधिरत्वं वधिरकाल आलम्ब्य ।
श्री केशयोः प्रणयी प्रजापतिर्नाभिवास्तव्य ॥१०॥

ब्रह्मा, विष्णु के नाभिकमल में रहते हैं और वहीं लक्ष्मी और विष्णु भी रहते हैं । उनमें तरह तरह की बातें होती ही होंगी पर ब्रह्मा पर विष्णु का द्वेष नहीं है किन्तु प्रेम ही है, इसका कारण यह है कि जब अन्धा बनने का समय आता है, तब वे अन्धे हो जाते हैं और जब वधिर बनने का समय आता है तब वधिर बन जाते हैं, अर्थात् वे न तो कुछ देखते हैं और न सुनते हैं ।

अपराधादधिकं मां व्यथयति तव कपटवचनरचनेयम् ।
शस्त्राघाते न तथा सूचोव्यधवेदना यादृक् ॥११॥

दूति, तुमने जो अपराध किया है, उससे जितना कष्ट होता है उससे कहीं अधिक कष्ट तुम्हारी इन बनावटी बातों से होता है। शस्त्र प्रहार से जितना कष्ट होता है, उससे कहीं अधिक कष्ट सूई की नोक से छेदने से होता है ।

ते श्रेष्ठिनः क्व संप्रति शक्रध्वज यैः कृतस्तवोच्छ्रायम्
ईषां वा मेढ़िं वाधुनातनास्त्वां विधित्संति ॥१२॥

हे इन्द्रध्वज, वे सेठ आज कहां है जिन्होंने तुमको खड़ा किया था, इस समय के लोग तो तुमको हल बनावेंगे या खूटा बनावेंगे ।

दलिते पलालपुञ्जे वृषभं परिभवति गृहपतौ कुपिते ।
निभृतनिभालितवदनौ हलिक बधू देवरौ हसतः ॥१३॥

पुआल इधर उधर विखरा हुआ था, गृहस्वामी ने समझा कि इसी बैल ने पुआल विखेरा है, इसलिए वह उसे मार

लगा, यह देखकर गृहस्वामी की स्त्री और उसके देवर दोनों ने छिप कर आपस में देखा और वे हंसने लगे ।

निष्कारणापराधं निष्कारणकलहरोषपरितोपम् ।
सामान्यमरणजीवनसुखदुःखं जयति दांपत्यम् ॥ १४ ॥

जहां विना कारण का ही अपराध, विना कारण का ही कलह क्रोध, और प्रसन्नता साधारणतः मरना जीना सुख दुःख आदि स्त्री पुरुषों में होते रहते हैं वह दम्पत्य सुखमय है ।

पूजा विना प्रतिष्ठां नास्ति न मन्त्रं विना प्रतिष्ठा च ।
तदुभयविप्रतिपन्नः पश्यतु गीर्वापाषाणम् ॥ १५ ॥

बिना प्रतिष्ठा के पूजा नहीं और मंत्र के विना प्रतिष्ठा नहीं, जो इन दोनों बातों को न मानता हो वह पत्थर की मूर्ति को देखे ।

भूतिमयं कुरूतेऽग्निस्तृणमपि संलग्नमनेऽपि भजतः ।
सैव सुवर्ण दशा ते शङ्के गरिमोपरोधेन ॥ १६ ॥

संयोग होते ही अग्नि तृण को भस्म कर देता है, सुवर्ण, यद्यपि तुम इसकी सेवा कर रहे हो, तथापि तुम्हारी भी ऐसी ही दशा होने की सम्भावना है, अभी तक गुरुता के कारण ही तुम्हारी रक्षा हुई है ।

भोगाक्षमस्य रक्षां दृङ्मात्रेणैव कुर्वतोऽनभिमुखस्य ।
वृद्धस्य प्रमादाथि श्रीरपि भृत्यस्य भोगाय ॥ १७ ॥

जो स्वयं भोग करने में असमर्थ है जो केवल नेत्रों से ही रक्षा करता है और असमर्थ होने के कारण उसकी ओर देख नहीं सकता, उस वृद्ध की स्त्री और धन भी भृत्य के भोग के लिए होता है ।

मलयद्रुमसाराणामिव धीराणां गुणप्रकर्षेऽपि।
जडसमयनिपतितानामनादरायैव न गुणाय॥ १८॥

चन्दन के समान धीरों के गुण भी उस समय में (मूर्खों के बीच या जाड़े के समय में) आकर, अनादर ही पाते हैं आदर नहीं।

यन्मूलमार्द्रमुदकैः कुसुमं प्रतिपर्व फलभरः परितः।
द्रुम तन्माद्यसि वीचीपरिचयपरिणाममविचिन्त्यः॥ १९॥

वृक्ष तुम्हारी जड़ जल से गीली है, प्रत्येक पर्व में पुष्प हैं, चारों ओर फल से लदे हुए हो इससे उन्मत्त मत बनो, तरङ्गों के परिचय का परिणाम सोचो।

रोगी राजायत्त इति जनवादे सत्यमद्य कलयामि।
आरोग्यपूर्वकं त्वयि तल्पप्रान्तागते सुभगम्॥ २०॥

हे सुभग, तुम्हारे पलंग के समीप "रोगी राजा के समान रहता है" इस जन-प्रवाद को आरोग्य रहने पर भी मैं सत्य समझती हूँ।

वीक्ष्य सतीनां गणने रेखामेकां तया स्वनामाङ्काम्।
सन्तु युवानो हसितुं स्वयमेवापारि नावरितुम्॥ २१॥

उसने सतियों की गणना में अपने नाम की भी एक रेखा देखी, इससे युवक चाहे हंसे चाहे न हंसे पर स्वयं वही अपनी हंसी न रोक सकी।

सुगृहीतमलिनपक्षा लघवः परभेदिनः परं तीक्ष्णाः।
पुरुषा अपि विशिखा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय॥ २२॥

दूसरों (अन्य पुरुष या शत्रु) को भेदन करनेवाले मलिन पक्षा अर्थात नीच और तीखे मनुष्य तथा वाण, गुण (धनुष की ज्या या गुण) से च्युत होने पर किसके लिए भयकारक नहीं हैं।

चन्द्रक।

ये कश्मीर के रहनेवाले थे, इनके नाम के विषय में मत-भेद है, कोई इन्हें चन्दक कहते हैं और कोई चन्द्रक। महाकवि कल्हण ने इनके विषय में लिखा है:—

> नाट्यं सर्वजनप्रेक्ष्यं यश्चक्रे स महाकविः।
> द्वैपायनमुनेरंशस्तत्काले चन्द्रकोऽभवत्।

जिस महाकवि ने सब लोगों के देखने योग्य नाटक की रचना की, उस समय वे द्वैपायन मुनि के अंशभूत चन्द्रक हुए। इस श्लोक से इस बात का पता मिलता है, महाकवि चन्द्रक ने कोई नाटक वनाया था, जिसमें सब प्रकार के मनुष्यों के उपयोग योग्य सामग्री थी और इनकी कविता व्यास-देव के समकक्ष होती थी। इनके समय के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पर लक्षण से मालूम पड़ता है कि ये वहुत प्राचीन कवि थे। सुभाषित ग्रन्थों में इनमें श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

> खगोत्क्षिप्तै रन्त्रैस्तरुशिरसि दोलेव रचितः।
> शिवा तृप्ताहारा स्वपिति रतिखिन्नेव वनिता,
> तृषार्तो गोमायुः सरुधिरमसिं लेढि वहुशो
> बिलान्वेषी सर्पो हतगजकराग्रे प्रविशति।

पक्षि अतड़ियों को वृक्ष पर ले गये हैं, उनसे वृक्षों पर दोला के समान बन गया है, श्रृगाली तृप्त होकर रतिखिन्न स्त्रियों के समान सो रही है, श्रृगाल प्यासा है इस कारण वह रुधिर से सनी तलवार को बारवार चाट रहा है। साँप बिल ढूँढ़ता हुआ हाथी के सूँड़ में घुस जाता है। यह युद्ध समाप्त होने पर युद्धक्षेत्र का वर्णन है।

कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया,
सत्यं कृष्ण क एवमाह मुसली, मिथ्याम्ब पश्याननम्,
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने माता समस्तं जगत,
दृष्ट्वा यस्य जगाम विस्मयवशं पायात्स वः केशवः ।

आज खेलने के लिए जाने पर कृष्ण ने खूब मिट्टी खायी है, कृष्ण, क्या यह वात सच है । कृष्ण ने पूछा ऐसा किसने कहा, माता ने कहा बलदेव ने, कृष्ण ने कहा, झूठी बात है, तुम हमारा मुंह देख लो, माता ने कहा, मुंह खोलो, कृष्ण ने मुंह खोल दिया, माता जिसके मुंह में समस्त जगत् देखकर विस्मित हो गयी, वह कृष्ण आप लोगों की रक्षा करें ।

स पातु वो यस्य हता वशेषास्तत्तुल्य वार्णाञ्जनरञ्जितेषु ॥
लावण्ययुक्तेष्वपि वित्रसन्ति दैत्याः स्वकान्तानयनोत्पलेषु ॥१॥

वे देव आप लोगों की रक्षा करें जिनके वर्ण के समान अञ्जन से रञ्जित और सुन्दर अपनी स्त्रियों की आँखों से भी वे दैत्य जो रण में मारे जाने से वचे हैं डरते हैं ।

च्युतामिन्दोर्लेखां रतिकलहभग्नञ्च वलयं
शनैरेकीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया ।
अवोचद्यं पश्येत्यवतु स शिवः सा च गिरजा
स च क्रीड़ाचन्द्रो दशनकिरणापूरिततनुः ॥२॥

गिरी हुई चन्द्रमा की कला और रतिकलह में गिरा हुआ वलय इन दोनों को धीरे से एकत्रित करके हंसती हुई पार्वती ने जिसको कहा था कि यह देखो, वह शिव, वह पार्वती और दांतों की प्रभा से जगमगाता हुआ वह क्रीड़ाचन्द्र आप लोगों की रक्षा करे ।

मातर्जीव किमेतदञ्जलिपुटे तातेन गोपाय्यते
वत्स स्वादु फलं प्रयच्छति न मे गत्वा गृहाण स्वयम् ॥
मात्रैवं प्रहिते गुहे विघटयत्या कृष्य संध्याञ्जलिं
शम्भोर्भिन्नसमाधिरुद्धर भसो हासोद्गम पातुवः ॥३॥

कार्तिकेय और पार्वती का संवाद, कार्तिकेय ने पूछा, माता, पार्वती ने कहा बेटा, का०— पिता ने यह हाथों में क्या छिपा रखा है, पा०— बेटा मीठा फल है, का०—मुझको तो नहीं देते, पा०—जाकर स्वयं लेलो, माता, के भेजने पर कार्तिकेय महादेव की सन्ध्याञ्जलि खोलने लगा जिससे उनकी समाधि टूट गयी और वे हंसने लगे। महादेव की वह हंसी आपकी रक्षा करे।

प्रसादे वर्त्तस्व प्रकटय मुदं संत्यज रुषं
प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः
निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥४॥

प्रसन्न होओ, हर्ष प्रकाशित करो, क्रोध दूर करो, प्रिये मेरे अङ्ग सूख रहे हैं, अमृत के समान अपने वचनो का सिंचन करो, सुखों का निधान अपना मुख थोड़ी देर के लिए अभिमुख स्थापित करो। मुग्धे, यह गया हुआ कालरूपी हरना लौटता नहीं ।

एकेनाक्ष्णपरिणतरुषा पाटलेनास्तसंस्थं
पश्यत्यर्कं कुमुदविशदेनापरेण स्वकान्तम् ।
अह्नश्छेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी
द्वौ संकीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥५॥

दिन ढल रहा है इस कारण अपने पति के विरह की आशङ्का करनेवाली चक्रवाकी, क्रोध से लाल एक आंख से

अस्त जाते हुए सूर्य को देख रही है और कुमुद के समान श्वेत दूसरी आंख से अपने पति की ओर देख रही है, इस प्रकार वह नर्तकी के समान एक ही समय दो विरुद्ध रसों की रचना करती है।

एषाहि मे रणगतस्य दृढा प्रतिज्ञा
द्रक्ष्यन्ति यन्नरिपवो जघनं हयानाम् ।
युद्धेषुभाग्य चपलेषु न मे प्रतिज्ञा
दैवं यदृच्छतिज यश्च पराजयश्च ॥६॥

रण में जाने पर मेरी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मेरे शत्रु मेरे घोड़ों की पिछली टांग नहीं देखेंगे, युद्ध भाग्याधीन है, उसके विषय में मेरी कोई प्रतिज्ञा नहीं है, भाग्य जैसा चाहता है वैसा होता है, जय या पराजय।

जगद्धर ।

ये संस्कृत नाटकों के प्रसिद्ध टीकाकार हैं, न्यायवैशेषिक और व्याकरण का इनका ज्ञान आगाध था। वेणीसंहार वासवदत्ता मालतीमाधव, आदि कई नाटकों की टीका इन्होंने लिखी है, इनकी लिखी टीकाएं आदरणीय समझी जाता है। इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है,

ब्राह्मणश्रेष्ठ चण्डेश्वर एक प्रसिद्ध पंडित थे, मीमांसा में उनका अगाध ज्ञान था, इनके पुत्र का नाम रामेश्वर था और ये भी मीमांसक थे, रामेश्वर के पुत्र गदाधर हुए और उनके पुत्र विद्याधर हुए। विद्याधर के पुत्र का नाम रत्नधर था। जगद्धर के पिता येही रत्नधर थे, पण्डित रामकृष्ण भाण्डार कर कहते हैं कि जगद्धर का समय १४ वीं सदी से पहले नहीं हो सकता।

धन्याः शुचीनि सुरभीणि गुणोम्भितानि
वाग्वीरुधः स्ववदनोपवनोद्गतायाः ।
उच्चित्य सूक्तिकुसुमानि सतां विविक्त—
वर्णानि कर्णपुलिनेष्ववतंसयन्ति ॥

अपने मुखरूपी बाग में उत्पन्न होनेवाले वचनरूपी पौधों से चुनकर सुन्दर सुरभित गुण और उत्तमवर्ण युक्त सूक्तिरूपी फूलों से सज्जनों के कानों को भूषित करते हैं वे धन्य है।

तेऽनन्तवाङ्मयमहार्णवदृष्टपाराः
सांयाभिका इव महाकवयो जयन्ति ।
यत्सूक्तिपेलवलवङ्गलवैरवैमि
सन्तःसदःसु वदनोन्यधिवासयंन्ति ॥

वे अनन्त वाङ्मयरूपी महासमुद्र के पार जानेवाले महाकवि जहाज के व्यापारी के समान हैं और धन्य हैं, मैं समझता हूं कि उनकी सूक्तिरूपी उत्तम लवङ्ग के टुकड़े से सज्जनगण सभाओं में मुख को सुगन्धित करते हैं।

त्रैलोक्यभूषणमणिर्गुणिवर्गबन्धु–
रेकश्चकास्ति सविता कविता द्वितीया ।
शंसन्ति यस्य महिमातिशयं शिरोभिः
पादग्रहं विदधतः पृथिवीभृतोपि ॥

त्रिलोक के भूषणमणि, गुणियों के बन्धु एक सूर्य प्रकाशित होता है और दूसरी कविता। पृथिवीधर (राजा या पर्वत) भी जिसकी महिमा की अधिकता, उसके चरणों को मस्तक से ग्रहण करके बतलाते हैं। अर्थात् पृथिवीधर राजा भी कवियों की चरण बन्दना करते हैं और पृथिवीधर पर्वत सूर्य की किरणों को मस्तक पर धारण करते हैं।

शब्दार्थमार्गमपि ये न विदन्ति तेऽपि
यां मूर्छनामिव मृगाः श्रवणैः पिबन्तः ।
संरुद्धसर्वकरणप्रसरा भवन्ति
चित्रस्थिता इव कवीन्द्रगिरं नुमस्ताम् ॥

जिनको शब्दार्थ का ज्ञान नहीं है वे मृगा भी जिस कविता को केवल कानों से गान के समान सुनकर तन्मय हो जाते हैं, वाक्य और इन्द्रिय ज्ञान से शून्य चित्र लिखित के समान हो जाते हैं, उस कवीन्द्रवाणी को नमस्कार ।

अस्थाने गीसतालयं क्षतधियां वाग्देवता कल्पते
धिक्काराय पराभवाय महते तापाय पापाय वा ।
स्थाने तु व्ययिता सतां प्रभवति प्रख्यातये भूतये
चेतोनिर्वृतये परोपकृतये प्रान्ते शिवावाप्तये ॥

वाग्देवता का अनुचित स्थान में यदि संनिवेश किया जाय तो वह मूर्खों के धिक्कार तथा पराजय के कारण होता है । बड़ा भारी ताप होता है या पाप होता है, पर उसीका यदि उचित स्थान पर विनियोग किया जाय तो वह सज्जनों की प्रसिद्धि के लिए, समृद्धि के लिए, चित्त की प्रसन्नता के लिए, परोपकार के लिए और अन्त में कल्याणप्राप्ति के लिए होता है ।

स्फारेण सौरभभरेण किमेणनाभे-
स्तद्धानसारमपि सारमसारमेव ।
स्रक्सौमनस्यमपि न पुष्यति सौमनस्यं
प्रस्यन्दते यदि मधुद्रवसूक्ति देवी ॥

कस्तूरी के बड़ी गन्ध से क्या ? वह कपूर भी निरर्थक ही है, माला की सुगन्धि भी मन को प्रसन्न नहीं कर सकती, यदि वाणीदेवी मधु का स्रोत बहावे ।

स हेमालंकारः क्षितिपतनलग्नेन रजसा
तथा दैन्यं नीतो नरपतिशिरःश्लाघ्यविभवः।
यथा लोष्ठभ्रान्तिव्यवहितविवकव्यतिकरो
विलोक्यैनं लोकः परिहरति पादक्षतिभयात् ॥

राजाओं के मस्तक पर शोभा पाने वाला वह सुवर्ण का आभूषण पृथिवी पर गिर पड़ा और वह धूल लगने से इस समय इतना विरूप हो गया कि उसमें लोगों को लोहे की भ्रान्ति होने लगी। उस भ्रान्ति से उनका विवेक नष्ट हो गया और वे उस सुवर्णालंकार को देखकर पैर कटने के भय से दूर हो जाते हैं।

आहूतेषु विहंगमेषु मशको नायान्पुरो वार्यते
मध्ये वा धुरि वा वसँस्तृणमणिर्धत्ते मणिनां रुचम्।
खद्योतोपि न कम्पते प्रचलितुं मध्येपि तेजस्विनां
धिकसामान्यमचेतनं प्रभुमिवानामृष्टतत्त्वान्तरम् ॥

पक्षियों के निमन्त्रण में आगे आगे मशक (क्योंकि उसके भी पंख होते हैं) आता है और वह रोका नहीं जाता, आगे या मध्य में यदि तृणमणि आता है तो उसे भी मणियों की शोभा प्राप्त होती है, कोई उसे हटाता नहीं, तेजस्वियों के मध्य में खद्योत भी उनके सामने बेधड़क चला आता है उसे कुछ भय नहीं होता, उस अचेतन उत्कृष्ट अपकृष्ट का भेद न समझने वाले स्वामी को धिक्कार।

एवं चेत्सरसस्वभावपरता जाड्यं किमेतादृशं
यद्यस्त्येव निसर्गतः सरलता किं ग्रन्थिमत्तेदृशी।
मूलं चेच्छुचि पङ्कज श्रुतिरियं कस्माद्गुणा यद्यमी
किं छिद्राणि सखे मृणाल भवतस्तत्त्वं न मन्यामहे ॥

हे मृणाल, (कमल की डंठी) तुम्हारा स्वभाव इतना सरस है तो यह जड़ता, अज्ञान या सर्दी, कैसी, यदि तुम स्वभाव से ही सरल हो तो ये गाठें कैसी, यदि तुम्हारा मूल शुद्ध है तो तुम्हारे कीचड़ से उत्पन्न होने की बात क्यों कही जाती है, यदि तुममें गुण (सद्गुण) हैं तो ये छिद्र क्यों ? मृणाल तुम्हारा क्या तत्व है सो कुछ मालूम नहीं पड़ता।

त्वं भोगी यदि कुण्डली यदि भवांस्त्वं चेद्भुजंगः सखे
धत्से चेन्मुकुटं सरत्नमुरग स्वस्त्यस्तु ते किं ततः।
अस्थाने यदि कञ्चुकं त्यजसि तन्नास्माकमत्रस्पृहा
किंतु क्रूरविषोल्कया दहसि यद्भ्रातः क एष ग्रहः।

तुम यदि भोगी हो, कुण्डली हो या भुजंग हो, (ये सब सर्प के नाम हैं) तो रहो, हे उरंग, यदि तुम रत्नजड़ित मुकुट धारण करते हो तो वह भी तुम्हे मुबारक रहे, जहां तहां तुम कंचुक छोड़ते हो तो छोड़ो, इस विषय में भी हमें कुछ नहीं कहना है, पर तुम भयानक विष के द्वारा लोगों को जलाते हो यह तुम्हारा कौन सा हठ है।

पिधत्ते द्वाः पट्टैः सितकरमथोत्तंसकुसुमै-
र्निरस्तैर्दीपार्चिः शमयति च लज्जापरवशा।
प्रियेण प्रत्यङ्गं प्रणिहितदृशा वाससि हृते
कथंकारं तारं परिहरति हारं नववधूः॥

प्रिय जब नववधू के प्रत्यङ्ग पर दृष्टि डालता है और उसके कपड़े खींच लेता है तब वह द्वार बन्द करके चन्द्रमा को छिपाती है, लज्जित होकर वह अपने कनफूल से दीपक बुझा देती है, यह सब तो करती है पर नववधू अपना बड़ा गले का हार कैसे छोड़ती है।

कदा संसारजालान्तर्बद्धं त्रिगुण रज्जुभिः।
आत्मानं मोचयिष्यामि शिव भक्ति शलाकया॥

त्रिगुण की रस्सी द्वारा संसारजाल में बंधे हुए अपने को शिवभक्ति शलाका के द्वारा कब मुक्त करूँगा।

वाङ्मनःकायकर्माणि विनिवेश्य त्वयि प्रभो।
त्वन्मयीभूय निर्द्वन्द्वः कच्चित्स्यामपि कर्हिचित्॥

हे प्रभो, वचन मन शरीर और कर्म तुममें लगाकर निर्द्वन्द्व और त्वद्गुतप्राण क्या कभी मैं हो सकूंगा।

मलतैलाक्तसंसारवासनावर्तिदाहिना।
ज्ञानदीपेन देव त्वां कदानु स्यामुपस्थितः॥

मलरूपी तैल में भिगोयी हुई संसारवासना रूपी वत्ती को जलाने वाले ज्ञानदीप के सहारे मैं आपके पास कब उपस्थित होऊँगा।

एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शंभो भविष्यामि संसारोन्मूलनक्षमः॥

हेशम्भो, एकाकी निस्पृह शान्त, पाणिपात्र और दिगम्बर मैं कब होऊँगा, और कब मैं संसार का नाश कर सकूंगा।

प्रशान्तशास्त्रार्थविचारचापलं
निवृत्तनानारसकाव्यकौतुकम्।
निरस्तनिःशेषविकल्पविप्लवं
प्रपत्तुमन्विच्छति चक्रिण मनः॥

मेरे मन से शास्त्रार्थ के विचार की चपलता दूर होगयी; अनेक प्रकार के सरसकाव्य कौतुक से भी मन निवृत्त हो गया, समस्त तर्क वितर्क भी दूर होगये, इस समय मेरा मन भगवान् की शरण जाना चाहता है।

कृष्ण त्वदङ्घ्रियुगलाम्बुजभक्तिरेणु--
पुञ्जान्तरालपरिधूसरविग्रहोऽहम्
भृङ्गः कदा निजपतत्र विधूननेन
प्रेतेशदिक्तिमिरपातपटुर्भवेयम् ।

हे कृष्ण, आपके चरणकमलों की भक्तिरेणु से परिधूसर शरीरवाला भ्रमर मैं कब बनूँगा और कब (भृङ्ग) मैं अपने पंखो के संचालन से यमराज की दिशा का अन्धकार दूर कर सकूँगा ।

विजृम्भमाणे तमसि प्रगल्भे
यथा भवासक्तमतिः स्थितोऽहम् ।
गतेऽपि तस्मिन्नुदितावबोध-
स्तथा भवासक्तमतिर्भवेयम् ॥

विकट अज्ञान के फैलने पर जिस प्रकार मैं भवासक्तमति (संसारा सक्त बुद्धि) बना हूं उसी प्रकार उस अज्ञान के दूर होने पर भी आत्मज्ञानी मैं भवासक्तमति (शिवासक्त बुद्धि भव. शिव और संसार दोनों को कहते हैं) होऊँगा ।

जगन्नाथ पण्डितराज

ये तैलंग ब्राह्मण थे, मुगेंडा नामक गांव के रहनेवाले थे, इनके पिता का नाम पेरुभट्ट था और इनकी माता का नाम लक्ष्मीबाई था। सम्भवतः इनकी स्त्री का नाम भामिनी था और इसीसे इन्होंने अपने स्फुट पद्यों के सँग्रह का नाम भामिनीविलास रखा था। रस गंगाधर में इन्होंने अपने पिता के विषय में इस प्रकार लिखा है:—

श्रीमज्ज्ञानेन्द्रभिक्षोरधिगतसकलब्रह्मविद्याप्रपञ्चः
कासादीरक्षपादीरपि गहनगिरो यो महेन्द्रादवेदीत् ।
देवा देवाध्यगोष्ट स्मरहरनगरे शाशनं जैमिनीयः
शेषांकप्राप्तशेषामल मपित्तिर भूत्सर्वं विद्याधरोयः ।।

पेरुभट्ट ने ज्ञानेन्द्र भिक्षु से समस्त ब्रह्मविद्या सीखी, महेन्द्र पण्डित से जिन्होंने न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया । काशी में महादेव से पूर्व मीमांसा पढ़ी और अन्य समस्त विद्या नागो जी भट्ट से पढ़ी ।

ये दिल्ली के बादशाह के यहाँ रहते थे, दिल्ली जाने के पहले चोलराज के दरबार में भो कुछ दिनों थे, पर वहां इनका मन न लगा और ये जयपुर आये, जयपुर के पण्डितों से इन्होंने शास्त्रार्थ किया वहां एक पाठशाला स्थापित की और अनेक विद्यार्थियों को अनेक शास्त्र पढ़ाये ।

इन्होंने फारसी पढ़ी थी, मुसलमानी धर्मग्रन्थ का भी इन्हें प्रौढ़ज्ञान था, इन्होंने दिल्ली के काजी से शास्त्रार्थ किया और उसे परास्त किया, बादशाह ने इन्हें दिल्ली का काजी बनाया, दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के ये आश्रित हुए । शाहजहां ने ही इन्हें पण्डितराज की पदवी दी । इन्हींके समय में अप्पय दीक्षित थे और अप्पय दीक्षित से इनका विरोध था, इन्होंने अप्पयदीक्षित की चित्रमीमांसा नामक ग्रन्थ का खण्डन किया है ।

दिल्ली जाने के पहले ये नैपाल भी गये थे, पर वहां इनका मन नहीं रमा और वहाँ से चले आये, इस संबन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है ।

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः
नेपालभूपैः परिदीयमानं शाकायवास्याल्लवणाय वास्यात्

दिल्लीश्वर या जगदीश्वर मनोरथों को पूरा कर सकते हैं, नेपाल के राजा ने जो दिया है वह शाक या निमक के लिए हो सकता है।

लवङ्गी नाम की किसी मुसलमान कन्या से इन्होंने ब्याह किया था। यह बात प्रसिद्ध ही है। इस संबन्ध में इन्होंने कहा है।

यवनीनवनीत कोमलाङ्गी शयनीयरो यदि पावनी करोतु"
अवनीतलमेव साधु मन्ये न वनी माधवनी विनोदहेतुः।

मक्खन के समान कोमलाङ्गी यवनी यदि पलंग को पवित्र करे तो पृथ्वी तलही उत्तम है, इन्द्र का नन्दनवन अच्छा नहीं। पर यवनी परिणय के कारण इनकी जातिवालों ने इन्हें ज़ाति-च्युत कर दिया था और इन्होंने वृद्धावस्था काशी में बितायी थी।

इनके बनाये ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

अमृत लहरी,
आसफ विलास,
करुणा लहरी,
चित्र मीमांसा खण्डन,
जगदाभरण काव्य,
पीयूष लहरी,

प्राणाभरण काव्य,
भामिनीविलास,
मनोरमाकुचमर्दन,
यमुनावर्णन चम्पू,
लक्ष्मी लहरी,
सुधालहरी,
रसगङ्गाधर,

कामरूप के राजा के वर्णन में इन्होंने प्राणाभरण नामक एक काव्य लिखा है; इससे सम्भव है कुछ दिनों तक ये वहां भी रहे हों।

इनकी युक्ति सरस और चुभनेवाली होती है, इन्होंने कोई महाकाव्य नहीं लिखा है, काव्य के उत्तम गुण इनकी कविता में कम पाये जाते हैं, शब्दसौष्ठव और उक्तिचातुर्य इनकी कविता में काफी है और इसीसे इनकी कविता का आदर है। ये बड़े ही अभिमानी थे। अपनी कविता के विषय में इनकी समझ थी कि मेरे समान कविता करनेवाला दूसरा नहीं, केवल समझ ही नहीं थी यह बात इन्होंने लिखी भी है।

आमूलाद्रत्नसानोर्मलयवलयितादा च कूलात्पयोधे
र्यावन्तः सन्ति काव्य प्रणेन पटवसो विशङ्कं वदन्तु
मृद्वीकामध्य निर्य न्मसृणपदधुरी माधुरी साग्य साजां
बाचामाचार्यताया पदमनुं भवितु कोऽस्मि धन्यो मदन्यः।

मेरु पर्वत से लेकर मलयाचल वेष्टित समुद्रतीर पर्यन्त जो काव्यरचना में चतुर हैं वे निःशङ्क होकर कहें, दाख से निकले कोमल मधुरता पूर्ण बचन का आचार्य होने की योग्यता मेरे अतिरिक्त और किस धन्य मनुष्य में है।

इन्होंने अपने विषय में कहा है--

शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधयः सर्वेऽपि सम्भविताः
दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः
सम्प्रत्युज्झितमासनं मधुरीमध्ये हरिः सेव्यते
सर्वं पण्डितराजिराजतिलके नाकारि लोकोत्तरम् ।

शास्त्रों का अध्ययन किया, सभी नित्य विधियों का अनुष्ठान किया, दिल्ली पति के हाथों के नीचे नयी उमर बितायी इस समय पद छोड़ कर मथुरा में हरि की सेवा होती है, पण्डितराज ने सभी अद्भुत ही किया । सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में ये थे ।

विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमाः
भूपालाः कमलाविलासमदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिताः
आस्ये धास्यति कस्य लास्यमधुना धन्यस्य कामालस-
स्वर्वामाधरमाधुरीमधरयन् वाचां विलासोमम ॥१॥

पृथिवी के विद्वान् दूसरों की कविता की प्रशंसा करने के विषय में इस समय मौन हैं, राजा लोग धन मद से उन्मत्त हो रहे हैं, ऐसी दशा में काम से अलसायी देवाङ्गनाओं की अधर माधुरी को तिरस्कार करने वाला मेरा वचनविलास किस धन्य मनुष्य के मुख में नृत्य करेगा ।

विद्राणैव गुणज्ञता समुदितो भूयानसूयाभरः
कालोऽयं कलिराजगाम जगतीलावण्यकुक्षिम्भरिः
इत्थं भावनया मदीयकविते मौने किमालम्बसे
जगतुं क्षितिमण्डले चिरमिह श्रीकामरूपेश्वरः ॥२॥

गुणज्ञता तो चली ही गयी, दूसरों के गुणों में दोष देखने की प्रकृति उत्पन्न हुई है, यह कलियुग है जिसने जगत् का

सौन्दर्य नष्ट किया है, यह सोचकर हे मेरी कविते! तुम मौन क्यों हो रही हो, इस भूमण्डल पर श्रीकामरूपेश्वर बहुत दिनों तक वर्तमान् रहें! अर्थात् वे ही तुम्हारा आदर करेंगे।

क्षोणिं शासति सच्युपद्रवलवः कस्यपि न स्यादिति
प्रौढं व्याहरतो वचस्तव कथं देवप्रतीमो वयम्,
प्रत्यक्षं भवतो विपक्षनिवहैर्यामुत्पतद्भिः क्रुधा,
यद्युष्मत्कुलकोटिमूलपुरुषो निर्भिद्यते भास्करः।

मेरे शासन के समय किसी को भी थोड़ा भी उपद्रव न हो आपकी इस बात को हम लोग कैसे सत्य मानें, क्योंकि यह प्रत्यक्ष है कि आपका शत्रुसमूह क्रोध से आकाश में जाता है और वह आपके कुल के मूलपुरुष सूर्य का भेदन करता है।

पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्खलन्
परागसुरभीकृते पयसि यन्स्य यातं वयः
स पल्वलजलेऽधुना मिलदनेकभेकाकुले
मरालकुलनायकः कथयरे कथं वर्तताम्।

पहले मानसरोवर के विकसित कमलों के गिरे पराग से सुगन्धित जल में जिसने अपनी उमर वितायी, वह राजहंस आज छोटे तालाब में—जिसमें अनेकों मेढक हैं कैसे रहेगा, कहो तो।

आपद्गिरेऽम्बरपथं परितः पतङ्गा भृङ्गा रसालमुकुलानि समाश्रयन्त।
सङ्कोचमञ्चन्ति सरस्त्वयि दीनदीने मीनो नु हन्त कतमां गतिमभ्युपैतु॥

हे सरोवर, तुम्हारे दीन होने पर अर्थात् सूखने पर पक्षि-गण उड़कर आकाश में चले गये, और भौरों ने आम की बौर

का आश्रय लिया पर विचारी मछलियों की क्या दशा होगी, ये कहाँ आश्रय पावेंगी ।

एकस्त्वं गहनेऽस्मिन् कोकिल न कलं कदाचिदपि कुर्याः
साजात्यशंकयामी न त्वां घ्नन्ति निर्दयाः काकाः ।

हे कोकिल, तुम इस वन में अकेली हो, इसलिए कभी बोलना मत, नहीं तो कौओं को मालूम होजायगा कि यह कौआ नहीं है और वे निर्दय तुम्हें मार डालेंगे। अभी तो न बोलने से तुम्हें अपनी जाति का समझते हैं और इसीसे वे तुम्हें नहीं मारते ।

ग्रीष्मे भीष्मतरैः करैर्दिनकृतो दग्धोऽपि यश्चातकः
त्वां ध्यायन् घन, वासरान् कथमपि द्राघीयसो नीतवान् ।
दैवाल्लोचनगोचरेण भवता तस्मिन्निदानीं यदि
स्वीचक्रे करकानिपातनकृपा तत् कम्प्रति ब्रूमहे ।

हे मेघ, गर्मी के सूर्य की कड़ी किरणों से जला हुआ भी जिस चातक ने केवल तुम्हारा ही ध्यान करके उन बड़े दिनों को बिताया, अब तुम भाग्य से दिखायी पड़े तो उस विचारे चातक पर तुमने पत्थर बरसाने की कृपा की, यह बात किससे हम लोग कहें ।

स्थितिं नोरे दध्याः क्षणमपि मदान्धेक्षण सखे,
गजश्रेणिनाथ त्वमिह जटिलायां वनभुवि,
असौ कुम्भिभ्रान्त्या खर नखर विद्रावितमहा-
गुरुग्रावग्रामः स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः ।

हे मतवाली आंखों वाले गजराज, इस बीहड़ वन में एक क्षण भी न रहो, यह देखो, हाथी के भ्रम से तीखे नखों द्वारा

बड़े बड़े पत्थरों को चीर कर यहीं पर्वत की गुफा में यह सिंह सो रहा है।

अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्तिरन्यैव कापिरचना वचनावलीनाम्
लोकोत्तरा च कृति राकृतिरार्त हृद्या विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः

विद्वानों की सभी बातें विलक्षण होती हैं, उनकी मानसिक प्रवृत्ति संसार का कल्याण करनेवाली होती है, उनके बोलने का ढंग कुछ विलक्षण ही होता है। उनके कार्य-लोकोत्तर होते हैं और उनकी आकृति पीड़ितों को प्रिय मालूम होती है।

गुरुमध्यगता मया नताङ्गी निहिता नीरजकोरकेण मन्दम्,
दरकुण्डलताण्डवं नतभ्रू तिलकं मामवलोक्य घूर्णितासीत्।

वह कोमलाङ्गी अपने बड़ों के बीच में बैठी थी, मैंने उसे कमल की कली से धीरे से मारा, उसने अपने कुण्डलों को थोड़ा नचाकर भौंहों को टेढ़ी कर मुझे क्रोधपूर्वक देखा।

तीरे तरुण्या वदनं सहासं नीरे सरोजञ्च मिलद्विकासम्
आलोक्य धावत्युभयत्र मुग्धा मरन्दलुब्धालिकिशोरमाला।

तीर पर युवती का हंसता हुआ मुख है और जल में खिला कमल है, दोनों को देख कर पुष्प-रस की लोभिनी भ्रमरपंक्ति कभी इधर और कभी उधर दौड़ती हैं, उसके लिए इस बात का निश्चय करना कठिन हो रहा है कि कमल कौन है।

उपनिषदः परिपीता गीतापि च हन्त श्रुतिपथं नीता,
तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति।

उपनिषदों का पान किया, गीता को भी सुना, फिर भी वह चन्द्रमुखी मन से बाहर नहीं निकलती।

लोभाद्वराटिकानां विक्रेतुं तक्रमविरतमटन्त्या
लब्धो गोपकिशोर्या मध्येरथ्यं महेन्द्रनीलमणिः

कोई गोपकन्या कौड़ियों के लोभ से तक्र बेंचने के लिए गलियों में घूम रही थी, गली के बीच में उसे इन्द्रनीलमणि मिल गया।

गुरुमध्ये हरिणाक्षीमार्त्तिकशकलैर्निहन्तुकामं माम्
रदयन्त्रित रसनाग्रं तरलितनयनं निवारयाञ्चक्रे

अपने बड़े के बीच में वह बैठी थी, उस मृगनयनी ने मिट्टी के टुकड़ों से मारने की इच्छा रखने वाले मुझको, अपनी जीभ के अग्रभाग को दांतों से दबा कर और आंखें घुमाकर रोका।

दैवे पराग्वदनशालिनि हन्त जाते,
याते च सम्प्रति दिवं प्रतिबन्धुरत्ने,
कस्मै मनः कथयितासि निजामवस्थां
कः शीतलैः शमयिता वचनैस्तवाधिम्।

भाग्य के प्रतिकूल होने पर और मित्र के स्वर्गगामी होने पर हे मन, तुम अपनी अवस्था का वर्णन किससे करोगे और कौन शीतल वचनों द्वारा तुम्हारा दुःख दूर करेगा।

सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता
विद्यापि खेदगलिता विमुखीबभूव,
सा केवलं हरिणशावकलोचना मे
नैवापयाति हृदयादधिदेवतेव।

सभी बातें भूलगयी, विद्या भी दुःख के मारे रूठ गयी, पर केवल वही हरिणशावक लोचना अधिष्ठात्री देवता के समान मेरे हृदय से नहीं निकल रही है।

स्वप्न न्तरेषु खलु भामिनि पत्युरन्यं
या दृष्टवत्यसि न कञ्चन साभिलाषम्
सा सम्प्रति प्रचलितासि गुणैर्विहीनं
प्राप्तुं कथं कथयहन्त परं प्रमांसम्।

हे भामिनि, अभिलाष पूर्वक स्वप्न में भी कभी तुमने दूसरे पुरुष को नहीं देखा है, वही तुम, आज निर्गुण परपुरुष- (परम पुरुष, परमेश्वर) को पाने के लिए क्यों चली हो, कहो।

स्मृतापि तरुणातपं करुणया हरन्ती नृणाम्,
अभङ्गुरतनुत्विषां वलयिता शतैर्वि द्यु ताम्,
कालिन्दिगिरिनन्दिनीतटसुरद्रुमालम्बिनी,
मदी यमत्तिचुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी,

स्मरण करने से भी जो मनुष्यों के कठोर दुःख को हरण करती है, स्थायी प्रभाव वाली विजलियों से जिसका शरीर शोभित हो रहा है, यमुना के तीर के देववृक्ष पर लटकने वाली कोई मेघमाला (कृष्ण) मेरी बुद्धि का चुम्बन करे, अर्थात् मेरी बुद्धि उसका चिन्तन करे।

वाचा निर्मलया सुधामधुरया यां नाथ शिक्षामदा-
स्तां स्वप्ने ऽपिन संस्मराम्यहमहम्भावावृतो निस्त्रपः
इत्यागःशतशालिनं पुनरपि स्वीयेषु मां बिभ्रत-
स्वत्तो नास्ति दयानिधिर्यदुपते मत्तो न मत्तोऽपरः

हे नाथ, अमृत के समान मधुर निर्मल वचनों द्वारा जो शिक्षा आपने दी है, उसको स्वप्न में भी मैं स्मरण नहीं करता, क्योंकि मैं अहंकारी हूं, निर्लज्ज हूं, इस प्रकार के अनेक मेरे अपराध हैं, फिर भी आप मुझे अपनाये हुए हैं, हे यदु-

पते, आपके समान दूसरा दयालु नहीं है और न मेरे समान मतवाला ही कोई दूसरा है ।

> पातालं व्रज, याहि वा सुरपुरीमारोह मेरोः शिरः
> पारावारपरम्परां तर तथाप्याशा न शान्ता तव,
> आधिव्याधिजरापराहत, यदि क्षेम निजं वाञ्छसि,
> श्रीकृष्णेति रसयनं रसय रेशून्यैः किमन्यैः श्रमैः ।

पाताल में जाओ, देवताओं की पुरी में जाओ, मेरु पर्वत सिर पर चढ़ो अथवा समस्त समुद्रों को पार करो, फिर भी तुम्हारी आशा शान्त न होगी. हे मानसिक और शरीरिक दुःखों से पीड़ित, यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो (श्रीकृष्ण) इस रसायन का आस्वादन करो, निरर्थक अन्य प्रयत्नों से लाभ क्या ।

> मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पयः
> स्वर्यातेन सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः
> सत्यं ब्रूहि मदीय जीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता,
> कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः ।

दाख तुमने खाया, मिश्री खायी, दूध पिया, स्वर्ग जाने पर अमृत पिया, रामा के अधर का भी आस्वादन किया हे मेरे जीव, सच कहो वारवार संसार में घूमने से तुम्हें (कृष्ण) इन अक्षरों की मिठाई के समान मिठाई, कहीं मिली है ।

> सपदि विलयमेतु राजलक्ष्मी रुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधारा
> अपहरतुतरां शिरः कृतान्तोमम तु मनो न मनागपैति धर्मात् ।

इसी समय राजलक्ष्मी का नाश हो जाय, अथवा मेरे ऊपर तलवारें पड़ें यमराज मस्तक ले जाय पर मेरा मन धर्म से नहीं हटता ।

जयदेव।

इनकी कविता बड़ी ही सरस और मधुर होती है। इन्होंने गीतगोविन्द नाम का एक ग्रन्थ बनाया है, इसमें श्रीकृष्ण की स्तुति है, राधामाधव की केलि वर्णन है, वह वर्णन भी सीमापार कर गया है, शृङ्गार की धारा उस वर्णन में वही है। यदि उस वर्णन से राधामाधव का संवन्ध न होता, जयदेव की वाणी इतनी मधुर न होती, तो लोग उसे अश्लील कहते।

बंगाल के किन्दुविल्व नामक गांव में ये रहते थे। यह गांव वीरभूमि जिला में है। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम बामादेवी था। इनकी स्त्री का नाम पद्मावती था। ये वैष्णव थे। ये बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन की सभा में रहते थे, यह बात नीचे लिखे श्लोक से मालूम पड़ती है।

> गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः
> कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य हि।

इस श्लोक की पुष्टि जयदेव ने अपने गीतगोविन्द के प्रारम्भिक एक श्लोक द्वारा की है।

> वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिराम्,
> जानीते जयदेव एव शरणः श्लध्यो दुरूहद्रुतेः
> शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन–
> स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतधरो धोयी कविक्ष्मापतिः।

इनके अतिरिक्त प्रसन्न राघव कर्ता एक और जयदेव हो गये है।

पूर्व्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ।
ध्यायँस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्राक्षरं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥

पहले तुम्हारे साथ जहां कामदेव की सिद्धि पायी थी उसी कामदेव के महातीर्थ कुञ्ज में माधव पुनः तुम्हारा ध्यान करता है और तुम्हारी ही बातों को मन्त्र बना कर जप रहा है, और पुनः वह तुम्हारे आलिङ्गन का अमृत चाहता है ।

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम् ।
न कुरु नितम्बिनि गमनबिलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ।
पीनपयोधरपरिसरमर्द्दनचञ्चलकरयुगशाली ॥ ध्रुवम्

अभिसार के लिए मदन का मनोहर वेश प्राप्त हुआ है, चलने में विलम्ब मत करो हृदयेश का स्मरण करो । इस समय वनमाली यमुनातीर पर हैं जहां मन्द मन्द हवा चल रही है, और तुम्हारे स्तनस्पर्श के लिए उनके हाथ चञ्चल हो रहे हैं ।

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम् ।
बहुमनुते ननु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥

वे तुम्हारा नाम लेकर सङ्केत कर रहे हैं वेणु बजा रहे हैं, तुम्हारे शरीर की धूलि जो वायु के द्वारा लायी जाती है उसे भी वे बहुत समझते हैं ।

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम ।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ॥

जब पक्षी उड़ते हैं या पत्ता खटकता है तो उन्हें तुम्हारे आने का सन्देह हो जाता है, वे बिछौना बनाते हैं और चकित होकर तुम्हारा मार्ग देखते हैं।

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिषु लोलम्॥
चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नोलनिचोलम्॥

क्रीडा में शत्रुरूप इस बजने वाले नूपुर को छोड़ दो, सखि, अन्धेरे कुञ्ज की ओर चलो और काला कुर्ता पहनो।

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके।
तड़िदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके॥

हे पुण्यवति, माधव के उरस्थल पर माला पड़ी है, इससे वह चञ्चल वकपंक्ति युक्त मेघ के समान मालूम होता है, उस पर विपरीत रति में विद्युत के समान तुम शोभित होओगी।

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम्।
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम्॥

कृष्ण अभिमानी है, रात भी बीत रही है, मेरी बात मानो, कृष्ण का मनोरथ पूरा करो।

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम्।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम्॥

हरिसेवक जयदेव ने यह परम रमणीय उक्ति कही है, प्रसन्नचित्त दयालु और पुण्य के द्वारा सुन्दर हरि को नमस्कार करो।

विकिरति मुहः श्वासानाशाः पुरो मुहरीक्षते
प्रविशति मुहः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति।

रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्त्तते ॥

बार बार चारों तरफ श्वास फेंक रहा है, बार बार आगे की ओर देखता है, कुछ बोलता हुआ बार बार कुञ्ज में जाता है। बहुत व्याकुल होता है, बार बार शय्या बनाता है, व्याकुल होकर बारबार देखता है, कान्ते, तुम्हारा प्रिय इस समय मदन के दुःख से व्याकुल है।

त्वद्वाम्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तं गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सान्द्रताम् ।
कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः ॥

तुम्हारी वामता के साथ साथ यह सूर्य अस्त हो गया, गोविन्द के मनोरथ के साथ साथ अन्धकार गाढ़ हो गया। चकवा की करुणप्रार्थना के समान मेरी यह प्रार्थना है, मुग्धे, अब विलम्ब व्यर्थ है, यह अभिसार का उत्तम अवसर है।

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्यान्तज-
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो-
र्दम्पत्योरपि को न को न तमसि व्रीड़ाविमिश्रो रसः

प्रेमी दम्पतियों को अन्धकार में लज्जायुक्त अनेक प्रकार के रस प्राप्त होते हैं। आलिङ्गन चुम्बन, नखोल्लेख, मानसिक उल्लास, घबड़ाहट भिन्न भिन्न मार्ग में जाने वालों का भ्रम से मिलना और बोली से पुनः पहचानना आदि अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशौ तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ।
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम् ॥

अँधेरे मार्ग में चकित होकर देखती हुई प्रत्येक वृक्ष के पास ठहर कर धीरे धीरे पैर रखती हुई इस प्रकार अनेक कष्टों से आई हुई तुमको देखकर तुम्हारा प्रिय रोमाञ्चित अङ्गों से कृतार्थ हो ।

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली-
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारान्तकः
स्वच्छदं व्रजसुन्दरीजनमन स्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥

राधा के सुन्दर मुख कमल के भ्रमर, त्रिलोक के शिरोमणि, आभूषण योग्य नीला रत्न, पृथिवी का भार उतारने वाले, व्रजनारियों के मन को सन्तुष्ट करने वाले, कंस के नाश के चिन्ह, देवकीनन्दन तुम्हारी रक्षा करें ।

जयदेव (२)

इन्होंने प्रसन्नराघव नामक नाटक बनाया है । यह विदर्भ के रहनेवाले थे । इनकी माता का नाम सुमित्रा और पिता का नाम महादेव था । यह कौण्डिन्य गोत्र के थे । यह विलक्षण कवि होने के अतिरिक्त नैयायिक भी थे । इनका दूसरा नाम पक्षधर भी था और पक्षधरी नाम की एक पुस्तक

न्याय की इन्होंने बनायी है और भी न्याय की पुस्तकें इन्होंने लिखी है। चन्द्रालोक नामक अलङ्कार ग्रन्थ भी इन्हींका बनाया है। इस ग्रन्थ में इन्होंने अपना नाम पीयूषवर्ष लिखा है। इनके निश्चित समय का अभी तक ठीक पता नहीं लगता, पर १५ हवीं शताब्दी में इनका होना अनुमान किया जाता है।

ये नैयायिक और कवि दोनों थे और इसका इन्हे अभिमान था, यह बात इन्होंने अपने ग्रंथ में साफ लिखी भी है। इनका कहना है कि विलासी भी वीर हो सकता और कवि नैयायिक भी हो सकता है।

येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती,
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते,
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहा, सानन्दमारोपिता–
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः।

इनकी न्यायशास्त्र में बड़ी, प्रखरगति थी, ये शास्त्रार्थ में बड़े बड़े पण्डितों को परास्त कर देते थे। इनके विषय में कह जाता हैं कि पक्षधर का प्रतिपक्षी कोई दीख न पड़ा।

" पक्षाधर प्रतिपक्षी लक्षीभूतो न च क्वापि "
येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती।
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता–
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः ४

जिनकी वाणी काव्यकला कोमल है, वे क्या कठोर तर्क शास्त्र के वचन नहीं कह सकते ? जिन लोगों ने आनन्द पूर्वक कान्त के कुचमण्डल पर हाथ रखे हैं, वे क्या मतवाले हाथी के मस्तक पर बाण नहीं छोड़ते।

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः
परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः।
निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णालवालः
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः॥

अपनी बाणी से प्रसन्न होनेवाले भी कई सज्जन दूसरों की बाणी सुनकर प्रसन्न होते हैं। जिस रसाल वृक्ष का आल वाल उसके अपने पुष्परस से पूर्ण होता है वह क्या घड़े के जल से सींचा जाना पसन्द नहीं करता।

वार्ता च कौतुकवती विमला च विद्या
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरङ्गनाभेः।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार-
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ॥

आश्चर्यमयी वाणी, निर्मल विद्या और और लोकोत्तर कस्तूरी की गन्ध ये तीन जल में तैलबिन्दु के समान आपही आप फैलते हैं, इनको रोकना असम्भव है।

एतत्तर्कय चक्रवाकहृदयाश्वासाय तारागण-
ग्रासाय स्फुरदिन्दुमण्डलपरीहासाय भासां निधिः।
दिक्कान्ताकुचकुम्भकुङ्कुमरसन्यासाय पङ्केरुहो-
ल्लासाय स्फुटवैरिकैरववनत्रासाय विद्योतते॥

यह देखो, चक्रवाक दम्पती के हृदयों को आश्वासित करने के लिए, ताराओं का ग्रास करने के लिए, प्रकाशित होनेवाले चन्द्रमण्डल की हँसी करने के लिए, दिगङ्गना के स्तनों पर कुङ्कुम का रस लगाने के लिए कमलों को विकसित करने के लिए, और खुल्लम् खुल्ला शत्रुता करनेवाले कैरव बन को भय देने के लिए यह सूर्य प्रकाशित हो रहा है।

लालयन्तमरविन्दवनानि
क्षालयन्तममितो भुवनानि ।
पालयन्तमथ कोककुलानि
ज्योतिषां पतिमहं महयामि ॥

जो कमल वन को ललित करता है, समस्त भुवनों को मानों क्षलित करता है चक्रवाकों का पालन कर रहा है, ऐसे सूर्य की मैं पूजा करता हूं ।

इन्दुरिन्दुरिति किं दुराशया
विन्दुरेव पयसो विलोक्यते ।
नन्विदं विजयते मृगीदृशः
श्यामकोमलकपोलमाननम् ॥

इन्दु, इन्दु यह क्या हो रहा है, यह तो जल का बिन्दु है जो देखा जाता है, यह स्त्रियों के श्याम कोमल कपोल युक्त मुख को नहीं जीत सकता ।

तन्वि त्वद्वदनस्य विभ्रमवं लावण्य वारांनिधे-
रिन्दुः सुन्दरि दुग्धसिन्धुलहरीविन्दुः कथं विन्दतु ।
उत्कल्लोलविलोचने क्षणमयं शीतांशुरालम्बता
मुन्मीलन्नवनीलनीरजवनीखेलन्मराल श्रियम् ॥

हे सुन्दरी, सौन्दर्य समुद्र तुम्हारे मुख के विलास की कणिका भी यह चन्द्रमा कैसे पासकता है, क्योंकि यह तो क्षीर समुद्र की लहरियों का विन्दु है । हो सकता है कि थोड़ी देर के लिए यह चन्द्रमा विकसित होने वाले कमल वन में खेलने वाले हंस की शोभा को प्राप्त करे, पर तुम्हारी आंखें तो हमेशा खेला करती है, उन में तो सदा तरङ्गें उठा करती हैं ।

कर्पूरादपि कैरवादपि दलत्कुन्दादपि स्वर्णदी-
कल्लोलादपि केतकादपि चलत्कान्तादृगन्तादपि ।
दूरोन्मुक्तकलङ्कशंकरशिरःशीतांशुखण्डादपि
श्वेताभिस्तव कीर्तिभिर्धवलिता सप्तार्णवा मेदिनी ॥

कपूर, कैरव विकसित होने वाले कुन्द, गङ्गा की तरङ्ग, केतक, स्त्री के चञ्चल आंखों के कोण, कलङ्क रहित महादेव के सिर पर रहने वाले चन्द्रखण्ड से भी अधिक तुम्हारी कीर्ति श्वेत है और उसने सात समुद्रों से घिरी पृथिवी को श्वेत बना दिया ।

जल्हण ।

ये कवि काश्मीर देश के निवासी थे । मंखकवि ने इनके विषय में अपने श्रीकण्ठचरित में जो लिखा है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है ।

यथा चरति वक्रेण वाग् यस्य चतुरैः पदैः
सरस्वत्यै विनिर्मातुमुद्यतेव प्रदक्षिणम्,
प्रक्रमैर्हठवक्रिम्णो मुरारिमनुधावतः
श्रीराजशेखरगिरो नीवी यस्योक्तिसंपदाम्
श्रीमद्राजपुरीसन्धिविग्रहस्य नियोगिनम्,
अथानर्च वचोभिस्तं जल्हणं विनयाञ्चितैः

इन श्लोकों से मालूम होता है कि ये वक्रोक्ति कहने में बड़े निपुण थे । वक्र रचना में मुरारि कवि की ये बराबरी करते थे । राजशेखर कवि की कविता इनकी आदर्श थी, काश्मीर के अन्तर्गत राजपुरी के राजा के ये मंत्री थे, इन्होंने सोम-

विलास नाम का एक काव्य बनाया था, इस काव्य की टीका राजानक रुय्यक ने बनायी थी, जिसका नाम अलंकारानुसारिणी है। इस काव्य में राजपुरी के राजा सोमपालका वर्णन है।

स्वप्रज्ञया कुञ्चिकयेव केचित्सारस्वतं वक्रिमभङ्गिभाजम्।
कवीश्वरः कोपि पदार्थकोशमुद्धाट्य विश्वाभरणं करोति ॥ १ ॥

वक्रता धारण करनेवाले सरस्वती के पदार्थकोश को कवीश्वर कुंजीरूपी अपनी बुद्धि से खोलते हैं और उसके द्वारा संसार को भूषित करते हैं। कवीश्वर कठिन तत्वों को अपनी बुद्धि से सुलझाते हैं और उससे संसार का उपकार होता है।

दैवीर्गिरः कोऽपि कृतार्थयन्ति ताः कुण्ठयन्त्येव पुनर्विमूढ़ा ॥
या विप्रुषः शुक्तिमुखेषु दैव्यस्ता एव मुक्ता नतु चातकेषु ॥ २ ॥

कुछ लोग देवी वाणी को कृतार्थ करते हैं और मूर्ख उसी को कुण्ठित करते हैं, जो दिव्य जलविन्दु सीप के मुख में पड़ते हैं उन्हींसे मोती तय्यार होजाता है, चातकों के मुख में पड़े विन्दु से नहीं।

परिश्रमज्ञं जनमन्तरेण मौनव्रतं बिभ्रति वाग्मिनोपि ॥
वाचंयमाः सन्ति विना वसन्तं पुंस्कोकिला पञ्चमचञ्चवोपि ॥ ३ ॥

परिश्रम जाननेवाला मनुष्य यदि न मिले तो वक्ता भी चुप रहते हैं। पञ्चम राग गाने में चतुर कोकिल भी वसन्त के विना चुपही रहता है।

व्यालाश्च राहुश्चसुधाप्रसादाज्जिव्हाशिरोनिग्रहमुग्रमापुः ॥
इतीव भीताः पिशुना भवन्ति पराङ्मुखाः काव्यरसामृतेषु ॥ ४ ॥

हाथी और राहु को अमृत के कारण जिह्वा और मस्तक का कठिन दण्ड भोगना पड़ा है। इससे भीत होकर पिशुन मनुष्य काव्यरसामृत से अलग ही रहते है।

माद्यन्मातङ्गकुम्भस्थलवहलवसावासनाविस्रगन्ध–
व्यासङ्गव्यक्तमुक्ताफलशकललसत्केसराली करालः ॥
व्याधीवैधव्यवेधाः स्वभुजबलमतग्रस्ततेजस्विधामा
विभ्यत्सारङ्गसार्थः सततमसहनः केसरी केन दृष्टः ॥ ५ ॥

मतवाले हाथी के कुम्भ-स्थल की गाढ़ी चर्वी से वासित होने के कारण कच्चे मांस के समान जो महकता है, हाथी के कुम्भ-स्थल को अधिक खरोचने से निकले हुए मुक्ता के टुकड़ों से जिसका केसर भयानक होगया है, व्याध स्त्रियों को विधवा बनानेवाला अपने भुजबल से अन्य तेजस्वियों के तेज को नीचा दिखाने वाला, वह सिंह किसके दृष्टिपथ में आया है, जिससे हिरनी का समूह डरा करता है।

कः कः कुत्र न घुर्घुरायितघुरीघोरो घुरेत्सूकरः
कः कः कं कमलाकरं विकमलं कर्तुं करी नोद्यतः ॥
के के कानि वनान्यरण्यमहिषा नोन्मूलयेयुर्यतः
सिंहीस्नेहविलासबद्धवसतिः पञ्चाननो वर्तते ॥ ६ ॥

किस किस सूकर ने धुर्धुराराव से भयङ्कर बनकर लोगों को भयभीत नहीं किया है, कौन कौन हाथी किस किस कमल वन को कमल हीन करने के लिए उद्यत नहीं होते हैं, बनैले भैंसे किस किस बन को तोड़ फोड़ नहीं रहे हैं क्योंकि इस समय सिंह सिंहिनी के प्रेम के कारण विलासी बना पड़ा है।

आवाल्यादपि यो विदारितमदोन्मत्तेन कुम्भस्थली
स्थालीमध्यक चोष्णरक्तरसवन्मुक्तापुलाकप्रियः ॥
हस्तस्तस्य कथं प्रसर्पतु पुरः कृच्छ्रेप्यवस्थान्तरे
गर्तावर्त्तविवर्तमानशशकप्राणापहारे हरेः ॥ ७ ॥

जिसने बाल्यावस्था से ही मतवाले हाथियों के कुम्भस्थल को तोड़ा है, और जिसे गर्म रक्त से सना हुआ मुक्ताफल प्रिय है, उस सिंह की चाहे कैसी ही बुरी अवस्था हो पर गढ़े में गिरे भय-व्याकुल हरिण को मारने के लिए उसका हाथ कैसे आगे बढ़ेगा।

रक्ताक्तयन्नखरकोटिनिभाःदभानां यूथा पलाशवनतोपि पलाय्य जग्मुः ॥
सिंहस्य तस्य जरतो विषमा दशा यद्गोमायुवैरवयवैरपि नास्ति वृत्तिः ॥८॥

पलाश के फूल भी रक्तयुक्त सिंह के नखों के समान हैं, इसलिए हाथी पलाश वन को भी छोड़ कर भाग गये, उस बूढ़े सिंह की आज बुरी दशा है, जो कि आज उसे शृगाल के मांस के टुकड़े भी जीवन के लिए नहीं मिलते।

पर्जन्यं प्रतिगर्जतः प्रतिनिधिन्विन्ध्यस्य वातोद्धता–
नम्भोधीनिव धावतः सरभसं हत्वा रणे वारणान् ॥
वृक्षाद्वृक्षमुपेयुषोल्पवपुषा शाखा मृगस्योपरि
क्रुद्धः सोपि भवानहो वत गतः पञ्चास्य हास्यां दशाम् ॥९॥

हे सिंह तुम, मेघ को देखकर गर्जते हो, वातक्षुभित समुद्रों के समान दौड़ते हुए विन्ध्याचल के समान हाथियों को रण में शीघ्रता पूर्वक मारते हो, आप एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदने वाले अल्पकाय बानरों पर कोप करते हैं, सिंह, दुःख की बात है कि आपने अपने इस आचरण से अपनी हंसी करायी।

यद्विन्ध्यः शिखरी तदन्तरपि यत्पीलुप्रियः पिप्पलः
सोत्कण्ठा रभसागमादभिपतद्रे णुः करेणुश्च यत् ॥
तत्किं भद्रतया स्मरत्यपि करी दैवं हि सर्वंकषं
तन्मृत्योरपि दुःसहं तु यद्वयं मन्दो धुरि स्थापितः ॥१०॥

वह विन्ध्य पर्वत, उस पर का पीलु और पीपल तथा उत्कण्ठा पूर्वक शीघ्रता से आयी हुई वह हथिनी क्या आज इन सबको वह हाथी स्मरण करता है, भाग्य सब बातों को भुला देता है, यह तो सबसे अधिक दुःख की बात है कि "मन्द" आगे किया गया अर्थात् वह प्रधान बनाया गया। हाथी के एक निकृष्ट जाति को मन्द कहते हैं।

मध्ये विन्ध्यमुदूर्मिनार्मदनदीवातूलवातावली-
हेलोद्धूलितमल्लिकाकिसलयैर्यो वृद्धिमभ्यागत ॥
सोयं दैववशाद्वशाविरहितः शूत्कारकारो करी
निर्मञ्जुद्रगजरज्जुपाशविवशः कष्टं किमाचेष्टताम् ॥११॥

विन्ध्य पर्वत में उतुङ्ग लहरी नर्मदा नदी के वायु के द्वारा अनायास कम्पित मल्लिका की कोढ़ियों से जो बढ़ा है, वही आज भाग्य के फेर से हथिनी विहीन होकर शूत्कार कर रहा है, विवशभाव से रस्सियों में बंधा हैं वह अब क्या कर सकता है।

हे गन्धकुञ्जर महागिरिकुंजराजि मद्यापि मा स्मर सलीलनिमीलिताक्षः ॥
मुञ्चाभिमानमधुना भज वर्तमानं वक्रे विधेरुपरि शासनमङ्कुशं च ॥१२॥

हे गन्धगज, अब आंखें बन्द करके पर्वत कुंजों का स्मरण न करो, अब अभिमान छोड़ दो, इस समय की अवस्था को भोगो, अब भग्य का शासन और अङ्कुश सहो।

यत्रोषितोसि चिरकालमकिंचनः सन्नर्णः प्रतिग्रहधनग्रहणाधर्मणः ॥
निर्लज्ज गर्जसि समुद्रतटेपि तत्र धृष्टोऽधमोस्त्वत्समो घन नैव दृष्टः ॥१३॥

हे मेघ, तुमने बहुत दिनों तक जहां दरिद्र रह कर वास किया है, उससे जल ग्रहण करके तुम उसके ऋणी भी बने हो, हे निर्लज्ज, तुम उसी समुद्र तट पर गर्जते हो, तुम्हारे समान धृष्ट और अधम दूसरा नहीं देखा गया।

आस्यं निरस्य रसितैः सुचिरं विहस्य गात्रान्तरेषु घन वर्षसि चातकस्य ॥
तच्चञ्चुकोटि कुटिलायतकन्धरस्य प्राणात्ययोस्य भवतः परिहासमात्रम् ॥१४॥

हे मेघ, मुंह खोलकर गर्जकर और खूब हंसकर चातक के शरीर पर तुम, पानी बरसाते हो, लम्बी और टेढ़ी गर्दन वाले उस चातक की मृत्यु तुम्हारे लिए केवल एक हंसी की बात है।

भट्ट त्रिविक्रम

इन्होंने नलचम्पू नाम का एक ग्रन्थ बनाया है, इस ग्रन्थ का दूसरा नाम दमयन्तीकथा भी है। भट्टत्रिविक्रम के पिता का नाम देवादित्य था। ये नेमादित्य भी कहे जाते थे। इनके पितामह का नाम श्रीधर था और ये शाण्डिल्य गोत्र के थे। भोजराज रचित सरस्वतीकण्ठाभरण में और रुद्रटालंकार की टीका में नलचम्पू के श्लोक,उद्धृत किये गये हैं।

कहाजाता है कि त्रिविक्रम कुछ पढ़े लिखे न थे, ये योंहीं अपना समय इधर उधर खेल कूद में विताया करते थे। इनके पिता किसी राजा के यहां राजपण्डित थे। एक वार किसी कार्यवश इनके पिता कहीं बाहर गये हुए थे, उस समय राजा

ने इनके पिता को बुलवाया, पिता घर में थे नहीं, जाय तो कौन जाय, न जाँय तो नौकरी जाय। त्रिविक्रम जायगा भी तो क्या करेगा, इसे तो राजसभा में बोलने का भी शऊर नहीं है। अन्त में त्रिविक्रम की माता ने सरस्वती का आवाहन किया और उनका प्रसाद त्रिविक्रम को दिया, सरस्वती के प्रसाद से त्रिविक्रम को शास्त्रों का ज्ञान होगया, पर वह तभी तक के लिए जब तक इनके पिता लौट कर न आ जायँ।

त्रिविक्रम राजसभा में गये और वहां इन्होंने किसी विदेशी पण्डित से शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ में अपने प्रतिपक्षी को परास्त कर और उससे सम्मानित होकर वे घर आये और घर आकर इन्होंने नलचम्पू नामक काव्य लिखना प्रारम्भ कर दिया। वह काव्य अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि इनके पिता लौट आये। सरस्वती की कृपा जाती रही, त्रिविक्रम का पण्डित्य समाप्त होगया और नल चम्पू काव्य अधूरा ही रह गया।

इनकी कविता प्रौढ़ है, सरस है।

> किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः॥
> परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥ १॥

उस कवि के काव्य से क्या, उस धनुर्धारी के वाण से क्या, जो दूसरों के हृदय में लगने पर उसका सिर न घुमा दे। काव्य वही है जिसके आस्वादन से माथा हिलने लगे, वाण वही हैं जिसके कलेजे में लगते ही माथा घुम जाय।

> अप्रगल्भपदन्यासा जननीरागहेतवः
> सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव॥ २॥

पदन्यास (पैरों का रखना, अथवा पद्य में शब्दों का रखना) में निपुण नहीं है और जननीराग के (जनो के नीराग—विराग अथवा जननी के राग के) हेतु, वहुत वोलने वाले कुछ कवि बालकों के समान हैं।

ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥ ३ ॥

वे वन्दनीय हैं, वे महात्मा हैं और उन्हींका यश इस संसार में स्थिर है, जिन लोगों ने काव्य वनाये हैं या जिनका काव्यों में वर्णन हुआ है।

प्रसन्नाः कान्तिहरिण्यो नानाश्लेशविचक्षणाः।
भवन्ति कस्य चित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥ ४ ॥

प्रसन्न मनोहारी और अनेक प्रकार श्लेष (अलङ्कार विशेष और आलिङ्गन) से युक्त वड़े भाग्य से किसी पुण्यवान के मुंह में ऐसी वात और घर में स्त्री होती है।

रत्नान्यमूनि मकरालय मावमँस्थाः कल्लोलवेल्लितदृषत्परुषप्रहारैः ॥
किं कौस्तुभेन विहितो भवतो न नाम याञ्चाप्रसारितकरः पुरुषोत्तमोपि ॥

हे समुद्र, अपनी लहरियों के आघात से इधर उधर लुढ़कनेवाले पत्थरों के कठोर प्रहार से इन रत्नों का तिरस्कार मत करो, क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि कौस्तुभ के कारण पुरुषोत्तम को भी तुम्हारे सामने हाथ फैलाना पड़ा था !

अन्योन्यस्य लयं भयादिव महाभूतेषु यातेष्वलं
कल्पान्ते परमेक एव स तरुः स्कन्धोच्चयैर्जृम्भते ॥
विन्यस्य त्रिजगन्ति कुक्षिकुहरे देवेन यस्यास्यते
शाखाग्र शिशुनेव सेवितजलक्रीड़ाविलासालसम् ॥ ६ ॥

जिस समय भय से सब भूत आपस में मिल कर एक होजाते हैं, उस प्रलय के समय केवल एक उस वृक्ष की ही प्रशंसा करनी चाहिए जो अपनी शाखाओं के साथ खड़ा रहता है, जिसकी शाखा पर बालक के समान विष्णु तीनों लोक को अपने में स्थापित करके आश्रय लेते हैं।

सौधस्कन्धतलानि दीपपटलैः कम्पेन पाण्डुध्वजा
हंसाः पक्षविधूननेन मृदुना निद्रान्तनादेन च ॥
लक्ष्यन्ते कुमुदानिषट्पदरुतैरुत्सर्पिगन्धेन च
क्षुभ्यत्क्षीरपयोधिपूरसदृशे जाते शशाङ्कोदये ॥ ७ ॥

चन्द्रमा का उदय हुआ, चन्द्रमा की किरणें क्षीर समुद्र की लहरियों के समान फैल गयीं। उस समय किसी का पहचानना कठिन हो गया, कुछ का परिचय इस प्रकार हुआ, प्रकाश के द्वारा अटारी की छतों का काँपने के कारण, ध्वजा का, पंख पटपटाने से और कोमल निद्रात्याग के पश्चात् के शब्द से हंसों का और भौंरे के शब्द तथा फैलनेवाली गन्ध से कुमदों का परिचय उस समय होता था।

कैलासायितमद्रिभिर्विटपभिः श्वेतातपात्रायितं
मृत्पङ्केन दधीयितं जलनिधेर्दुग्धायितं वारिभि
मुक्ता हारलतायितं व्रततिभिः शङ्खायितं श्रीफलैः
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ ८ ॥

सब पहाड़ कैलाश के समान होगये, वृक्ष श्वेतछत्र के समान हो गये, कीचड़ दही के समान मालूम पड़ने लगे, समुद्र जल दूध के समान हो गया, लताएँ मुक्ता के समान हो गयी, श्रीफल शङ्ख के समान हो गये और मनुष्य श्वेत द्वीप के मनुष्यों के समान हो गये, जब कि चन्द्रमा का उदय हुआ। अर्थात् चन्द्रोदय से सब वस्तु श्वेत हो गयीं।

दामोदर गुप्त ।

कश्मीर के राजा जयापीड़ के ये मन्त्री थे, इन्होने कुट्टनी — मत नाम की एक पुस्तक लिखी है। कुट्टनीमत को कोई कोई शम्भलीमत भी कहते हैं। दोनों का अर्थ एक ही है। इस ग्रन्थ में कुट्टनियों के हथकण्डों का वर्णन है। यद्यपि इस पुस्तक में अश्लीलता अधिक है तथापि, यह शिक्षा-जनक है, इससे लाभ हो सकता है।

जयापीड़ बड़ेही पण्डित और विद्या प्रेमी राजा थे। इन्होने उस समय के अच्छे अच्छे पण्डितों को अपने दरबार में स्थान दिया था। दामोदर गुप्त को अपना मन्त्री बनाया था। राजतरङ्गिणी में लिखा है

"तं दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम्,
कविं कविं बलिरिव धुर्यं धीसचिवं व्यधात्।

दामोदर गुप्त ने इस ग्रन्थ के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं इसका पता नहीं, यह ग्रन्थ भी काव्यमाला में अधूराही छपा है। सुना जाता है कि काशी के किसी सज्जन के उद्योग से यह ग्रन्थ पूरा भी प्रकाशित हुआ है।

काव्य-प्रकाशकार मम्मटभट्ट ने कुट्टनीमत के श्लोक अपने काव्य प्रकाश में उद्धृत किया है, क्षेमेन्द्र ने भी कवि-कण्ठाभरण में दामोदर गुप्त के श्लोक उद्धृत किये हैं। महा-राज जयापीड़ का समय आठवीं सदी में माना जाता है। इन्होने ७५५ से ७८६ तक कश्मीर का राज्य किया है, दामो-दर गुप्त का भी यही समय मानना चाहिए।

आरोग्यं विद्वत्ता सज्जनमैत्री महाकुले जन्म ।
स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्य्यं विनाप्यर्थैः ॥१॥

आरोग्य विद्वत्ता सज्जन मैत्री उत्तम कुल में जन्म और स्वाधीनता ये मनुष्यों के लिए धन के विना भी बहुत बड़ा ऐश्वर्य हैं ।

एकीभावं गतयोर्जलपयसोर्मित्रचेतसोश्चैव ।
व्यतिरेककृतौ शक्तिर्हंसानां दुर्जनानां च ॥२॥

एक में मिले हुए दूध और जल को तथा मित्रों के चित्तों को अलग अलग कर देने में हंस और दुर्जन ये ही दोनों समर्थ हैं । अर्थात् जिस प्रकार मिले हुए दूध और जल को हंस पृथक् पृथक् कर देते है उसी प्रकार मिले हुए मित्रों के चित्तों को दुर्जन अलग अलग कर देते हैं ।

अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ॥
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला ॥३॥

कपूर हटा लो, हार भी दूर करो, कमलों से क्या होगा, सखि, कमल की डंठियां भी व्यर्थ हैं, इसी प्रकार वह दिनरात कहती है । विरहिणी का अवस्था की दूतीकृत वर्णन ।

निर्विण्णे निर्विण्णा मुदिते मुदिता समाकुलाकुलिते ॥
प्रतिबिम्बसमा कान्ता संक्रुद्धे केवलंभीता ॥४॥

दुःखी होने पर दुःखी, प्रसन्न होने पर प्रसन्न, व्याकुल होने पर व्याकुल, इस प्रकार प्रतिबिम्ब के समान रहो । हां क्रोध करने पर केवल भयभीत होना चाहिये ।

यावद्वाञ्छितसुरतव्यायामसहाविरुद्धसंयोगा ॥
चित्तानुवृत्तिकुशला दुरवस्थामेव जायते जाया ॥५॥

अभीष्ट सुरत के परिश्रम को सहनेवाली विपरीत संयोग करने वाली और चित्त का अनुवर्त्तन करनेवाली, भार्या पुण्यवान को ही प्राप्त होती है।

कुमुदामोदी पवनः पिककूजितभृङ्गसार्थैरसितानि।
इयमिति सामग्री घटिता दैवेन तद्विनाशाय ॥६॥

कुमुद की गन्धवाली हवा, पिक का गुंजार और भ्रमर का झंकार ये सब सामग्रियां भाग्य ने उसके नाश के लिए बनायी हैं।

स कथं न स्पृहणीयो विषयरतैस्तन्नितम्बविन्यासः।
शान्तात्मनापि विहितं विश्वसृजा गौरवं यत्र ॥७॥

उसके नितम्ब की रचना विषयी मनुष्यों के लिए स्पृहणीय क्यों न होगी। जिसकी गुरुता शान्तचित्त स्वयं ब्रह्मा ने ही बढ़ायी है।

जीवन्नेव मृतोसौ यस्य जनो वीक्ष्य वदनमन्योन्यम्।
कृतमुखभङ्गो दूरात्करोति निर्देशमङ्गुल्या ॥८॥

वह मनुष्य जीता ही मृतक के समान है जिसको देखकर लोग आपस में मुंह विचका कर दूर से ही अंगुली बताते हैं।

उपयुक्तखदिरवीटकजनिताधररागभङ्गभयात्।
कुलटा वाटक निकटे तृष्यन्त्यपि वारि नो पिवति ॥९॥

उत्तम खैर के बीड़े से बनी हुई ओठ की ललाई नष्ट हो जायगी, इस भय से वेश्या प्याऊ के पास प्यासे रहने पर भी जल नहीं पीती है।

अविदग्धःश्रमकठिनो दुर्लभयोषिद्युवा विप्रः।
अपमृत्युरपक्रान्तः कामिन्याजेन मे रात्रौ ॥१०॥

वह ब्राह्मण युवा—जिसके लिए स्त्री दुर्लभ है, जो मूर्ख है कठिन कामी है—वह कामी के रूप में मेरी अपमृत्यु ही आयी थी, जो टल गयी, एक वेश्या रात की बात अपनी साथिन से कहती है।

पर्यङ्कः स्वास्तरणः पतिरनुकूलो मनोहरं सदनम्।
नार्हति लक्षांशमपि त्वरितक्षणचौर्यसुरतस्य ॥११॥

पलंग, उत्तम बिछौना, अनुकूल पति, मनोहर घर ये सब चौर्य सुरत के लाखवें हिस्से के भी बराबर नहीं है।

एष विशेषः स्पष्टो वह्नेश्च त्वत्प्रतापवह्नेश्च।
अङ्कुरति तेन दग्धं दग्धस्यानेन न्तेङ्कवो भूयः ॥१२॥

अग्नि और तुम्हारी प्रतापग्नि इनमें यही साफ साफ भेद है कि उस अग्नि से जलाया हुआ पुनः अङ्कुरित होता है, पर इस अग्नि के द्वारा जलाया हुआ कभी अङ्कुरित नहीं होता।

ददतो वाञ्छितमर्थं सदनुरक्त तव गृहं त्यक्त्वा।
स्त्रीचापलेन कीर्तिर्नग्नासक्ता गता कुकुभः ॥१३॥

आप वाञ्छित अर्थ देते हैं और उसमें अनुरक्त भी हैं तथापि आपका घर छोड़कर आपकी कीर्ति स्त्रीचापल्य वश नङ्गी दिशाओं में चली गयी।

अटता पृथिवीमखिलामिदमाश्चर्यं मया दृष्टम्।
धनदोपि नयननन्दन परिहरसि यदुग्रसं वर्कम् ॥१४॥

हे नयननन्दन, समूची पृथ्वी घूमते हुए मैंने यही आश्चर्य देखा, आप धन देते हैं पर उग्रता का दूर से ही त्याग करते हैं।

इदमपरमद्भुततमं युवतिसहस्त्रैर्विलुप्यमानस्य ।
वृद्धिर्भवति न हानिर्यत्तव सौभाग्यकोषस्य ॥१५॥

यह और भी आश्चर्य है कि आपके सौभाग्य खजाने को हजारों स्त्रियां लूटती हैं, तथापि उसकी वृद्धि ही होती है हानि नहीं।

प्रकृतिलघोर्येन कृता जघन्यवर्णस्य गौरवापत्तिः ।
जघनचपला यदार्या स पिंगलस्ते कथं तुल्यः ॥१६॥

स्वभाव से लघु नीच वर्ण को आपने गौरव दिया, बड़ा बनाया, आर्या को जघन चपला बनाने वाला पिंगल आपकी बराबरी कैसे कर सकता है।

दिवाकर ।

इनका पूरा नाम मातङ्ग दिवाकर है। मातङ्ग चाण्डाल जाति को कहते हैं। दिवाकर भी चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुए थे। इस कारण लोग इन्हें मातङ्ग दिवाकर कहते हैं। राजशेखर ने इनके विषय में लिखा है—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः
श्री हर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ।

सरस्वती का प्रभाव आश्चर्य है, उन्हींके प्रभाव के कारण मातङ्गदिवाकर श्रीहर्ष की सभा का पण्डित हुआ और बाण तथा मयूर के समान उसे सम्मान मिला।

दिवाकर ने कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं, इसका पता नहीं। सुभाषित ग्रन्थों में इनके बनाये श्लोक उद्धृत हैं, वही

कुछ श्लोक चुन कर पाठकों की सेवा में अर्पित किये जाते हैं। ये श्लोक ही दिवाकर की योग्यता बतलावेंगे, दिवाकर किस प्रकार की कविता करते थे इसके विषय में इन श्लोकों से बढ़कर दूसरा प्रमाण नहीं।

पातु वो मेदिनीदोलावालेन्दुद्युतितस्करी।
दंष्ट्रा महावराहस्य पातलगृहदीपिका॥ १॥

वालेन्दु के समान शोभनेवाली महावराह की दंष्ट्रा आपकी रक्षा करे, जो पृथ्वी के लिए दोला है और पाताल-रूपी घर की दीपिका।

याते शमं रजसि जातजलाभिषेका
धौताम्बराः स्फुरितपाण्डुपयोधरान्ताः।
पत्युः प्रजार्थमधुना तव पुष्पवत्यो
वांछन्ति संगममिमाः ककुभश्चतस्रः॥ २॥

रज (धूलि या स्त्री का मासिक) शान्त होगया, जल का अभिषेक होगया, (अम्बर) आकाश या वस्त्र, स्वच्छ हो गया, पीला पयोधर (स्तन या मेघ) प्रकाशित हुआ, ऐसी दशा में ये चारों दिशाएँ प्रजा के लिए (पुत्रोत्पत्ति के लिए या प्रजा के कल्याण के लिए, आप का संगम चाहती है, क्यों कि आप इनके पति हैं।

किं वृत्तान्तैपरगृहगतैः किंतु नाहं समर्थ
स्तूष्णींस्थातुं प्रकृतिमुखरो दाक्षिणात्यस्वभावः।
गेहे गेहे विपणिषु तथा चत्वरे पानगोष्ठ्या
मुन्मत्तेव भ्रमतिभवतो वल्लभा हन्त कीर्तिः॥ ३॥

दूसरे के घर की बातों से कोई मतलब नहीं, पर मैं चुप नहीं रह सकता, दक्षिण वासियों का स्वभाव ही अधिक

बोलने का होता है, आप की प्यारी कीर्ति घर घर बाज़ार बाज़र चौतरों पर और अड्डों पर उन्मत्त के समान घूम रही है ।

अनिःसरन्तीमपि गेहगर्भात्कीर्तिं परेषामसतीं वदन्ति ।
स्वैरं चरन्तीमपि च त्रिलोक्यां त्वत्कीर्तिमाहुः कवयः सतीं तु ॥४॥

घर के बाहर न निकलनेवाली दूसरों की कीर्ति असती ही जाती है, पर आपकी कीर्ति इच्छा पूर्वक त्रिलोक में विचरण करती है और कवि लोग उसे सती कहते हैं ।

आसीन्नाथ पितामही तव मही माता ततोऽनन्तरं
संप्रत्येवहि साम्बुराशिरसना जाया जयोद्भूतये ।
पूर्णे वर्षशते भविष्यति पुनः सैवानवद्या स्नुषा
युक्तं नाम समस्तशास्त्रविदुषां लोकेश्वराणामिदम् ॥५॥

नाथ, यह पृथवी आप की पितामही थी पुनः माता हुई, इस समय यह जय के लिए समुद्र से वेष्ठित आपकी स्त्री है, सौ वर्ष के बाद वही आप की पतोहू होगी, सब शास्त्रों के जाननेवाले आप के समान लोकेश्वर के लिए क्या यह उचित है ।

धनञ्जय ।

ये जैन कवि हैं, इन्होंने द्विसन्धान नामक महाकाव्य लिखा है, द्विसन्धान को राघवपाण्डवीय भी कहते हैं । इसमें रामकथा और पाण्डवकथा दोनों एक साथ ही लिखी गयी हैं । इसके अतिरिक्त राघव पाण्डवीय नामक एक दूसरा भी काव्य है, जिसके कर्ता कविराज नाम के कवि हैं । धनञ्जय ने एक निघण्टु भी लिखा है । ये मुंजराज के सभासद थे ।

सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का एक श्लोक लिखा है जिसमें धनञ्जय की स्तुति की गयी है ।

द्विसन्धाने निपुणतां सतां चक्रे धनञ्जयः
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः

इनका समय नवीं सदी बतलाया जाता है, दशरूपक नाम के लक्षण ग्रन्थ के कर्ता भी धनञ्जय बतलाये जाते हैं, कुछ लोग कहते हैं कि वे धनञ्जय इस धनञ्जय से भिन्न हैं, पर जैन परम्परा से यह बात मालूम होती है कि दशरूपक के कर्ता भी ये ही, धनञ्जय हैं। इस प्रकार इन्होंने तीन ग्रन्थ बनाये हैं । १ द्विसन्धानमहाकाव्य, २ निघण्टु ३ इदशरूपक । इनके अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं कि नहीं इसका पता नहीं ।

इनकी माता का नाम श्रीदेवी, पिता का नाम वासुदेव और गुरु का नाम दशरथ था, यह बात इन्होंने अपने ग्रन्थ द्विसन्धानकाव्य के अन्त के एक श्लोक में इशारे से बतलायी है ।

अथ कदा नु वशा नु परासुता पुरमुपेत्य सदुर्जनकस्य वा ।
क्रियत इत्ययमाकुलमानसः प्रभुरवोचत वीक्ष्य पयोनिधिम् ॥ १ ॥

रावण अपनी निवास नगरी में पहुँच कर सब स्त्रियों में श्रेष्ठ यह जनक की सुता कब हमारे वश में होगी इस प्रकार आकुल मन होकर और समुद्र को देखकर बोला (युधिष्ठिर पक्ष) युधिष्ठिर हस्तिापुर पहुँचकर दुर्योधन की मृत्यु कब हमारे वश में होगी इस प्रकार आकुल मन होकर और समुद्र को देखकर बोले ।

अयमगाधगभीरगुरुगुणैरुपगतो नियतावधिराद्र्ताम्
यतिरिवाखिलसत्त्वहितव्रतो जलनिधिः सकलैरवलोक्यताम् ॥ २ ॥

यह समुद्र अगाध, गम्भीर और विशाल है। यह अपने गुणों के कारण आर्द्र है। इसकी सीमा निश्चित नहीं है। यह समस्त प्राणियों का हित करता है। यह यति के समान मालूम होता है। यति का गाम्भीर्य अगाध है, वह सबका गुरु है। वह दयालु है, गुणों के द्वारा उसकी मर्यादा निश्चित है। उसको सब लोग देखें।

असतुरां सुतरां स्थितिमुन्नतामसुमतां सुमतां महतां वहन्
उरुचितै रुचितैर्मणिराशिभिः स्वरुचितैरचितैरवभात्ययम् ॥ ३ ॥

तरन के अयोग्य उन्नत, सत्पुरुषों और प्राणियों की इष्टस्थिति को स्वभाव से धारण करने वाला, यह समुद्र ऊंचे सजाये हुए दीप्तिमान और राजाओं के योग्य मणि समूहों से अपनी स्वाभाविक शोभा धारण करता है।

अनिधनेन रसातलवासिना विगलितो निबिडं वडवाग्निना।
इह मुहुः शफरीपरिलङ्घनव्यति करा कथतीव सरित्पतिः ॥ ४ ॥

रसातलवासी अविनश्वर वड़वाग्नि के द्वारा यह समुद्र पिघलाया गया है और यह चुराया जाता है, यह बात बीच बीच में मछलियों के कूदने से मालूम होती है।

कल्लोलाः सपदि समुद्धता मरुद्भिर्गण्डूषा इव करियादसां विभान्ति
और्वाग्निज्वलनशिखाकलापशङ्का मेतस्मिन्विदधति पद्म रागभासः ॥ ५ ॥

वायु के द्वारा उठायी गयी तरंगे जल हस्तियों के कुल्ला के समान मालूम पड़ती हैं इसमें कमल की लालिमा बड़वानल अग्नि की ज्वालाओं की भ्रान्ति पैदा करती है।

भान्त्येतस्मिन्मखिकृतरङ्गाभोगस्त्व त्सा रुच्यान्निहततरङ्गाभोगा ।
क्रीड़ास्थानैरुचिरमही नामूचैरु द्वान्तानां सुचिरमहीनासुच्चैः ॥ ६ ॥

इस प्रदेश में रुचिर पृथ्वी के बहुत दिनों तक उगले हुए सर्पों की मणि के द्वारा रंजित टूटी हुई लहरियां बहुत शोभती हैं ।

भपातु' जलमिदमिन्द्रनीलजालव्याजेन व्यवत्तरतीव मेघजालम् ।
वक्षोभिः करीमकरैर्विभिन्नमम्भो यात्युद्यन्मणिरुचिशक्रचापभावान् ॥७॥

ये मेघों की पंक्तियां इन्द्रनीलमणि के व्याज से जल पीने के लिए उतरी हुई सी मालूम पड़ती हैं । हाथी और मगर के वक्षस्थल से टूटा हुआ और मणि की शोभा को प्रकाशित करने वाला जल इन्द्रधनुष के समान मालूम पड़ता है ।

एतान्प्रवालविटपान्स्वतटीभिरूढ़ारूढ़ान्निषिञ्चति हतैरुदधिस्तरङ्गैः ।
रङ्गै रिहाम्बुकरिणां निकटे वसन्तं सन्तं न सत्वसहिता ह्यवधीरयन्ति ॥८॥

समुद्र अपने तटों से लाये गये और अपने तटों पर (शृंखला) उत्पन्न हुए इन मूंगों के वृक्षोंको जल हस्ती के गमन से आहत तरंगों के द्वारा मानों सींच रहा है । समर्थ-वान् मनुष्य पास रहने वालों का निरादर नहीं करते ।

अध्यासीना निश्चला निस्तरङ्गानेतानेतानीलनीलान्प्रदेशान् ।
नीलाभ्राणां शङ्कया किं बलाका न्ते शङ्खानां पङ्क्तयस्ता विभान्ति ॥९॥

ये शङ्खों की पंक्तिया नहीं मालूम होती हैं, किन्तु इस तरंग रहित नीले प्रदेश में नील आकाश की शङ्का से बैठी हुई निश्चल बलाका (बक पंक्ति) मालूम होती है ।

गोखुराहत इवाप्यसेकृतो वर्तिकी भिरिव वर्तितोऽन्यतः ।
मेघविभ्रम इवाम्बुधिः क्वचित्संकुलः स कुलपर्वतैरिव ॥ १० ॥

यह समुद्र एक ओर गौ के खुर से आहत के समान मालूम होता है दूसरी ओर चित्र लेखिकाओं के द्वारा चित्रित मालूम होता है, कहीं मेघों के उत्पन्न होने का सन्देह होता है और कहीं कुल पर्वतों से सकुचा हुआ मालूम पड़ता है ।

इयुक्तानामुदधिमहत्वस्तुत्या युक्त्यैतस्मिन्ननुगुणभारत्यागः ।
स्थाने स्थाने भवित कवीनां कुर्वन्त्युक्त्यै तस्मिन्ननुगुणभारत्यागः ॥११॥

समुद्र के महत्व की स्तुति में युक्ति पूर्वक उद्यत हुए कवियों की उक्ति में स्थान स्थान पर दोष हो जाते हैं । वे दोष शास्त्रीय ज्ञान के भार के त्याग से होते हैं ।

किं मर्यादामेष जलात्मा परिवारो लोलो भिन्द्यादित्युपपश्यन्निव कूलम् ।
गत्वा गत्वावृत्ति मुदन्वान्भजतेऽयं न प्रत्येति स्वाम्यनुवर्गं प्रतिकूलम् ॥१२॥

यह जड़ा (ला) त्मा समुद्र चंचल है, कहीं मर्यादा को तोड़ न दे यह देखने के लिए बार बार तीर पर जाता है और लौट आता है । प्रतिकूल चलने वाले अनुचर का विश्वास स्वामी नहीं करता ।

वेगोऽत्येति प्रतिदिशमापूर्णाना-
मालोकान्तं हिमकर विध्वस्तानाम् ।
वैलोद्भयानं प्रतिदिशमस्मिन्नेषा
मालोकान्तं हिमकरविध्वस्तानाम् ॥ १३ ॥

प्रत्येक दिशा में फैली हुई, चन्द्रमा के लिए फेंकी गयी और मगरों के द्वारा तोड़ी गये इन तरंगों का वेग प्रत्येक रात्रि में सूर्योदय तक आंखों से दिखायी नहीं पड़ता ।

पद्मगुप्त ।

महाकवि परिमल का दूसरा नाम पद्मगुप्त था। कोई इनको अभिनव कालिदास भी कहते हैं। इनके पिता का नाम मृगाङ्कदत्त था, ये धारा नगरी के महाराज भोजराज के चाचा वाक्-पति राजदेव के सभापण्डित थे। वाक्पति राजदेव की मृत्यु के पश्चात् जब भोजराज के पिता सिन्धुराज धारानगरी के राजा हुए, तब ये उनके साथ रहने लगे। सिन्धुराज का दूसरा नाम कुमारनारायण था और "नवसाहसाङ्क" इनकी उपाधि थी। महाकवि परिमल ने इन्हीं अपने आश्रयदाता महाराज के नाम से नवसाहसाङ्क चरित नाम का एक काव्य बनाया है, जिसमें उन्हीं का वर्णन है। नवसहसाङ्क चरित पढ़ने वाले जानते हैं कि ये कितने सरस और स्वाभाविक कवि थे। ये ११ वीं सदी में उत्पन्न हुए थे। संग्रह ग्रन्थों में इनके कई श्लोक ऐसे पाये जाते हैं जो नवसाहसाङ्क चरित में नहीं हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि नवसाहसाङ्क चरित के अतिरिक्त और भी कोई काव्य इन्होंने बनाया होगा। पर आज केवल नवसाहसाङ्क चरित ही पाया जाता है। नवसाहसाङ्क चरित के चौथे सर्ग से कतिपय श्लोक के नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

ततः स चेतस्यवनीपतिर्दधे शशिप्रभालोकमहोत्सवस्पृहाम्,
उपोढरागाम्बुधेस्तटोदरे नवोद्गतां विद्रुमकन्दलीमिव ॥१॥

तदनन्तर राजा ने अपने चित्त में शशिप्रभा को देखने की इच्छा की, शशिप्रभा को देखना राजा के लिए एक महोत्सव था। जिस प्रकार समुद्र अपने तीर पर नयी निकली हुई मूगों

को कन्दली के लिए स्पृहा करता है। वह कन्दली अनुराग वती अथवा लाल रङ्ग की होती है।

शशिप्रभाशा नलिनी मृणलतामुपागते मौक्तिकदाम्नि सादरः
तदागते दूत इव न्यवेशयत्सदर्शितप्रेमलवे विलोचने ॥२॥

राजा की आशा शशिप्रभा पर लगी थी, उस आशारूपी कमिलिनी का मृणाल बनकर वह मोतियों का हार राजा को मिला था, राजा उसको बड़े आदर से देखता था, राजा उसकी ओर प्रेमपूर्ण आंखों से देखता था, मानो वह अपनी प्रिया के यहां से आये दूत को देख रहा हो।

पुनः पुनः षट्पदराजिमेचकां तदिन्द्रनीलाक्षरपंक्तिमैक्षत ।
स तत्क्षणान्मन्मथजातवेदसस्तनीयसीं धूमलतामिवोद्गताम् ॥ ३ ॥

वह बार बार नीलम की अक्षरपंक्तिको—जो भ्रमर के समान काली थी, देखने लगा, मानो वह कामदेवरूपी अग्नि से पतली धूम की रेखा निकली हो।

सुगन्धिहारादनुलेपनं करे समुन्मिषत्स्वेदलवे विलुम्पति ।
असंगताया अपिदीर्घचक्षुपः पयोधरस्पर्शमिवाससाद सः ॥ ४ ॥

राजा वह हार अपने हाथ में लिये हुए था, उसके हाथ के पसीना लगने से हार का अनुलेपन राजा के हाथ में लगता था। यद्यपि बड़ीआँखवाली शशिप्रभा राजा के पास नहीं थी। तथापि राजा को उसके पयोधरस्पर्श के समान आनन्द मिला।

तदीयनामाङ्कलिपिं शनैः शनैः सलीलमावर्तयितुं प्रचक्रमे ।
परिस्फुरत्पल्लवपाटलाधरो रहस्यविद्यामिव मन्मथस्य सः ॥ ५ ॥

उसके नाम के अक्षर बड़े प्रेम से राजा धीरे धीरे मन ही मन उच्चारण करने लगा। राजा के पल्लव के समान लाल ओष्ठ उस समय फरक रहे थे। मानो राजा कामदेव के रहस्य विद्या का जप कर रहा हो।

अनेकरूपालिखनप्रगल्भया सुतीक्ष्णया वर्तिकयेव चिन्तया ।
स तामनाप्तेक्षणसंस्तवां पुरा लिलेख चित्ते मुहुरन्यथान्यथा ॥ ६ ॥

चिन्ता चित्र बनाने की एक क़लम है, वह अनेक प्रकार के चित्र बनाने में बड़ी चतुर है। उसी चिन्तारूपी क़लम से अपने हृदय में बिना देखी और बिना परिचय पायी हुई उस स्त्री का राजा ने अनेक प्रकार के चित्र बनाये।

अनङ्गचण्डातपतप्तयोस्तदा शशिप्रभाविभ्रमदर्शनम्प्रति ।
द्वयोरभूदुत्सुकता वनान्तरे विलासिनस्तस्य च कैरवस्य च ॥ ७ ॥

कामदेव के प्रचण्ड आतप से तपे हुए उस विलासी राजा को वन में शशिप्रभा को देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई। जैसे कुमुदिनी को सूर्य के आतप से तपने पर जल में शशिप्रभा—चन्द्रमा के प्रकाश—को देखने की उत्कण्ठा होती है।

उदग्रदिग्वारणहस्तहारिणा सदक्षिणेन स्फुरता च बाहुना ।
स्थिरीकृताशो मनसापि दुर्लभामदुर्लभामिन्दुमुखीममन्यत ॥ ८ ॥

इसी समय राजा का दक्षिणबाहु फरका, जो विशाल दिग्गज के समान सुन्दर था। इस बाहु के फरकने से राजा की आशा और भी दृढ़ हुई। जो इन्दुमुखी मन से भी दुर्लभ है उसे राजा ने अदुर्लभ समझा।

पुरो विमुञ्चन्नयने यदृच्छया नृपस्तमालद्रुमकाननोदरे ।
अपश्यदत्रावसरे विलासिनीं पयोदमध्ये शशिनः कलामिव ॥ ९ ॥

राजा ने अपने सामने आगे की ओर तमाल वन में दृष्टि डाली, उसी वन में उन्होंने एक स्त्री को देखा, जो मेघ में चन्द्रमा की कला के समान शोभित होती थी।

विभग्नचूर्णालकभक्तिकुर्वती विकीर्णचूड़ामणिचन्द्रिकं शिरः।
अथानुभावेन निदेशितेव सा ननाम मानिन्यवशा विशाम्पतिम् ॥१०॥

उसने राजा के प्रभाव की आज्ञा से परवश होकर राजा को प्रणाम किया। उसने अपने बिखरे हुए बालों को पहले ठीक किया, उसके मस्तक पर चूड़ामणि की शोभा फैल रही थी, ऐसी उस स्त्री ने राजा को प्रणाम किया।

दृशा नरेन्द्रेण निदेशिते स्वयं शिलातले नातिविदूरवर्तिनि।
उपाविशत्सा रशनामणित्विषा निपिच्यमानेऽमरचापशोभिनि ॥ ११ ॥

राजा ने आंखों के इशारे से अपने पासवाली एक शिला बतला दी, उसी पर वह बैठ गयी, उसकी करधनी की मणियों की छाया पड़ने से वह शिला इन्द्रधनु के समान हो गयी थी।

तयातिदीर्घैर्दशनांशुपातिभिर्विकृष्यमाणामिव भूषणांशुभिः।
इति क्षितीशेङ्गितवर्त्मदीपिकामुदीरयामास गिरं रमाङ्गदः ॥ १२ ॥

राजा के इङ्गित पाकर रमाङ्गद ने कहा, रमाङ्गद के वे वचन मानो उस स्त्री के भूषणों की प्रभा से खींचे गये हों, क्योंकि वह भूषणप्रभा रमाङ्गद के दांतों की प्रभा से मिल गयी थी।

अनेन विन्ध्याद्रिविहारजन्मना श्रमेण कामं भवती कदर्थिता।
प्रसुप्तजूटाहिमुखानिलोष्मणा जटाविटङ्केन्दुकलेव शूलिनः ॥ १३ ॥

इस विन्ध्य पर्वत में भ्रमण करने के कारण आप बहुत थक गयी हैं, जिस प्रकार शिव के मस्तक पर सोये हुए सूर्य की गर्म वाष्प से चन्द्रमा की कला मुरझा जाती है।

अमी सरोजप्रतिमे मुखे मुहुस्तवातपाताभ्रकपोलभित्तिनि ।
समुन्मिषन्तिश्रम वारिबिन्दवो नताङ्गि लावण्यसुधालवा इव ॥१४॥

हे कोमलाङ्गि ! तुम्हारा यह कमल के समान मुख धूप लगने से लाल हो गया है, इसपर पसीने के बूंद अमृत बिन्दु के समान मालूम होते हैं ।

इतोऽवतंसोत्पललास्यदेशिके निरन्तरं गन्धवहे वहत्यपि ।
न घूर्णते स्विन्नललाटसङ्गिना तवालकश्रेणिरियं मनागपि ॥१५॥

इधर तुम्हारे कर्णफूलों को नाचना सिखाने वाला वायु वह रहा है, पर पसीने के साथ तुम्हारे ललाट पर सटे हुए तुम्हारे बाल कुछ भी चञ्चल नहीं होते ।

अनेन पीनस्तनकम्पादायिना निराय तेनोद्वहता कदुष्णताम् ।
अयं प्रवालादपि पाटलच्छ विर्नद्व्यते निश्वसितेनतेऽधरः ॥१६॥

यह तुम्हारे पीनस्तन को कंपाने वाली और लम्बी गरम गरम सांस निकल रही है, इस सांस से मूंगे से भी लाल तुम्हारा यह ओष्ठ क्या कष्ट नहीं पाता ?

उदित्यपंक्तया श्रमवारि विप्रुषा निरन्तराध्यासित रेखयाजया ।
तवैष कण्ठः कुटजावदातया विलासमुक्तालतयेव भूष्यते ॥१७॥

पसीने के बूंदों की पंक्तियाँ जो रेखा के समान लगातार उदित हुई हैं, मालुम होता है कि कुटज पुष्प के समान स्वच्छ मोतियों की माला है और उस माला से तुम्हारा यह कण्ठ भूषित हो रहा है ।

इदं महचित्र ममानुषं त्वया विगाधृते यद्वन मद्वितीयया ।
इमा कः न्ध्यिस्पभुवोति दुर्गमाः क्व राजवेश्याभरणं भवादृशी ॥१८॥

यह तो और आश्चर्य की बात है कि इस मनुष्यहीन वन में तुम अकेली यात्रा कर रही हो, कहां ये विन्ध्याचल के दुर्गम प्रदेश और राजमहलों के आभरण कहां तुम।

नवोद्गताशोकपलाशकान्तिना निकामनिर्यन्नखचन्द्रिकेण च।
बिभार्षि कस्येदमनेन पाणिना वदावधूतेन्दुमरीचि चामरम् ॥१९॥

नये अशोक पल्लव के समान और जिसके नखों से प्रकाश फैल रहा है उस हाथ से चन्द्रमा की किरणों को भी नीचा दिखाने वाला यह किसका चामर धारण करती हो कहो।

नृपस्य कस्यापि परिच्छदाङ्गना यदित्वमुच्चैर्विभवो हि कोपि सः।
मरुत्पतिर्मेनकयेव तन्वि यस्त्वयापि वालव्यजनेन बीज्यते ॥ २० ॥

यदि तुम किसी राजा की परिचारिका हो तो वह समृद्धिमान कौन है, जो मेनका द्वारा इन्द्र के समान तुम्हारे द्वारा चमर से वीजित होता है।

अथर्धिमत्या परवत्यसि स्त्रिया कयापि कासौ जगदेकसुन्दरी।
नतभ्रु यस्याः स्मरचाप यष्टयो विधेयतां यान्ति भवद्विधा अपि ॥२१॥

यदि तुम किसी स्त्री के अधी॰ हो तो बतलाओ सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी वह कौन है? जिसकी आज्ञाकारिणी कामदेव के धनुषरूप तुम्हारी समान स्त्रियाँ हैं।

परस्परस्पर्धिविलाससम्पदा त्रयं भवत्स्वामितया वि कल्प्यते।
मरुत्वतो वा रमणी रमाथवा कलत्रमर्द्धेन्दुविभूषणस्थ वा ॥२२॥

इन्हीं तीनों की परस्पर में विलास संपत्ति की स्पर्द्धा हो सकती है और इन्हीं तीनों में एक तुम्हारा स्वामी भी हो सकता है, इन्द्र की स्त्री अथवा लक्ष्मी या महादेव की स्त्री।

इयं परिश्रान्तिरगेन्द्रकन्दरे सखीव ते शंशति कार्यगौरवम् ।
भवादृशः श्वापददूषितेऽन्यथा चरन्त्यरण्ये किमधीतनीतयः ॥ २३

इन पर्वत की कन्दराओं में तुम्हारा घमना किसी बड़े भारी गुरु कार्य को सूचित करता है, नहीं तो तुम्हारी समान नीति, चतुर स्त्री क्या हिंस्र जन्तुओं से पूर्ण वन में भ्रमण कर सकती है ।

अनेन खेलन्मददन्तिना वद त्वमागता चण्डि कुतो दुरध्वना ।
विधाय विश्लेषविषादमावयोः स्वकार्यनिष्ठे कथय क्व यास्यसि ।२४॥

इस मार्ग में मतवाले हाथी क्रीड़ा करते हैं, यहां इस बुरे मार्ग से तुम कैसे आयी और हम लोग में वियोगरूपी विषाद उत्पन्न कर के अपने कार्य के लिए कहां जाओगी ।

इति साभिहिता मृगायताक्षी समुपोढ़प्रणयं यशोभटेन ।
सहसा न जगाद लज्जया नु श्रमतः किन्तु नृपस्तु तामवोचत् ॥२५॥

वड़े प्रेमपूर्वक रमाङ्गद ने उस स्त्री से ये बातें कहीं पर उसने सहसा कुछ उत्तर नहीं दिया, न मालूम लज्जा के कारण या श्रम के कारण । पर राजा उससे बोले ।

श्रान्तासि कौतुकहृतेन कदर्थिता सि प्रश्नैरनेन विहितो न तवोपचारः ।
आतिथ्यमेष कुरुते परमङ्गलेखासंवाहनैकचतुरो निचुलानिलम्भे ॥२६॥

तुम थक गई हो, कौतुक से वड़ी दूर आनेके कारण व्याकुल होगई हो, इन प्रश्नों से तुम्हारा स्वागत नहीं हुआ । शरीर की थकावट दूर करनेवाला यह निचुल का वायु तुम्हारा आतिथ्य करता है ।

एवं निसर्गमधुरेण सुधारसैकनिष्पन्दिना फणिवधूरथ सा हसन्ती ।
चन्द्रांशुना कुमुदिनीव दिनोष्मतप्ता वीनक्लमा नरपतेर्वचसा बभूव ॥२७॥

स्वभावमधुर सुधारसनिस्यन्दी राजा के वचनों से वह नागवधू हंसने लगी और उसकी थकावट दूर होगयी, जैसे सूर्य की किरणों से तपी हुई कुमुदिनी चन्द्रकिरणों से खिल जाती है।

पण्डित पाजक।

सुभाषित ग्रन्थों में इनके श्लोक पाये जाते हैं, वे सरस और सुन्दर हैं, उनसे इनके शिवभक्त होने का पता लगता है। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ मालूम नहीं।

कथं स दन्तरहितः सूर्यः सूरिभिरुच्यते ।
यो मीनराशिं भुक्त्वैव मेषं भोक्तुं समुद्यतः ॥१॥

पण्डित लोग सूर्य को दन्तहीन क्यों कहते हैं जो सूर्य मीनराशि को भोग कर मेष का भोग करने के लिए उद्यत हुआ है।

क्व क्रीड़ति चरति क्व करोति वृत्तिं वारि क्व नाम पिवतिस्वपिति क्व नाम ।
इत्थं मृगं निरपराधमवाधमानं व्याधीनु धावति वधाय धनुर्दधानः ॥२॥

कहां क्रीड़ा करता है, कहां चरता है, कहाँ अपना जीव विताता है कहां जल पीता है कहाँ सोता है। इस प्रकार निर-पराध किसी को पीड़ा न देनेवाले मृग को मारने के लिए धनुष लेकर व्याध दौड़ता फिरता है।

चन्द्रः सुधांशुरयमत्रिसुतो दिनेशः पुण्यैरवापि शरणाय भयेतितोषम् ।
मुग्धैणशाव भज मा त्यज पापमेनं मीनं प्रभुज्य सहसा कृतमेषभोगम् ॥३॥

यह चन्द्रमा है, यह सुधांश है, यह द्विजराज है, यह अत्रि महर्षि का पुत्र है, बड़े पुण्यों से मैंने इसे शरण के लिए पाया है, हे मूर्ख हरिण बालक, यह प्रसन्नता छोड़ो यह पापी है इसे छोड़ दो, क्यों कि इसने मीन का भोग कर शीघ्रही मेष का भी भोग किया है।

हेमकार सुधिये नमोस्तुते दुस्तरेषु वहुशः परीक्षितुम् ।
काञ्चनाभरणमश्मना समं यत्त्वयैतदधिरोप्यते तुलाम् ।। ४ ।।

हे बुद्धिमान सुवर्णकार तुमको नमस्कार, तुम परीक्षा करने के लिए सोने के भूषणों को पत्थर के साथ तुला पर चढ़ाते हो।

वृत्त एव स घटोन्धकूप यस्त्वत्प्रसादेमपनेतुमक्षमः ।
मुद्रितं त्वधमचेष्टितं त्वया तन्मुखाम्बुकणिकाः प्रतीच्छता ।। ५ ।।

हे अन्धकूप ! वह घड़ा तो हो ही चुका जो तुम्हारे प्रसाद का बदला नहीं चुका सकता, पर तुमने तो अधम कृत्यों को समाप्त ही कर दिया, जो तुम उस घड़े के मुंह के बिन्दुओं की इच्छा रखते हो।

शतपदी सति पादशते क्षमा यदि न गोष्पदमप्यतिवर्तितुम् ।
किमियता द्विपदस्य हनूमतो जलधिविक्रमणे विवदामहे ।।६।।

सौ पैरों के होने पर भी शतपदी इस (नाम का एक कीड़ा) यदि गोष्पद को भी नहीं डांक सकता, तो हम लोगों को दो पैर वाले हनूमान के समुद्र डांक जाने के विषय में विवाद नहीं करना चाहिए।

न गुरुवेशपरिग्रहशौण्डता न च महागुणसंग्रहणादरः ।
भलविधानकथापि न मार्गणे किमिह लुब्धकबालगृहेऽधुना ।।७।।

हे व्याधतनय, बड़े वंश (वांस या कुल) के ग्रहण करने की प्रवीणता नहीं, बड़े गुणों (धनुष की रस्सी या गुण) के संग्रह करने का आदर भी नहीं है और बाण में फलर (वाण के अग्रभाग में लगी लोहे की कील या फल) लगाने की तो बात ही क्या, फिर इस गृह में क्या है?

तृणमणेर्मनुजस्य च तद्वतः किमुभयेोर्विपुलाशयतोच्यते ।
तनु तृणाग्रलवावयवैर्ययोरवसिते ग्रहणप्रतिपादने ॥८॥

तृणमणि और उसके समान मनुष्यों के विशाल हृदय होने की बात क्या कही जाय, जिन दोनों का दान और ग्रहण तृण के सूक्ष्म अग्रावयव के द्वारा समाप्त होता है। अर्थात् वे मनुष्य तृण-मणि के समान हैं जिनमें दान देने और ग्रहण करने की शक्ति नहीं।

भ्रातः सुवर्णमयरूपकतारचित्रालंकारयत्नघटनासु सुवर्णकार।
दूरी कुरुश्रम सिहाघसुवर्णपात्रे दुर्वर्णं योजयितु रस्ति महार्घलाभः ॥९॥

भाई सुवर्णकार! सुवर्ण के उत्तम अलङ्कारों के बनाने का तथा पच्चीकारी आदि का काम करना छोड़ दो इसमें परिश्रम न करो, क्योंकि यहां तो उसी को लाभ होता है जो सुवर्ण-पात्र में दुर्वण (चाँदी या बुरा रंग) जोड़ता है। अर्थात् यह स्थान गुणियों के आदर का नहीं, यहां तो उसी गुणी का आदर होता है जो खुशामद करे।

निर्नाश्याम्बरसीम्नि सूर्यशशभृत्तारा: पदप्राप्तये
मेघो घोररवः पदाधिगमने दान प्रवृत्तस्ततः ॥
पश्चात्तापवशा-दिवाम्बु तनुते सूर्यं तड़िद्रोचिषा
चन्द्रं वालबलाकया करकया ताराः समं सर्वतः ॥ १०

आकाश में सूर्य चन्द्रमा और तारा इनका पद ग्रहण करने के लिए घोर हुङ्कार करनेवाले मेघ ने इनका नाश किया, जब इनका पद प्राप्त हो गया तब वह दान करने लगा, अर्थात् वृष्टि करने लगा, पुनः क्रोधवश उसने शीघ्रही विद्युत् के प्रकाश से सूर्य बनाया, बंगलों के समूह से चन्द्रमा और करका—आकाश से गिरनेवाले पत्थरों द्वारा उन्होंने तारा बनाकर चारों ओर फैलाया ।

इन्दुं तण्डुलखण्डमण्डलरुचिं नित्योदितं जातु चि-
दुदर्शे मेघघरट्टघट्टनगल द्दहं विधत्ते विधिः ॥
नूनं लोकहितेच्छया किरति यत्संतर्पणं सर्वतः
शुभ्रादभ्रविशिष्टपिष्टरुचिरं भूमौ तुषारं दिवः ॥ ११ ॥

चन्द्रमा गोलाकार चावल की राशि के समान है, वह प्रतिदिन उदय होता है, किसी अमावास्या के दिन ब्रह्मा ने मेघरूपी जाता में पीस कर उसे चूर चूर कर दिया, मालूम होता है लोक कल्याण की इच्छा से सबको तृप्त करने वाले उसी चूर्ण को ब्रह्मा आकाश से तुषार के रूप में गिरा रहा है, जो स्वच्छ आटे के समान है ।

राजन्यद्यपि ते बाहू कान्तालिङ्गनलालसौ
तथापि समरे भेत्तुं शक्तौ हस्तिकवाटयोः ॥ १२ ॥

हे राजन् यद्यपि तुम्हारे बाहु स्त्रियों को आलिङ्गन करने के लिए उत्कण्ठित रहते हैं, तथापि युद्ध में वे हाथी और फाटकों को तोड़ने में समर्थ हैं । "शक्तौ हस्तिक वाटयोः" यह एक पाणिनि का सूत्र है ।

अगम्यागमनात्प्रायः प्रायश्चित्तयिते जनः ॥
अगम्य - वचशो याति सर्वत्रैव च पावनम् ॥ १३ ॥

न जाने योग्य स्थानों में जाने से प्रायः मनुष्य पापी हो जाते हैं, उनके लिए प्रायश्चित्त करना आवश्यक होजाता है, पर तुम्हारा यश अगम्य है (वह दूसरों को नहीं मिल सकता) फिर भी वह पवित्र समझा जाता है और वह सर्वत्र शोभित हो रहा है।

यशसस्तव सौजन्यमहो विस्मयकारकम् ॥
आत्मवच्छुक्लतां नीतमयशो विद्विषामपि ॥ १४ ॥

तुम्हारे यश की सुजनता देख कर आश्चर्य होता है, क्योंकि शत्रुओं के कलङ्क को भी उसने अपने समान शुक्ल बना दिया है।

गुणवत्त्वे समानेपि भेदोयं युवयोर्महान् ॥
धनुर्याति गुणच्छेदमविच्छेदगुणो भवान् ॥ १५ ॥

धनुष और आप दोनों ही गुणी हैं, (गुणवान् या रस्सी-वाला) गुणी होना दोनों का बराबर है, पर धनुष का गुण (रस्सी) टूट जाता है और आप का गुण कभी नहीं टूटता।

किं करोतु गुणैघस्ते शरावपुटदीपवत् ॥
वसुधाम्बरपर्यन्तं विनिवारितगोचरः ॥ १६ ॥

परई के सम्पुट में रखे हुए दीप के समान तुम्हारे ये गुण समूह क्या करें, क्योंकि पृथिवी और आकाश के बीच में इनकी गति रोक दी गयी है, अर्थात् तुम्हारे गुण समस्त पृथिवी में फैले हैं।

संधिविग्रहकालज्ञः कृतकृत्योपि पाणिनिः ॥
परप्रत्ययकारीति भवता नोपमीयते ॥ १७ ॥

पाणिनि सन्धि विग्रह और काल (व्याकरण की सन्धि, समास आदि का विग्रह, वर्तमान आदि काल) जानते हैं और आप भी इनको (सुलह, और विरोधका समय) जानते हैं । पाणिनि ने कृत्यप्रत्यय किया है और आप भी कृत-कृत्यहैं, पर पाणिनि प्रत्यय को प्रकृति से परे करते हैं पर आप प्रत्ययकारी (दूसरे का विश्वास करनेवाले) नहीं हैं इससे आपसे उनकी तुलना नहीं हो सकती ।

> उपसर्गाः क्रियायोगे पाणिनेरिति सम्मतम् ॥
> निष्क्रियोपि तवारातिः सोपसर्गः सदा कथम् ॥ १८ ॥

पाणिनि कहते हैं कि क्रिया (व्याकरण की क्रिया) के योग में उपसर्ग होते हैं (अव्यय विशेष) पर तुम्हारे शत्रु निष्क्रिय हैं, राज्यच्युत होने से उन्हें कोई काम नहीं, फिर भी उन्हें सदा उपसर्ग (उपद्रव) लगे रहते हैं ।

> तव शत्रुर्भवांश्चैव द्वयं व्याकरणायते ॥
> स निपातोपसर्गाभ्यां त्वं गुणागमवृद्धिभिः ॥ १९ ॥

आपके शत्रु और आप दोनों ही व्याकरण के समान हैं, आपके शत्रु तो निपात और उपसर्ग से (नाश और उपद्रव से) और आप आगम और वृद्धि से (आय और उन्नति से) घिरे हैं । निपात उपसर्ग आगम और वृद्धि ये व्याकरण के पारिभाषिक शब्द हैं ।

> असत्कविप्रणीतानां श्लोकानामिव ते द्विषाम् ॥
> क्लिष्टार्थसंधिवृत्तीनां निपाताः स्युः पदे पदे ॥ २० ॥

कुकवि के बनाये श्लोकों के समान तुम्हारे शत्रुओं का— जिनके अर्थ (धन या शब्दार्थ) सन्धि (व्याकरण की सन्धि

या सुलह) और वृत्ति में (जीविका या समास) कठिनता उत्पन्न हो गयी है उनका प्रत्येक पद में निपात हो (नाश या च वै आदि निपात)

यदस्ति तद्ददासीति नैतच्चित्रमवैम्यहम् ॥
भयं स्वप्नेपि ते नास्ति दत्तं तद्विद्विषां कथम् ॥२१॥

जो तुम्हारे पास है उसका दान करते हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, पर भय तो तुम्हारे पास स्वप्न में भी नहीं है, फिर तुमने शत्रुओं को भय कैसे दिया।

अकलङ्को दृढः शुद्धः परिवारी गुणान्वितः ॥
सद्वंशो हृदयग्राही खड्गः सुसदृशस्तव ॥२२॥

अकलङ्क दृढ शुद्ध परिवारी (स्वजनोंवाला या म्यान वाला) गुण युक्त शुद्ध वंश में उत्पन्न हृदय ग्रहण करनेवाले खड्ग तुम्हारे समान हैं।

प्रायेण सर्वे पश्यन्ति विपरीतं विनश्वराः।
यत्वं काञ्चनगौरोपि काल एवासि विद्विषाम् ॥२३॥

प्रायः नष्ट होनेवाले, सभी वस्तुओं को विपरीत ही देखा करते हैं, तुम सुवर्ण के समान गौरवर्ण हो, पर शत्रु तुमको काला काल, या मृत्यु ही समझते हैं।

त्वया सह विरुद्धानां कुतः कुशलता कुले ॥
वासोहि नियतस्तेषां वने कुशलताकुले ॥२४॥

तुम्हारे साथ विरोध करनेवालों के कुल में कुशलता कैसी, कुशलता से घिरे वन में ही उनका निश्चित वास होता है।

विरोधात्तव शत्रूणा जातं सौगतदर्शनम् ॥
विग्रहेक्षणभङ्गित्वं सर्वाङ्गेषु च शून्यता ॥२५॥

शत्रुओं से तुम्हारा विरोध होने पर बौद्ध दर्शन की उत्पति हुई, क्योंकि तुम्हारे शत्रु युद्ध में भाग खड़े होते हैं और सर्वाङ्ग शून्य हो जाता है। बौद्ध दर्शन पदार्थों को क्षणभङ्गी मानता है और वाह्य पदार्थों की सत्ता स्वीकार नहीं करता।

लक्ष्मीपङ्ककलङ्किताः परिमितक्ष्माखण्डपिण्डीभुजो
गर्वग्रन्थिविसंस्थुलैरवयवैर्नैपथ्यकन्थाभृतः।
एते कीदृश ईश्वराः कुपतयः किं वनायाचर्चया
यस्त्रैलोक्य विलक्षणः फलतु नः सत्यं स एवेश्वरः ॥२६॥

जिनकी लक्ष्मी पङ्क (पाप) से कलङ्कित है, जो थोड़े नियमित पृथिवी के टुकड़े का भोग करनेवाले हैं, गर्व की गांठों से जिनके अंग ऊवड़खावड़ हो गये हैं और जो गहने आदि वेश धारण करनेवाले हैं ये कैसे ईश्वर हैं, ये कुपति पृथिवीपति या कुस्वामी हैं। अथवा इस चर्चा से लाभ क्या? जो त्रिलोक से विलक्षण है, वह हम पर प्रसन्न रहे, वही ईश्वर है, यह बात सत्य है।

वाराणस्यामसीवारानीवाराशनसुस्थितेः।
नवारामनिपण्णस्य वारा स्नातस्य यान्तु मे ॥२७॥

मेरे ये दिन वाराणसी में वीतें, केवल तेनी के चावलों से मैं सुस्थ बना रहूं। नये वाग में मेरा निवास हो और स्नान के द्वारा मेरे दिन वीतें।

स्वजनवसतेर्निःसृत्याराच्छलेन चलेनवा
लघु विरचयान् गहं भूमेस्तलेन दलेन वा।
विदधदतुलं प्राणत्राणं फलेन जलेन वा
वनभुवि कदास्यां शून्योहं मलेन खलेन वा ॥२८॥

छल या बल से अपने स्वजनों के साथ से निकल कर पृथिवी के तल से दल (पत्तों) से एक छोटा घर बनाकर फल से या जल से प्राणरक्षा करता हुआ वन मे मैं कब मल से या खल से शून्य होऊँगा ।

पूजापद्मपरंपरापुलकितौ पार्ष्ण्योः परं पेलवौ
पुण्यौ पातकिपापपाटनपटू पृथ्व्यां प्रपन्नौ प्रथाम् ।
प्रायः पर्वतपुत्रिकापृथुपटैः पस्त्येपुरा पूरितौ
पादौ पण्डित पाजकः पशुपतेः प्रीत्या पुरः पश्यतु ॥२९॥

जो पूजा के लिए अर्पित कमलसमूह से पुलकित हुए हैं जिनके दोनों बाजू बड़े ही कोमल हैं, जो पवित्र हैं पापियों के पाप दूर करने में समर्थ हैं, जिन्होंने पृथ्वी में प्रसिद्धि पायी है और जो पहले पार्वती के वस्त्र द्वारा पूजित हैं, पशुपति के उन पादों को पाजकपण्डित प्रीतिपूर्वक अपने आगे देखें ।

पाणिनि ।

ये प्रसिद्ध वैयाकरण हैं । आजकल पाणिनीय व्याकरण का ही यहां पठन पाठन होता है । पञ्जाब के पेशावर के पास शालातुर नामक एक गांव के ये रहनेवाले थे । आज इस शालातुर गांव का नाम ,लाहोर है । पञ्जाब की राजधानी लाहौर से यह भिन्न लाहोर है । इनके पिता का नाम दाक्षी था ।

यद्यपि पाणिनि का जन्म पञ्जाब में हुआ था, परन्तु इनकी शिक्षा पाटलिपुत्र नगर में हुई । उन दिनों पाटलिपुत्र में

वर्ष नामक एक बड़े विद्वान् रहते थे। पाणिनि ने उन्हींसे अध्ययन किया है। आराधना से भगवान् शिव को प्रसन्न करके पाणिनि ने व्याकरण बनाने की योग्यता प्राप्त की थी। व्याकरण सूत्रों के अतिरिक्त इन्होंने एक काव्य भी बनाया है, जिसका पातालविजय अथवा जाम्बवतीविजय नाम है। ये ईसवी सदी के पहले के हैं।

अथासमादास्तमनिन्द्यतेजा जनस्य दूरोज्झितमृत्युभीतेः
उत्पत्तिमद्वस्तु विनाश्यवश्यं यथाहमित्येवमिवोपदेष्टुम् ॥१॥

तेजस्वी सूर्य अस्त हो गये, इसलिए कि मृत्युभय को भूले हुए मनुष्यों को यह उपदेश दें कि उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं का विनाश अवश्यही होता है, जैसे मेरा विनाश हुआ है।

असौ गिरेः शीतलकन्दरस्थः पारावतो मन्मथचाटुदक्षः
घर्मालसाङ्गीं मधुराणि कूजन् संवीजते पक्षपुटेन कान्ताम् ॥२॥

यह कबूतर पर्वत की शीतल कन्दरा में बैठा हुआ है, यह कामिजनोचित खुशामद करने में भी बड़ा दक्ष है। घाम से अलसायी हुई अपनी कबूतरी को मधुर बोलकर पंखो से हवा कर रहा है।

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः
अपश्यती वत्समिवेन्दुविम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुङ्करोति ॥३॥

वर्षा का समय है, आधी रात बीत गयी, मेघ गर्ज रहे हैं मालूम होता है कि चन्द्रमा को न देख कर यह रात्रि हुङ्कार कर रही है, जैसे गाय अपने बछड़े को न देख हुङ्कार करती है।

सरोरुहाक्षीणि निमीलयन्त्यारवौ गते साधु कृतं नलिन्या,
अक्ष्णां हि दृष्टापि जगत्समग्रं फलं प्रियालोकनमेकमेव ॥४॥

सूर्य के चले जाने पर नलिनी ने कमलरूपी अपनी आखें जो बन्द कर लीं वह अच्छा ही किया, (सन्ध्या के समय कमलों का बन्द होना कवि मानते हैं) क्योंकि आखों से यद्यपि समस्त जगत् देखा जाता है तथापि उनका फल तो केवल अपने प्रिय को देखना ही है।

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः
धारानिपातैः सह किन्नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास ॥५॥

रात की अभिसारिका चली जा रही है, उसी समय विजुली चमकी और उसीके प्रकाश में मेघ ने उस अभिसरिका का मुंह देखा। उसको संदेह हुआ कि धारा बरसाने के साथ साथ हमने चन्द्रमा को भी उगल दिया है क्या, इसीसे वह बड़े दुःख से चिल्लाने लगा अर्थात् गरजने लगा।

शुद्धस्वभावान्यपि संहतानि निनाय भेदं कुमुदानि चन्द्रः।
अवाप्य वृद्धिं मलिनात्मरात्मा जडो भवेत्कस्य गुणाय वक्रः ॥६॥

शुद्ध स्वभाववाले और आपस में मिले हुए कुमुदों का चन्द्रमा ने भेद किया। अर्थात् चन्द्रमा ने कुमुदों को विकसित किया। दुरात्मा कुटिल और मूर्ख मनुष्य वृद्धि पाकर किसीके कल्याण के लिए नहीं होते।

उपोढुरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽनुरागाद्‌ गलितं न लक्षितम् ॥७॥

चन्द्रमा का राग (अनुराग अथवा लाल रंग) बढ़ा हुआ है, उसने विलोलतारक (चञ्चल आंखोवाला अथवा तारोंवाला) निशामुख (सन्ध्या समय अथवा निशानामक

किसी स्त्री का मुंह) को इस प्रकार ग्रहण किया कि रात्रि को अनुराग के कारण अपने अन्धकार रूपी कपड़े के गिर जाने का भी ज्ञान न हुआ ।

प्रकाश्य लोकान् भगवान् स्वतेजसा प्राप्य दरिद्रः सवितापि जायते ।
अहो चलाश्रीर्बलमानदाप्यहो स्पृशन्ति सर्वं हि दशा विपर्यये ॥८॥

भगवान सूर्य अपने तेज से समस्त लोकों को प्रकाशित करते हैं, पर अन्त में वे भी प्रभादरिद्र अर्थात् निस्तेज हो जाते हैं, दुःख है कि बल और सम्मान देनेवाली लक्ष्मी भी चञ्चल है । विपरीत अवस्था में सब को दुर्गति भोगनी पड़ती है ।

क्षमाः क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरिताम्,
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम्,
क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकनपरा--
स्तडिद्दीपालोकैर्दिशि दिशि चरन्तीह जलदा ॥९॥

जिसने रात छोटी बनायी, जिसने जबरदस्ती नदियों का जल खींचा, जिसने समस्त भूमि को तपाया, और वनों को सुखाया, वह उष्णांशु इस समय कहां गया इसी बात को देखने के लिए हाथ में बिजुलीरूपी दीपक लेकर समस्त दिशाओं में मेघ घूम रहे हैं ।

पाणौ शोणतले तनूदरि दरक्षामा कपोलस्थली,
विन्यस्याञ्जनदिग्ध लोचनजलैः किं म्लानिमानीयते ।
मुग्धे चुम्बतु नाम चञ्चलतया भृङ्गः क्वचित् कन्दली-
मुन्मीलन्नवमालतीपरिमलः किन्नेन विस्मर्यते ॥१०॥

हे तनूदरि, अंजन लगी आंखों के जल से थोड़ा दुर्बल यह कपोल और लाल हथेली क्यों म्लान बना रही हो ।

भोली भ्रमर चञ्चलता के वशवर्ती होकर यदि कन्दली का चुम्बन करता है, तो करने दो, इससे वह नयी मालती के फैलनेवाले सौरभ को नहीं भूल सकता ।

कल्हारस्पर्शगर्भैः शिशिरपरिचयात् कान्तिमद्भिः कराग्रैः
श्चन्द्रेणालिङ्गितायास्तिमिरनिवसने स्रंसमाने रजन्याः
अन्योन्यालोकिनिभिः परिचयजनित प्रमनिस्यन्दिनीभि
दूरारूढ़े प्रमोदे हसितमिव परिस्पष्टमाशासखीभिः ॥११॥

चन्द्रमा का कर (हाथ या किरण) कमलपराग से भरा है और ठण्ढक के साथ से सुन्दर भी हो गया है, चन्द्रमा ने उसी कर से रात्रि का आलिङ्गन उस समय किया जब कि उसके अन्धकार रूपी कपड़े गिर रहे थे, यह बात दिशाओं ने भी देखी, इनमें परिचय से प्रेम उत्पन्न हो गया है और ये परस्पर एक दूसरी को देख भी सकती हैं, चन्द्रमा और रात्रि का प्रेम जब बहुत ऊंचे चढ़ गया तब साफ़ साफ़ दिशाओं ने हंस दिया ।

विलोक्य सङ्गमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः
कृतं कृष्णमुखं प्राच्या नहि नार्यो विनेर्ष्यया ॥१२॥

सूर्य का पश्चिम दिशा में अनुराग देखकर (सन्ध्या के समय सूर्य का वर्ण लाल हो जाता है) पूर्व दिशा ने अपना मुंह काला कर लिया । विना इर्षावाली स्त्री नहीं होती ।

प्रकाशवर्ष ।

ये संस्कृत के प्रसिद्धि कवियों में से नहीं हैं। इनका बनाया कोई काव्य है कि नहीं इसका भी पता नहीं मिलता। हां सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से जो श्लोक संग्रहीत हुए हैं, वे बड़े ही मधुर और भावपूर्ण हैं।

शिशुपालबध के टीकाकार वल्लभदेवा ने चौथे सर्ग के अन्त में अपनी टीका में लिखा है -

श्रुत्वा प्रकाशवर्षात्तु व्याख्यानं तावदीदृशम्,
विशेषतस्तु नौवास्ति बोधोऽत्रानुवर्त्तते ।

प्रकाशवर्ष से सुनकर मैंने ऐसी टीका लिखी है। ऐसे काव्यों की टीका लिखने के लिए केवल बोध की आवश्यकता नहीं है। यहां तो केवल अनुभव से ही काम चल सकता है। इससे यह मालूम पड़ता है कि प्रकाशवर्ष एक अनुभवी पण्डित थे। इससे अधिक इनके विषय में कुछ मालूम नहीं।

जगत्सिसृक्षाप्रलयक्रिया विधौ प्रयत्न मुन्मेपनिमेपविभ्रमम् ।
वदन्ति यस्येक्षणलोलपक्ष्मणां पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः ॥१॥

जगत् की सृष्टि और प्रलय का कारण जिसकी आंखों की चंचल पपनियों का खुलना और बन्द होना ही है, ऐसा विद्वान् कहते हैं, उस परमेष्ठी (ब्रह्मा) को नमस्कार।

याञ्चापदं मरणदुःखमिवानुभाव्य दत्तेन किं खलु भवन्यतिभूयसापि ।
कल्पद्रुमान्परिहसन्त इवेह सन्तः संकल्पितैरतिददत्यकदार्थितं यत् ॥२॥

मरण दुःख के समान मांगने का दुःख सहवाकर यदि अधिक भी दिया जाय तो उससे लाभ क्या ? सज्जन मनुष्य कल्पद्रुमों का हंसते हुए प्रार्थी के मनोरथ से अधिक देते हैं।

एवमेव नहि जीव्यते खलात्तत्र का नृपतिवल्लभे कथा।
पूर्वमेव हि सुदुःसहोऽनलः किं पुनः प्रवलवायुनेरितः ॥३॥

खल यों ही प्राणनाशक होते हैं, उस पर यदि उन्हें राजाश्रय मिल जाय तो क्या कहना ? एक तो योंही आग का ताप दुःसह होता है, उसपर यदि उसे वायु की सहायता मिल जाय तो कहना ही क्या।

वन्द्यान्निन्दति दुःखितानुपहसत्याबाधते बान्धवा-
न्छूरान्द्वेष्टि धनच्युतान्परिभवत्याज्ञापयत्याश्रितान्।
गुह्यानि प्रकटी करोति घटयन् यत्नेन वैराशयं
ब्रूते शीघ्रमवाच्य मुञ्चति गुणान्गृण्हातिदोषान्खलः ॥४॥

माननीयों को निन्दा करता है, दुःखितों की हंसी उड़ाता है, बान्धवों को पीड़ा देता है शूरों से द्वेष करता है दरिद्रों का तिरस्कार करता है आश्रितों को आज्ञा देता है, गुप्त बातें प्रकाशित करता है, द्वेष प्रकाशित करके, न बोली जानेवाली बात बोलता है गुणों को छोड़ देता है और दोषों को ग्रहण करता है, यह खलों का स्वभाव है।

कृपणसमृद्धीनामपि भोक्तारः सन्ति केचिदतिनिपुणाः।
जलसम्पदोम्बुराशेर्यान्ति लयं शश्व दौर्वाग्नौ ॥५॥

कृपण धन के भोग करनेवाले भी कोई कोई निपुण मनुष्य होते हैं, समुद्र की जलरूपी सम्पति बड़वाग्नि में लीन हो जाती है अर्थात् बड़वाग्नि समुद्र की जल सम्पत्ति का भोग करता है।

धनवाहुल्यमहेतुः कोपि निसर्गेण मुक्तकरः।
प्रावृषि कस्याम्बुमुचः सम्पतिः किमधिकाम्बुनिधेः ॥६॥

धन की अधिकता दान का कारण नहीं है, कोई कोई स्वभाव ही से दानी होते हैं । वर्षाकाल में किस मेघ के पास समुद्र की अपेक्षा अधिक धन (जल) होता है ।

उच्छृङ्खलेन निरपेक्षतयोन्मदेन येनाकुलीकृतमिदं करिणा बभूव ।
दत्त्वा पदं शिरसि हस्तिपकार्भकेण मन्दः कथं गमित एष वशं प्रसह्य ॥७॥

जिस उन्मत्त हाथी ने उच्छृङ्खल और लापरवाह होने के कारण इसको क्षुभित कर दिया था, उसीके सिर पर हाथीवान के लड़के ने पैर रखा और वह बालक अब इस मूर्ख को वश में करके धीरे धीरे चला रहा है ।

दूरीकृतस्वार्थलवा जनस्य समुद्यता ये भुवि तापशान्त्यै ।
द्रुमास्त एवागतिका न विद्मः प्रजापतेराशयलेशमत्र ॥८॥

जिन्होंने अपना स्वार्थ दूर कर दिया है और जो सदा मनुष्यों की तापशान्ति के लिए उद्यत हैं, उन्हीं वृक्षों का आश्रयदाता कोई नहीं दीख पड़ता, इसमे ब्रह्मा का क्या अभिप्राय है सो मालूम नहीं पड़ता ।

क्षारतैव हि गुणस्तथास्ति ते येन न व्रजति कश्चिदन्तिकम् ।
भीषणाकृति बिभर्षि यादसां चक्रमर्णव किमर्थमग्रतः ॥९॥

हे समुद्र ! तुम्हारा क्षारपन एक ऐसा गुण है कि जिसके कारण कोई भी तुम्हारे पास नहीं जाता, फिर भी भीषण रूप वाले इन जल जन्तुओं का समूह तुम आगे क्यों रखते हो ।

लज्जामहे वयमहो भृशमनेके सांयात्रिकाः सलिलराशिममी विशन्ति ।
स्कन्धाधिरोपिततदीपतटोपकण्ठकौलेयकस्वुद्रुतयो यदुदीर्णतृष्णाः ॥१०॥

ये व्यापारी धन की तृष्णा से समुद्र में प्रवेश करते हैं इस बात को देख कर हमलोगों को बड़ी लज्जा मालूम पड़ती

है, क्योंकि इसी समुद्र के तीर पर कुत्ते का चमड़ा रखने वाले कितने ही प्यास से मर रहे हैं ।

लक्ष्मीसम्पर्करूपोयं दोषःपद्मस्य निश्चितम् ।
यदयं गुणसंदोहधामनीन्दौ पराङ्मुखः ॥११॥

लक्ष्मी के साथ से ही कमल में यह दोष उत्पन्न हुआ है यह बात निश्चित है, जो यह गुणों के आश्रय चन्द्रमा से पराङ्-मुख रहता है ।

आदाय वारियतः एव जहाति भूयस्तत्रैव यः स जलदः प्रथमो जड़ानाम् ।
वान्तं प्रतीप्सति तदेव तदेव यस्तु स्त्रोतपतिःस निरपत्रपसार्थवाहः ॥१२॥

वह मेघ सबसे बड़ा मूर्ख है जो उसी समुद्र से जल लेकर और फिर उसी समुद्र को देता है और वह समुद्र तो निर्लज्जों का सिरमौर है जो अपनी उगली हुई चीज को बार बार लेता है ।

एतदग्र पथिकैकजीवितं पश्य शुष्यति कथं महत्सरः ।
धिङ् मुधाम्बुधर रुद्धसद्गतिर्वर्धिता किमिह हट्टवाहिनी ॥१३॥

यह पथिकों का प्रधान अवलम्ब बड़ा तालाब कैसा सूखा जा रहा है सो देखो । मेघ तुमको धिक्कार है जो तुमने बाज़ार की नदियों (नालों) को बढ़ाया, उनकी गति तो रुकी है, वे तो किसी के काम नहीं आतीं ।

परपरिवादेन गुणो वेषविशेषेण पौरुषातिशयः ।
यत्किञ्चनकारितया नृणां भवेद्राजपुत्रत्वम् ॥१४॥

दूसरों की निन्दा से गुण और वेष विशेष की रचना द्वारा पराक्रम की अधिकता और मनमानी कुछ करने से मनुष्यों में राजपुत्रता आ जाती है ।

कार्यज्ञः प्रष्टव्यो न प्रनसान्यो मम प्रियो वेति ।
गुरुरप्यासनसेव्यः प्रियानितम्बः कदा मन्त्री ॥१५॥

कार्यज्ञ मनुष्य से किसी विषय में सलाह लेनी चाहिए, यह मनुष्य हमारा मान्य है या प्रिय है इस कारण किसी से सलाह नहीं लेनी चाहिए। मान्य गुरु (भारी) प्रिय स्त्री के नितम्ब पर क्या कोई मन्त्री का भार सौंपता है ।

गुणवानस्मि विदेशः क इव ममेत्येष दुरभिमानलवः ।
अञ्जनमक्षिण विराजति विन्यस्तं न पुनरधरमणौ ॥१६॥

मैं गुणवान् हूं मेरे लिए विदेश क्या, यह केवल दुरभिमान मात्र है, अञ्जन आंखों में ही शोभता है, यदि वह अधर में लगाया जाय तो क्या अच्छा लगेगा ।

स्तब्धप्रकृतिर्लोके वहुमानमुपैति नातिशयनम्रः ।
स्फुटमत्रोदाहरणं पयोधरे कुबलयाक्षीणाम् ॥१७॥

लोक में उसी का मान होता है जिसकी प्रकृति कड़ी है । नम्र प्रकृतिवालों का मान नहीं होता । स्त्रियों के स्तन इसके उदाहरण हो सकते हैं ।

कल्पद्रुमान् विगतवाञ्छजने सुमेरौ रत्नान्यगाधसलिले सरितामधीशे ।
धाता श्रियं निदधता प्रखलेषु नित्यमत्युज्ज्वलः खलु वटे निहितः प्रदीपः ।

ब्रह्मा ने कल्पद्रुम को वैसे लोगों के बीच में उत्पन्न किया, जिन्हें किसी चीज़ की वासना नहीं । उत्तम रत्नों को समुद्र के अगाध जल में उत्पन्न किया और खलों के लिए घड़े में उज्वलदीप रखा । अर्थात् खलों की आंखों के सामने प्रकाश नहीं रहता, अतएव उनको विवेक नहीं होता ।

बाणभट्ट ।

इन्होंने कादम्बरी और हर्षचरित नामक दो गद्यकाव्य लिखे हैं, ये हर्षवर्द्धन के आश्रित थे। ये सातवीं सदी के प्रारम्भ में हुए थे । इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त पार्वती-परिणय नाम का एक छोटा नाटक भी इन्हींके नाम से प्रसिद्ध है । कुछ लोगों का कहना है कि हर्षवर्द्धन के नाम से प्रसिद्ध नागानन्द आदि नाटक भी बाणभट्ट के ही बनाये हैं, पर इसमें कुछ पुष्ट प्रमाण नहीं है । चण्डीशतक भी इन्होंने बनाया है। जैन पण्डित गुणविनय गणि ने नलचम्पू की एक टीका लिखी है, उसमें उन्होंने बाणभट्ट के "मुकुटताडितक" नामक एक नाटक का भी उल्लेख किया है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य विचार चर्चा में बाणभट्ट के कई श्लोक उद्धृत किये हैं और उन श्लोकों को पद्य कादम्बरी का बतलाया है, इससे बाण की बनायी एक पद्य कादम्बरी भी थी यह मालूम पड़ता है, पर आज न तो यह पद्य कादम्बरी मिलती है और न मुकुटताण्डिक नाटक ।

बाणभट्ट ने हर्ष चरित के प्रारम्भ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है । ये वात्स्यायन गोत्रोत्पन्न थे। इनके पूर्वज का नाम कुवेर था, कुवेर के चार पुत्र हुए, ईशान, हर, पशुपति और अच्युत। पशुपति के पुत्र अर्थपति हुए, अर्थपति के भृगु, हंसशुचि, आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए, इनमें एक चित्रभानु भी थे, चित्रभानु का व्याह राज्यदेवी से हुआ, चित्रभानु और राज्यदेवी के पुत्र बाण हुए, वाल्यावस्था में ही इनकी माता का स्वर्गवास हुआ इस कारण इनका लालन पालन दूसरों ने

किया । बाण के चौदहवें वर्ष में इनके पिता का भी स्वर्गवास हो गया । उसी समय से इनपर कुटुम्ब पालन का भार पड़ा इत्यादि ।

इनके विषय में आचार्य गोवर्धन ने अपनी आर्यासप्तशती में लिखा है ।

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथा वगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तु वाणी वाणो वभूवेति ॥

जिस प्रकार शिखण्डिनी अधिक बल प्राप्त करने के लिए दूसरे जन्म में शिखण्डी हुई, उसी प्रकार अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए वाणी ने (सरस्वती) बाण का रूप धारण किया ।

नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शंभवे ॥१॥

जिनके ऊंचे मस्तक को सुन्दर चामर के समान चन्द्रमा चुम्बन कर रहा है, जो त्रैलोक्य रूपी नगर का मूल स्तम्भ है, उस शिव को नमस्कार ।

एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैकवैज्ञानिकाः
सन्त्येते धनिकाःकलासु सकलास्वाचार्यचर्या चणाः ।
अप्येते सुमनोगिरां निशमनाद्बिभ्यत्यहो श्लाघया ।
धूते मूर्धनि कुण्डले कपणतः क्षीणे भवेतामिति ॥२॥

एक एक से बढ़ कर दूसरों के गुण जानने में प्रवीण धनी है, जो समस्त कलाओं में आचार्य बनने के योग्य हैं, वे वाणीरूपी कुसुम को कानों में रखने से डरते हैं, क्योंकि कानों

में रखने से कुण्डल का धक्का पाकर वे घिस जायँगी, इसलिए वे आदरपूर्वक उन्हें माथे पर ही रखते हैं।

प्रीतिं न प्रकटीकरोति सुहृदि द्रव्यव्ययाशङ्कया।
भीतःप्रत्युपकारकारणभयात्वन्ना कृष्यते सेवया॥
मिथ्या जल्पति वित्तमार्गणभयात्स्तुत्यापि न प्रीयते।
कीनाशो विभवव्ययव्यतिकरग्रस्तः कथं प्राणिति॥३॥

धन खर्च होने के भय से मित्रों पर प्रेम प्रकट नहीं करते, प्रत्युपकार करना पड़ेगा, इस भय से सेवा से भी प्रसन्न नहीं होते, धन ढूँढ़ने के भय से झूठ बोलते है, स्तुति से भी प्रसन्न नहीं होते, यमराज धनव्यय के डर से किस प्रकार जीते हैं।

करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः।
मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेङ्कुशः॥४॥

करिकलभ, चञ्चलता छोड़ दो, सिर नीचा करके विनय-व्रत का पालन करो, सिंह के नख के समान टेढ़ा इस अङ्कुश का तुमपर पड़ना उचित नहीं।

नगृह्णाति ग्रासं नवकमल किंजल्किनि जले,
न पङ्कैराह्लादं व्रजति विसभङ्गार्धशकलैः।
ललन्तीं प्रेमार्द्रामपि विपहते नान्यकरिणीं
स्मरन्दावभ्रष्टांहृदय दयितां वारण पतिः॥५॥

नवीन कमल के रेणुयुक्त जल में ग्रास ग्रहण नहीं करता कमल डंठी के टुकड़ों से भी प्रसन्न नहीं होता, प्रमार्द दूसरी हथिनी को भी सहन नहीं करता, क्योंकि वन में बिछुड़ी हुई अपनी हृदय दयिता को वह हाथी स्मरण कर रहा है।

लतान्तान्नादत्ते शशिशकलशीतं नच जलं
भ्रमद्भृङ्गासङ्गाः परिहरति कान्ताः कमलिनीः
दधद्भाराकारं करमपि करी जातविरहो
वितन्वन्नुच्छ्वासान्क्षणमपि वनान्ते न रमते ॥६॥

लताओं को नहीं छूता, चन्द्रखण्ड के समान शीतल जल को भी नहीं छूता, सुन्दर कमलिनी को भी—जिसपर भौंरें गूँज रहे हैं—दूरही से छोड़ देता है, शूँड़ भी भार के समान धारण करता है, विरही हाथी उसासें लेरहा है और वन में उसे एक क्षण के लिए भी चैन नहीं।

नदीवप्रान्भित्त्वा किसलयवदुत्पाट्य च तरू-
न्मदोन्मत्ताञ्जित्वा करचरणदन्तैः प्रतिगजान् ।
जरांप्राप्यानार्यां तरुणजनविद्वेषजननीं
स एवायं नागः सहति कलभेभ्यः परिभवम् ॥७॥

जिसने नदी के तटों को तोड़ दिया है, फूल के समान जिसने वृक्षों को उखाड़ दिया है, शूँड़ पैर और दातों से जिसने अपने प्रतिद्वन्दी मतवाले हाथियों को जीत लिया है, वही हाथी आज बूढ़ा होगया है, युवक उससे द्वेष करने लगे हैं और वह छोटे छोटे बच्चों से पराजित होरहा है।

वरमियमङ्कुशक्षतिरलक्षितमापतिता
विनयविधित्सया शिरसि तेगजयूथपते ।
न पुनरपश्चिमाकरजवज्रशिखाभिहतिः
प्रसभसमुत्थितस्य निशिता वनकेसरिणः ॥८॥

हे गजराज, तुमको सीधा करने के लिए तुम्हारे मस्तक पर अलक्षित पड़नेवाला यह अङ्कुश का प्रहार अच्छा है, नहीं तो वन-सिंह के तीखे और व्रज के समान नखों का आकस्मिक आघात सहना पड़ेगा और वह अच्छा नहीं।

तरलयसि दृशं किमुत्सुकामकलुषमानसवासलालिते।
अवतार कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पङ्कजालयम् ॥१०॥

स्वच्छकान सरोवर में वास करनेवाली राजहंसि तुम इधर उधर क्या देख रही हो, इस वापी में उतरो, पुनः मानसरोवर भी जाना।

वियोगिनी चन्दनपङ्कपाण्डु मृणालिकाहारनिबद्धजीवा।
बाला चलाम्भःकणदन्तुरेषु हसीव शिश्ये नलिनीदलेषु ॥११॥

चन्दन पंक के समान पीली, मृणालिका तार के सहारे जीवित रहने वाली वियोगिनी स्त्री छोटे छोटे जलकणों से युक्त कमलिनी के पत्तों पर हँसी के समान सोयी।

दुःखदशां प्रविशन्त्यास्तस्याः कण्ठं मुहुर्मुहुर्बाष्पः।
स्वल्पावशेषजीवितनिर्याणभियेव निरुणद्धि ॥ १२ ॥

उसकी बुरी दशा है, गला वाष्प से भर आया है, मानो थोड़ा बचा हुआ प्राण जाने न पावे इसलिए वह गले को रोक रहा है।

सर्वाशारुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्गबद्धक्रुधि
क्षामक्ष्मारुहि मन्दमुन्मधुलिहि स्वच्छन्दकुन्दद्रुहि॥
शुष्यत्स्रोतसि भूरितप्तरजसि ज्वालायमानार्णसि
ग्रीष्मे मासितताग्तेजसि कथं पान्थ व्रजञ्जीवसि ॥ १३ ॥

इस ग्रीष्म मास ने सब दिशाओं को भर दिया, विरवा जला दिये, मृगों पर सदा क्रोध किया, वृक्षों को पतला बनाया, भौंरों के आनन्द को घटाया, स्वतन्त्रता पूर्वक कुन्द-पुष्प से द्वेष किया, सोतों को सुखवाया, धूलि को गर्म किया, जल को अग्नि के समान बनाया, पान्थ, तुम इस ग्रीष्म मास में जब कि सूर्य का तेज फैल रहा है, कैसे जीते हो।

दूरादेव कृतोञ्जलिर्न तु पुनः पानीय पानार्थिना
रोमाञ्चोपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्यादरात् ।
रूपालोकनविस्मितेन चलितो मूर्धा न शान्त्या तृषा–
मक्षुण्णो विधिरध्वगेन घटितो वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥ १४ ॥

दूर से ही पथिक ने हाथ जोड़े, पर पीने के पानी के लिए नहीं, रोमाञ्च हो आया, पर शीत के कारण नहीं, किन्तु प्रेम के कारण। रूप देखकर वह विस्मित हो गया था इस कारण उसने अपना सिर हिलाया, प्यास शान्त होने के कारण नहीं, प्रापा-पालिका (पनसाला चलानेवाली) को देखकर पथिक ने अपने भाग्य सफल किये।

स्वेदाम्भःकणिकाचितेन वपुषा शीतानलस्पर्शनं
तर्षोत्कर्षजुषा मुखेन शिशिरस्वच्छाम्बुपानादरः ॥
दूराध्वक्रमनिःसहैरवयवैश्छायासु विश्रान्तयः
कश्मीरान्परितो निदाघसमये धन्यः परिभ्राम्यति ॥ १५ ॥

वह मनुष्य धन्य है जो गरमी के दिनों में कश्मीर में भ्रमण करता है, क्योंकि वहां स्वेद विन्दुयुक्त शरीर को शीतलवायु का स्पर्श होता है, प्यास लगने पर ठंढा जल मिलता है, और दूर चलने के कारण अंगों के थक जाने पर विश्राम के लिए छाया मिलती है।

ग्रीष्मोष्मप्लोषशुष्यत्पयसि बकभयोद्भ्रान्तपाठीनभाजि
प्रायः पङ्कैकभावं गतवति सरसि स्वल्पतोये लुठित्वा ॥
कृत्वा कृत्वा जलार्द्रीकृतमुपरि जरत्कर्पटाग्रं प्रपायां
तोयं लब्ध्वापि पान्थः पथि चलति हहा हेति कुर्वन्पि पांसु॥ १६ ॥

तलाव का जल ग्रीष्म के दाह से सूख गया है, वहां की मछलियां बगलों के भय से व्याकुल हो गयी हैं उसमें प्रायः कीचड़ ही रह गया है, उसके थोड़े—स्वल्प जल में लोट कर जीर्ण वस्त्र के टुकड़े को पथिक ने अपने ऊपर रखा, जब वह पनशाला में गया तब उसे जल मिला, पर वह प्यासा ही हाहा, करता हुआ जा रहा है।

लवणाम्बुनिधेरम्भःकृत्स्नमुद्गीर्य तोयदाः।
दधुर्धवलतां भूयः पीत दुग्धार्णवा इव ॥ १८ ॥

मेघों ने लवण समुद्र के समस्त जल को गिरा दिया, तब वे श्वेत हो गये, मानों उन्होने क्षीरसमुद्र का पान किया है।

नीलोत्पलवने रेजुः पादाः श्यामायिता रवेः।
घनबन्धनमुक्तस्य श्यामिका मलिना इव ॥ १९ ॥

नीलकमल के वन में सूर्य के श्याम बने हुए चरण (किरणें) शोभते हैं। मानों मेघ के बन्धन के कारण वे श्याम हो गये थे और वह श्यामता मुक्त होने पर भी वर्तमान है।

द्वारे गृहस्य पिहितं शयनस्य पार्श्वे वन्हिर्ज्वलत्युपरि तूलपटो गरीयान्।
अङ्केऽनुकूलमनुरागवशात्कलत्र मित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥२०॥

घर का द्वार बन्द है, पलंग के पास आग जल रही है, ऊपर ओढ़ने के लिए भारी रुई का ओढ़ना हैं अङ्क में अनुरागवती स्त्री है, इस प्रकार सोने वाले को यह जाड़ा क्या कर सकता है।

धृतधनुषि बाहुशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्य्यम्।
रिपुसंज्ञकेषु गणना कैव वराकेषु काकेषु २१ ॥

जब ये धनुष धारण करते हैं तो पर्वत नहीं नवते यही आश्चर्य है, रिपुनामक विचारे काकों की क्या गिनती ।

अङ्गणवीथी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम् ।
वल्मीकश्च सुमेरु कृतप्रयत्नस्य धीरस्य ॥ २२ ॥

उद्योगी धीर पुरुष के लिए समूची पृथिवी आँगन समुद्र नहर, पाताल मैदान, और सुमेरु पर्वत मिट्टी के ढेर के समान है ।

महाकवि विल्हण ।

ये संस्कृत साहित्य के एक धुरन्धर कवि हैं । कालिदास अश्वघोष परिमल आदि की श्रेणी के ये कवि हैं । इनकी कविता सरस मनोहर और थोड़ा परिश्रम से आस्वाद्य है । इन्होंने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक अपने काव्य ग्रन्थ में अपना परिचय दिया है, वह यहां लिखा जाता है ।

ये काश्मीर के रहने वाले थे, काश्मीर के प्रधान नगर प्रवरपुर (श्रीनगर) से तीन मील दूर खोनमुखनामक एक ग्राम था, यही ग्राम विल्हण के पूर्वपुरुषों की निवास भूमि थी । विल्हण तीन भाई थे, इनके बड़े भाई का नाम इष्टराम और छोटे भाई का नाम आनन्द था । मझले ये स्वयं थे । इनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागादेवी था । इनके पितामह का नाम राज्यकलश और प्रपितामह का नाम मुक्तिकलश था । विल्हण ने लिखा है कि मेरे पिता ज्येष्ठकलश ने महाभाष्य पर एक टीका लिखी है । पर उस टीका का आज पता नहीं मिलता । विल्हण का विद्याभ्यास कश्मीर में ही हुआ था । विल्हण ने अपनी विद्या के विषय में यह लिखा है:—

साङ्गो वेदः फणिपतिदृशा शब्दशास्त्रे विचार
प्राणा यस्य श्रवणसुभगा साहि साहित्यविद्या,
को वा शक्तः परिगणयितुं श्रूयतां तत्वमेतत्
प्रज्ञादर्शे किमिव विमले नास्य संक्रान्तमासीत् ॥

अङ्गो के सहित वेद और शब्द शास्त्र में महा भाष्यकार के समान जिसका विचार था, श्रवणों के सुखदायी वह साहित्य विद्या जिसके प्राण हैं, अथवा कौन गिन सकता है। यथार्थ वात यह है कि इनके स्वच्छ बुद्धिदर्पण में कौन सी ऐसी वात है, जिसका प्रतिविम्ब न पड़ा हो।

विद्याध्ययन के पश्चात् इन्होंने देश का परिभ्रमण किया, काशी से चलकर मार्ग में चेदीराज कर्णराज से इनकी मैत्री हुई, इनके यहां कुछ दिनों तक महाकवि विल्हण ने वास किया था और यहीं उन्होंने अपना पहला काव्य रामचरित लिखा था। यह काव्य विल्हण ने चेदीराज कर्णराज को ही समर्पित किया था। वहां से चलकर गङ्गाधर नामक किसी कवि के यहां इन्होंने वास किया, वहां से ये कल्याण गये और वहां के राजा विक्रमराज की सभा के ये मुख्य पण्डित चुने गये। ये विक्रमदेव त्रिभुवन मल्लनाम से प्रसिद्ध हैं। सन् १०७६ से ११२७ ई० तक इन्हों ने राज्य किया।

विल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरित में अनन्त और कलश इन राजाओं का उल्लेख किया है, उस समय अनन्त मर चुका था और कलश को राजगद्दी मिली थी। अनन्तराज ने सन् १०२८ से १०८० ई० तक और कलश १०८० से १०८८ ई० तक काश्मीर का शासन किया। विल्हण के विषय में काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में इस प्रकार लिखा है।

काश्मीरेभ्यो विनिर्यांतं राज्ये कलशभूपतेः
विद्यापतिं यं कर्णाटश्चक्रे पर्माडिभूपतिः
प्रसर्पतः करटिभिः कर्णाटकटकान्तरे,
प्राज्ञोऽग्रे ददृशे तुंगं तस्यैवातपवारणम्,
त्यागिनं हर्षदेवं स श्रुत्वा सुकविवान्धवम,
विल्हणो वंचनां मेने विभूतिं तावतीमपि।

इनका विक्रमाङ्कदेवचरित, १०८८ ई० के पूर्व लिखा गया है, विक्रमाङ्कदेवचरित को छोड़ कर पंचाशिका रामचरित ग्रन्थ भी इनके नाम से प्रसिद्ध है। पर उनकी कविता देखने से मालूम पड़ता है कि इनके कर्ता कोई दूसरे सज्जन हैं। विल्हण ने अलङ्कार पर भी कोई ग्रन्थ लिखा है पर आज वह अनुपलब्ध है।

विक्रमाङ्कदेवचरित सेः—

अलंकरोत्यद्भुतसाहसाङ्कसिंहासनं चेदयमेकवीरः।
एतस्य सिंहीमिव राजलक्ष्मीमङ्कस्थितां कःक्षमतेभियोक्तुम् ॥१॥

यह अद्भुत साहसी और प्रसिद्धवीर यदि सिंहासन को अलङ्कृत करे तो सिंही के समान इसके अङ्क में बैठी हुई राज्यलक्ष्मी को कौन छीन सकता है।

करोमि तावद्युवराजमेनमत्यक्तसाम्राज्यभरस्तनूजम्।
तटद्वयीसंश्रयणाद्दधातु धुनीव साधारणतां नृपश्रीः ॥ २ ॥

तब तक मैं इस अपने पुत्र को युवराज बनाता हूं, मैं अभी राज्यकार्य्य देखता रहूंगा। दो तटों के आश्रय करने के कारण नदी के समान राज्यलक्ष्मी भी साधारण होकर रहे।

एवं विनिश्चित्य कृतप्रयत्नमूचे कदाचित्पितरं प्रणम्य।
सरस्वतीनूपुरसिञ्जितानां सहोदरेण ध्वनिना कुमारः ॥ ३ ॥

इस प्रकार निश्चय करके पिता ने अपना प्रयत्न प्रारम्भ किया। उसी समय पिता को प्रणाम करके कुमार ने सरस्वती के नूपुर शब्दों के समान शब्दों से कहा।

आज्ञा शिरश्चुम्बति पार्थिवानां त्यागोपभोगेषु वशे स्थिता श्रीः।
तव प्रसादन्सुलभं समस्तमास्तामयं मे युवराजभावः ॥४॥

राजा लोग मेरी आज्ञा मानते ही हैं, त्याग और उपभोग के लिए धन भी काफ़ी मिलता है। आप की दया से मुझे सभी वस्तु सुलभ है। अतएव मुझे यह युवराज का पद लेकर क्या करना है।

जगाद देवोथ मदीप्सितस्य किंवत्स धत्से प्रतिकूलभावम्।
ननु त्वदुत्पत्तिपरिश्रमे मे स चन्द्रचूड़ाभरणः प्रमाणम् ॥ ५ ॥

महाराज ने कहा बेटा, तुम मेरे मनोरथ के विपरीत क्यों करना चाहते हो, तुम्हारी उत्पत्ति के लिए मुझे कितना परिश्रम करना पड़ा है यह बात स्वयं भगवान शंकर जी जानते हैं।

धत्से जगद्रक्षणयामिकत्वं न चेत्वमङ्गीकृतयौवराज्यः।
मौर्वीरवापूरितदिङ्मुखस्य क्लान्तिः कथं शाम्यतु मद्भुजस्य ॥ ६ ॥

युवराज का पद अङ्गीकृत करके तुम यदि जगत् की रक्षा का भार नहीं ग्रहण करोगे तो मेरे उन भुजाओंकी—जिन्हों ने धनुष के टंकार से दिशाओं को प्रतिध्वनित किया है—क्लान्ति (थकावट) कैसे दूर होगी।

आकर्ण्य कर्णाटपतेः सखेदमित्थं वचः प्रत्यवदत्कुमारः।
सरस्वतीलोलदुकूलकान्तां प्रकाशयन्दन्तमयूखलेखाम् ॥ ७ ॥

कर्णापति की बात खेद के साथ सुनकर कुमार ने सरस्वती के चञ्चल वस्त्र के समान सुन्दर दन्त किरणों की परम्परा प्रकाशित करते हुए उत्तर दिया।

वाचालतैषा पुरतः कवीनां कान्त्या मदोयं सविधे सुधांशोः।
त्वत्सनिधौ पाटवनाटनं यत्तथापि भक्त्या किमपि ब्रवीमि ॥ ८ ॥

यह कवियों के सामने वकवाद करना है, चन्द्रमा के सामने अपनी सुन्दरता का गर्व करना है, वैसे ही आपके सामने अपनी पटुता दिखाना भी है, फिर भी भक्ति के कारण कुछ कहता हूं।

विचारचातुर्यमपाकरोति तातस्य भूपान्मयि पक्षपातः।
ज्येष्ठे तनूजे सति सोमदेवे न यौवराज्येस्ति ममाधिकारः ॥ ९ ॥

पिता का मुझ पर बड़ा प्रेम है इसी कारण वे इस बात पर गहरा विचार नहीं करते। बड़े लड़के सोमदेव के रहते यौवराज्यपद के ग्रहण करने का हमारा अधिकार नहीं है।

चालुक्यवंशोपि यदि प्रयाति पात्रत्वमाचारविपर्ययस्य।
अहोमहद्वंशसमाः किमन्यदनंकुशोभूत्कलिकुञ्जरोयम् ॥ १० ॥

चालुक्य वंश में भी यदि मर्यादा का अतिक्रम हो तो यह बड़े दुःख की बात है, और क्या उस समय यही कहना चाहिए कि यह कलिरूपी हाथी अनङ्कुश हो गया।

लक्ष्म्याः करं ग्राहयितुं तदादौ तातस्य योग्यः स्वयमग्रजो मे।
कार्यं विपर्यासमलीमसेन न मे नृपश्रीपरिरम्भणेन ॥ ११ ॥

पिता जी को चाहिए कि सबसे पहले मेरे बड़े भाई को लक्ष्मी सौपें, मर्यादा के अतिक्रम से काली हुई लक्ष्मी के ग्रहण करने की हमें ज़रूरत नहीं।

ज्येष्ठं परिम्लानमुखं विधाय भवामि लक्ष्मीप्रणयोन्मुखश्चेत् ।
किमन्यदन्यायपरायणेन मयैव गोत्रे लिखितः कलङ्कः ॥ १२ ॥

बड़े भाई के मुँह को मलिन बनाकर यदि हम राज लक्ष्मी के प्रेम में उत्कण्ठित हों तो और क्या, अन्यायी होकर मैंने ही अपने गोत्र में कलङ्क लगाया ।

तातश्चिरं राज्यमलंकरोतु ज्येष्ठो ममारोहतु यौवराज्यम् ।
सलीलमाक्रान्तदिगन्तरोऽहं द्वयोः पदातिव्रतमुद्वहामि ॥ १३ ॥

पिता बहुत दिनों तक राज्य करें, मेरे बड़े भाई युवराज बनाये जायं और मैं अनायास दिशाओं पर आक्रमण करूं और इन दोनों का सिपाही बना रहूं ।

रामस्य पित्रा भरतोऽभिषिक्तः क्रमं समुल्लङ्घ्य यदात्मराज्ये ।
तेनोत्थिता स्त्रीजित इत्यकीर्तिरद्यापि तस्यास्ति दिगन्तरेषु ॥ १४ ॥

राम के पिता ने क्रम की परवा न कर भरत को राज्य दिया, इसलिए स्त्री के वश में होने की उनकी अकीर्ति फैली और आज भी वह ज्यों की त्यों वर्तमान है ।

तदेष विश्राम्यतु कुन्तलेन्द्र यशोविरोधी मयि पक्षपातः ।
न किं समालोचयति क्षितीन्दुरायासशून्यं मम यौवराज्यम् ॥ १५ ॥

हे कुन्तलेन्द्र, आप अपने इस विचार को छोड़ें, क्योंकि इससे अयश होगा । क्या महाराज का ध्यान इस बात की ओर नहीं है कि मैं तो बिना परिश्रम से ही युवराज बना हूं ।

पुत्राद्वचः श्रोत्रपवित्रमेवं श्रुत्वा चमत्कारमगान्नरेन्द्रः ।
इयं हि लक्ष्मीधु रि पांसुलानां केषां न चेतः कलुषीकरोति ॥१६॥

कानों को पवित्र करनेवाली बात पुत्र से सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ, क्योंकि यह लक्ष्मी तो दोषों की खान है और इसके लिए किसका चित्त मलिन नहीं हो जाता ।

सस्नेहमङ्के विनिवेश्य चैनमुवाच रोमाञ्चतरङ्गिताङ्गः ।
क्षिपन्निवात्युज्ज्वलदन्तकान्त्या प्रसादमुक्तावलिमस्य कण्ठे ॥ १७ ॥

राजा ने अपने पुत्र को गोद में बैठा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया। वे उज्ज्वल दांतो की शोभा से पुत्र के गले में मानों मोतियों की माला पहना रहे हो, वे बड़े प्रेम से बोले।

भाग्यैः प्रभूतैर्भगवानसौ मे सत्यं भवानीदयितः प्रसन्नः ।
चालुक्यगोत्रस्य विभूषणं यत्पुत्रं प्रसादीकृतवान्भवन्तम् ॥ १८ ॥

बड़े भाग्य से भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए हैं। यह बात बिलकुल सच है, क्योंकि उन्होने प्रसन्न होकर ही चालुक्य गोत्र के अलङ्कार स्वरूप आपको पुत्र के रूप में प्रसाद दिया है।

एतानि निर्यान्ति वचांसि वक्त्रात्कस्यापरस्य श्रवणामृतानि ।
मधूनि लेह्यानि सुरद्विरेफैर्न पारिजातादपरः प्रसूते ॥ १९ ॥

कानों के लिए अमृत के समान ये बातें किसी दूसरे के मुंह से थोड़ेही निकल सकती हैं। देवलोक के भ्रमरों के लिए मधु पारिजात के अतिरिक्त दूसरे वृक्षों से नहीं मिलता।

यस्याः कृते भूमिभृतां कुमाराः केषं न पात्रं नयविप्लवानाम् ।
उन्मत्तमातङ्गसहस्रगुर्वी सा राज्यलक्ष्मीस्तृणवल्लघुस्ते ॥ २० ॥

जिसके लिए राजाओं के लड़के न मालूम कितने बड़े बड़े पाप कर डालते हैं, मतवाले हजारों हाथियों से भी वज़नदार यह राज्यलक्ष्मी तुम्हारे लिए तृण के समान है।

लङ्कासमीपाम्बुधिनिर्गतेयं रक्तासवैस्तृप्यति राक्षसीव ।
लक्ष्मीरसौ त्वद्भुजदण्डबद्धा पात्रं भवित्री विनयव्रतस्य ॥ २१ ॥

यह लङ्का के पास वाले समुद्र से निकली है, राक्षसियों के समान इसकी तृप्ति के लिए भी रक्तासव चाहिए, पर यदि यह राज्यलक्ष्मी तुम्हारी भुजाओं में बांध दी जाय तो यह विनयों की पात्र अवश्य होगी।

जानामि मार्गं भवतोपदिष्टं ममापि चालुक्यकुले प्रसूतिः ।
किंत्वत्र लक्ष्मीगुणबन्धहीने निसर्गलोला कथमेति दार्ढ्यम् ॥२२॥

तुमने जो बातें कही हैं, वह मुझे मालूम है। मेरा जन्म भी चालुक्य कुलही में हुआ है, पर बात यह है कि तुम्हारा बड़ा भाई गुणहीन है, उसमें स्वभावचञ्चल यह लक्ष्मी कैसे दृढ़ता प्राप्त कर सकेगी।

किंचिन्न मे दूषणमस्ति पृच्छ दैवज्ञचक्रं यदि कौतुकं ते ।
एतस्य साम्राज्यममन्यमानाः पापग्रहा एव गृहीतपापाः॥२३॥

मेरा कुछ भी दोष नहीं है, तुम्हें यदि कौतुक हो तो ज्योतिषियों से पूछो, इसके पापग्रह ही इस विषय में अपराधी हैं जो इसको साम्रज्य देना स्वीकार नहीं करते।

साम्राज्यलक्ष्मीदयितं जगाद त्वामेव देवोपि मृगाङ्कमौलिः ।
लोकस्तुतां मे बहुपुत्रतां तु पुत्रद्वयेन व्यतनोत्परेण ॥२४॥

भगवान् शङ्कर ने भी तुम्हीं को साम्राज्य का अधीश्वर बतलाया है, यद्यपि लोक में हमारे बहुपुत्र होने की प्रशंसा है, पर मैं पुत्रवान् तो अपने छोटे दोनों लड़कों ही से हूं, यह बात शङ्कर ने कही हैं।

तन्मे प्रमाणीकुरु वत्स वाक्यं चालुक्यलक्ष्मीश्चिरमुन्नतास्तु ।
निर्मत्सराः क्षोणिभृतः स्तुवन्तु ममाकलङ्कं गुणपक्षपातम् ॥२५॥

बेटा, इस कारण मेरी बात मान लो, चालुक्य वंश की लक्ष्मी को सदा के लिए उन्नत होने दो, पक्षपात रहित राजा हमारे विशुद्ध गुण पक्षपात की स्तुति करें।

श्रुत्वेति वाक्यं पितुरादरेण जगाद भूयो विहसन्कुमारः ।
मद्भाग्यदोषेण दुराग्रहोयं तातस्य मत्कीर्तिकलंकहेतुः ॥२६॥

पिता की बात सुनकर पुनः हंसता हुआ कुमार बड़े आदर से बोला, मेरे ही भाग्य दोष से पिता का आग्रह यह है और यह आग्रह मेरी कीर्ति का कलङ्क है।

यदि ग्रह स्तस्य नाराज्यदूताः कारुण्यशून्यः शशिशेखरो वा ।
तैरेव तातो भविता कृतार्थस्तद्धार्यतां कीर्तिविपर्ययो मे ॥२७॥

यदि मेरे बड़े भाई के ग्रह राज्य प्राप्ति के अनुकूल नहीं हैं और यदि महादेव भी उनके अनुकूल नहीं हैं, तो इसीसे पिता जो चाहते हैं वह हो जायगा, इसलिए मेरा यह कलङ्क आपःदूर करें।

अशक्तिरस्यास्ति न दिग्जयेषु यस्यानुजोहं शिरसा धृताज्ञः ।
स्थानस्थ एवाद्भुतकार्यकारी विभर्तु रक्षामणिना समत्वम् ॥२८॥

मेरे बड़े भाई दिग्विजय नहीं कर सकते, यह बात नहीं है, क्योंकि उनकी आज्ञा का पालन करनेवाला मैं उनका छोटा भाई हूं। वे केवल राजधानी में बैठ कर ही बड़े अद्भुत कार्य कर सकते हैं, केवल रक्षामणि के समान उनकी छाया चाहिए।

इत्यादिभिश्चित्रतरैर्वचोभिः कृत्वा पितुः कौतुकमुत्सवं च ।
अकारयज्ज्येष्ठमुदारशीलः स यौवराज्यप्रतिपत्तिपात्रम् ॥२९॥

इस प्रकार उदार वचनों से पिता का कौतूहल और आनन्द बढ़ा कर उस उदारशील ने अपने बड़े भाई को यौवराज्य का अधिकारी बनाया ।

स्वयं समाधास्यति चन्द्रमौलिरम्लानकीर्तेरभिवाञ्छितं मे ।
कार्यं विचार्येति सुतोपदिष्टं स सर्वमुर्वीपतिरन्वतिष्ठत् ॥३०॥

मेरी कीर्ति म्लान नहीं है, स्वयं भगवान् चन्द्रमौलि ही मेरे मनोरथों को सिद्ध करेंगे यह विचार कर महाराज ने पुत्र के कहे अनुसार समस्त कार्य किये ।

भट्टनारायण ।

इनका बनाया वेणीसंहार नाम का एक नाटक है, इस नाटक की रचना बड़ी ही मनोरम और सुन्दर है, महाभारत की कथा इस नाटक में वर्णित है । वंगाल के राजा आदिशूर ने यज्ञ कराने के लिए कन्नौज से पांच ब्राह्मण बुलाये थे, उनमें भट्टनारायण भी थे । राजा आदिशूर का समय सन् ८६४ ई० निश्चित है अतएव भट्टनारायण का भी वही समय मानना चाहिए । वेणीसंहार के अतिरिक्त "प्रयोगरत्न" नामक एक धर्मशास्त्र का भी ग्रन्थ इन्होंने बनाया है । ये पण्डित तो थे ही, साथही वीर भी थे । यह बात इन्होंने राजा आदिशूर को आशीर्वाद देते हुए स्वयं कही है ।

वेणीसंहारनामा परमरसयुतो ग्रन्थ एकः प्रसिद्धो
भो राजन् मत्कृतोऽसौ रसिकगुणवता यत्नतो गृह्यते सः ।

नाम्नाहं भट्ट नारायण इतिविदितश्चारुशाण्डिल्यगोत्रो
वेदे शास्त्रो पुराणे धनुषि च निपुणः स्वस्ति ते स्यात् किमन्यत् ।

वेणीसंहार नामक परम रसयुक्त एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है, हे राजन्, वह मेरा बनाया है उसे रसिक और गुणवान् यत्न पूर्वक ग्रहण करते हैं, मेरा नाम भट्टनारायण प्रसिद्ध है, मेरा शाण्डिल्य गोत्र है, वेदशास्त्र पुराण और धनुर्विद्या में मैं निपुण हूं, तुम्हारा कल्याण हो और क्या ।

भट्ट जी ने क्या ही अच्छे ढंग से अपना परिचय और आशीर्वाद दिया है । इसमें इनके वीर होने का पूरा परिचय है

उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा
धृत्वा चान्येन वासो विगलितकबरी भारमंसे वहन्त्या
भूयःस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिनाशौरिणा वः
शय्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसलसद्बाहु लक्ष्म्याःपुनातु ॥ १ ॥

लक्ष्मी सुरत के अन्त में शेषनागपर एक हाथ टेककर उठ रही थी, दूसरे हाथ से उन्होंने अपना कपड़ा पकड़ा था, चोटी के बाल बिखर कर कन्धे पर गिर रहे थे, उस समय का लक्ष्मी का सौन्दर्य देखकर विष्णु का सुरत प्रेम और भी बढ़ गया और वे आलिङ्गन करके लक्ष्मी को शय्या पर ले गये उस समय का लक्ष्मी का वह शरीर जिसमें बाहु आलस्य के कारण शोभ रहे थे आप लोगों को पवित्र करें ।

क्व दोषोऽत्र मया लभ्य इतिसंचिन्त्य चेतसा
खलः काव्येषु साधूनां श्रवणाय प्रवर्तते ॥ २ ॥

खल—मन में यह सोच कर कि इसमें दोष मुझे कहां मिलेगा—सज्जनों के बनाये काव्य सुनने को प्रवृत्त होते हैं ।

यास्यति सज्जनहस्तं रमयिष्यति तं भवेच्च निर्दोषा
उत्पादयितापि कविस्ताम्यति कथया दुहितेव ॥३॥

सज्जनों के हाथ में जायगी उनको प्रसन्न करेगी और निर्दोष रहेगी इस प्रकार की चिन्ताओं से जिस प्रकार पिता अपनी कन्या से दुःखी रहा करता है, उसी प्रकार कवि भी अपनी बनायी कथा से।

रवेरेवोदयः श्लाघ्यः कोऽन्येषामुदयग्रहः
न तमांसि न तेजांसि यस्मिन्नभ्युदिते सति ॥४॥

सूर्य का ही उदय श्लाघनीय है, दूसरों का उदय लेने का शाक व्यर्थ है, क्योंकि सूर्य के उदय से न तो कोई और तेज ठहरते हैं और न अन्धकार।

किमनेन न पर्याप्तं कान्तत्वे शशलक्ष्मणः
सुसंतप्तापि नलिनी यद्विश्वासमुपागता ॥५॥

चन्द्रमा की कान्ति का सुन्दर होना क्या इससे काफी सिद्ध नहीं हुआ कि तपी (ठगी) हुई भी नलिनी उस पर विश्वास करने लगी।

करान् प्रसार्य रविणा दक्षिणाशावलम्बिना
न केवलमनेनात्मा दिवसोऽपि लघूकृतः ॥६॥

दक्षिणा की आशा से सूर्य ने हाथ फैलाया अथवा दक्षिण दिशा में जाते हुए सूर्य ने किरण फैलाये, इस कारण सूर्य ने न केवल अपने को किन्तु दिन को भी छोटा बनाया।

मन्थ्नामि कौरवशतं समरे न कोपादुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू सन्धिं करोतु भवतं नृपतिः पणेन॥

भीमसेन को मालूम हुआ था कि युधिष्ठिर दुर्योधन से सन्धि करनेवाले हैं, इस खबर से क्रुद्ध होकर वे कहते हैं,

कि क्रोध से युद्ध में मैं सौ कौरवों को अवश्य व्यथित करूंगा, दुःशासन के कलेजे का रुधिर अवश्य पीऊँगा, अपनी गदा से दुर्योधन की गदा ज़रूर तोड़ूंगा, आप के राजा चाहें पैसों पर सन्धि करलें ।

यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं
यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता
तद्यूतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः
क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ।

सत्यव्रत के भङ्ग के भय से जो यत्नपूर्वक कम कर दिया गया था, शम प्रधान और कुल का मंगल चाहने वाले राजा ने जिसको भूल जाना भी चाहा था, वह जुए की अरणि (अग्नि निकालने के काष्ठ) में बंधा हुआ युधिष्ठिर के क्रोध का प्रकाश द्रौपदी के केश और वस्त्र के आकर्षण से महान् कुरुवन में फैल रहा है । (भीम की उक्ति)

नाहं रक्षो नभूतो रिपुरुधिरजलाह्लादिताङ्गः प्रकामम्
निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनं क्रोधनं क्षत्रियोस्मि
भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतंव-
स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यतेयत् ।

मैं राक्षस नहीं हूं और न भूत हूं किन्तु शत्रु के रुधिर जल से मेरा समस्त शरीर लिप्त है, मैंने समुद्र के समान गहन प्रतिज्ञा का पालन किया है, मैं क्रोधी क्षत्रिय हूं, हे रणाग्नि की ज्वाला से जलने से बचे हुए वीर राजागण, तुम व्यर्थही मरे हुए हाथी और घोड़ों की ओट में छिप रहे हो । (भीम की उक्ति)

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः कियायुधैः
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन साध्यताम्,

जब तक मैंने अस्त्र धारण किया है तब तक दूसरे किसी के अस्त्र से क्या, जो काम मेरे अस्त्र से सिद्ध न होगा, वह कौन दूसरा सिद्ध कर सकता है। (कर्ण की उक्ति)

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वम्,

यदि रण से हट जाने पर मृत्यु का भय न रहे तब तो रणस्थान से भाग जाना ठीक है, पर प्राणियों को तो अवश्य मरना पड़ेगा, फिर भाग कर तुम लोग अपने यश को मलिन क्यों करते हो। (अश्वत्थामा की उक्ति)

युस्मान् ह्र पयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ।

क्रोध से शत्रुओं के नाश करने में तुम लोगों को लज्जा मालूम होती है। पर सभा में अपनी स्त्री के केशों के खींचे जाने से तुम लोगों को लज्जा नहीं आती। (भीम की उक्ति)

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्चयश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्त तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ।

पाण्डवों की सेना में जो जो शस्त्र धारण करते हैं जिस जिसको अपनी भुजाओं का गर्व हो, पाञ्चाल गोत्र में जो कोई बालक जवान या गर्भ में हो जो उस कर्म के (द्रोणचार्य के मारे जाने के) साक्षी हो और युद्ध में जो मेरा सामना करे,

क्रोधान्ध होकर मैं उनका (क्रोध से वाक्यपूर्ति करना भूल गये) यमराज का भी यमराज हूं (अश्वत्थामा की उक्ति)

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।
आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्त्तराष्ट्रा॥

लक्षागृह में आग लगाकर, भोजन में विष मिला कर और सभा में ले जाकर प्राण और धन का जिन लोगों ने अपहरण किया, पाण्डवों की स्त्री का जिन लोगों ने केश खींचा, वे धृत-राष्ट्र के पुत्र मेरे जीते स्वस्थ होवें अर्थात् कभी नहीं, वे मरें। (भीमसेन की उक्ति)

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभिः
न तभार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्
जरासन्धस्योरःस्थलमिव विरूपं पुनरपि
क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत ।

बाल्यावस्था से ही कौरवों के साथ मेरा वैर बढ़ा हुआ है और उस वैर का कारण युधिष्ठिर अर्जुन या तुम दोनों में से कोई नहीं है, इस कारण जरासन्ध के उरःस्थल के समान जोड़ी हुई सन्धि को भीम क्रोधपूर्वक तोड़ता है, तुम लोग उसे जोड़ो (क्रोधी भीम की उक्ति)

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुता सभृत्या ।

शत्रुओं के नाश से विरोधाग्नि बुझ जायगी, अतएव पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहें, रक्त से भूमि को शोभित

करनेवाले क्षत शरीर कुरुराज के पुत्र अपने भृत्यों के साथ स्वर्गस्थ हों (भीम की उक्ति)

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात् किं मे तवेवायुधाम्
सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले
क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्त्रेण नास्त्रेण यत् ॥

गुरु के शाप के कारण तुम्हारे ही समान क्या मेरे अस्त्र निर्वीय हैं, भय से रण छोड़ कर तुम्हारे ही समान मैं भी भाग आया हूं, स्तुति करने में निपुण सारथियों के वंश में मैं भी जन्मा हूं एक क्षुद्र शत्रु के किये अनिष्ट का क्या मैं ही अस्त्रों से नहीं, किन्तु आंसुओं से प्रतीकार कर रहा हूं। (अश्वत्थामा की उक्ति कर्ण के प्रति ।)

अप्रियाणि करोत्वेष वाचा शक्तोनकर्मणा ।
हतभ्रातृशतैदुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥

यह शब्दों के द्वारा अप्रिय करता है करने दो, क्या करे विचारा कार्य से तो कुछ कर नहीं सकता, इसके सौ भाई मारे गये हैं, इसके बकने का दुःख क्या (अर्जुन की उक्ति)।

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी
राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रम्
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनपटुः पाण्डवा यस्य दासाः
क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः ।

वह अभिमानी राजा कहां है, जिसने कपट द्यूत किया था, लाख के घर में आग लगवाया था, दुःशासन आदि सौ भाइयों का जो राजा था, कर्ण का जो मित्र था, द्रोपदी के

केश और वस्त्र खींचने में जो वड़ा निपुण था और पाण्डव जिसके दास हैं, वह दुर्योधन कहां है। मैं क्रोध से नहीं पूंछता, हम दोनों (भीम और अर्जुन) देखने के लिए आये हैं। (भीम की उक्ति)

कुर्वन्त्वाबाप्तहतानां रण शिरसि जना वन्हिसाद्देहभारान्
अश्रून्मिश्रं कथञ्चिद्ददतु जलममी वान्धवा वान्धवेभ्यः
मार्गन्तां ज्ञातिदेहान् हतनरगहने खण्डितान् गृध्रकङ्कै---
रस्तं भास्वान् प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रियंतां वलानि ।

सगे सम्बन्धी रण में मरे हुओं का शरीर दाह करें, वान्धव अपने अपने वान्धवों को आंसू युक्त जल किसी प्रकार दें, मरे हुए मनुष्यों के वन में अपने स्वजनों के शरीर, जो गृद्ध और कङ्को द्वार खण्डित किये गये हैं—ढूंढ़े, सूर्य अस्त हुआ, अब अपनी अपनी सेनाएं हटा लो (युधिष्ठिर की युक्ति)

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि
रुत्तंसयिष्यति कचाँस्तव देवि भोमः ।

फटकते हुए भुजाओं से धुमायी गयी प्रचण्ड गदा के आघात से दुर्योधन का जङ्घा मैं तोड़ दूँगा, उसके गाढ़े रुधिर से भीम तुम्हारे केशों को सवाँरेगा। (भीमसेन की प्रतिज्ञा)

भट्ट भल्लट ।

यह बहुत प्राचीन कवि हैं "भल्लट शतक" नाम का एक ग्रन्थ इनका पाया जाता है, जो कि इनके स्फुट श्लोकों का संग्रह है । जगट, कैयट, उव्वट मम्मट के समान भल्लट नाम भी है। इस नामसाम्य के कारण इनका कश्मीरी होना माना जाता है। यह कब उत्पन्न हुए थे इसका कुछ पता नहीं चलता। ग्यारहवीं सदी के मम्मट भट्ट ने अपने ग्रन्थ "काव्य प्रकाश" में इनके कई श्लोक उद्धृत किये हैं। लेखशैली से यह भार्तृहरि से पीछे के कवि मालूम होते हैं। शब्दालङ्कार पर इनका अत्यधिक प्रेम है। जिससे कालिदास के पीछे के ये कवि मालूम पड़ते हैं। इनके स्फुट श्लोक प्रायः अन्योक्ति प्रधान हैं और वे बड़े ही मार्के के हैं. नीचे के पद्यों से यह बात प्रमाणित होगी ।

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुध्या
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति ॥१॥

दान (प्रतिग्रह या मद) चाहनेवाले भ्रमरों को यदि गजराज ने मदान्ध होने के कारण अपने कानों को फटफटा कर दूर कर दिया तो इससे उसी गजराज के ही कपोलों की शोभा न होगी, इससे उसीकी हानि भी होगी, भ्रमर तो खिले कमलों पर जाकर आश्रय ले ही लेंगे ।

आस्त्रीशिशु प्रथितयैव पिपासितेभ्यः संरक्ष्यतेम्बुधिरपेयतयैव दूरात् ।
दंष्ट्राकरालमकरालकरालिताभिः किं भाययत्यपरमूर्मिपरम्पराभिः ॥२॥

स्त्री बच्चे सभी इस बात को जानते हैं कि प्यासों के भय से समुद्र अपने जल को खारा बना लेता है और इस प्रकार उसकी रक्षा करता है, फिर भी भयानक मकरों के कारण विकराल अपनी लहरियों से लोगों को क्यों भयभीत करता है ।

आवद्धकृत्रिमसटाजटिलांसभित्तिरारोपितो मृगपतेः पदवीं यदि श्वा ।
मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥३॥

यदि कुत्ते के कन्धे पर सटा बना कर वह सिंह के आसन पर बैठा दिया जाय तो वह मतवाले हाथियों के मस्तक फाड़ने वालेमृगराज का गर्जन कैसे करेगा ।

रज्ज्वा दिशः प्रवितताः सलिलं विषेण
पाशैर्मही हुतभुजा ज्वलिता वनान्ता
व्याधाः पदान्यनु सरन्ति गृहीत चापाः
कं देशमाश्रयतु यूथपति मृगाणाम् ॥४॥

सब दिशाओं में रस्सी फैल गयी है, जल में विष मिला दिया गया है और पाश से पृथ्वी घेर दी गयी और वन आग से जल रहा है धनुष लेकर व्याध पीछा कर रहा है, इस समय मृगराज किस देश में जाकर अपनी रक्षा करे ।

विशालं शाल्मल्या नयनसुभगं वीक्ष्य कुसुमं
शुकस्यासीद् बुद्धिः फलमपि भवेदस्य सदृशम्
इतिध्यात्वोपास्तं फलमपि च दैवात्परिणतं
विपाके तूलोऽन्तः सपदि मरुता सोऽप्यपहृतः ॥७॥

सेमल के बड़े और मनोहर फूल देखकर शुक ने समझा था कि इसका फल भी अति ही सुन्दर होगा यही समझकर उसने उस वृक्ष की सेवा की, भाग्य से फल भी हुआ पर पकने पर उसमें से रुई निकली और उसे भी वायु उड़ा ले गया ।

पथि निपतितां शून्ये दृष्ट्वा निरावरणाननां
नवदधिघटीं गर्वोन्नद्ध समुद्धतकन्धर.
निज समुचितास्तास्ताश्चेष्टाविकारशताकुलो ।
यदि न कुरुते काणः काकः कदा नु करिष्यति ॥ ८ ॥

शून्य मार्ग में खुले मुंहवाली दही की हड़ियां देखकर भी यदि काना कौआ गर्व न करे, अभिमान से अपना शिर ऊंचा न करे, मनोविकारों से व्याकुल होकर अपने अनुरूप चेष्टाएं न करे तो फिर वह कब करेगा ।

किं जातोऽसि चतुष्पथे घनतरुच्छायोऽसि किं छायया ।
युक्तश्चेत् फलितोऽसि किंफलभरैराढ्योऽपि किं सन्नतः ॥
हे सद्वृक्ष सहस्व सम्प्रति सखे शाखाशिखाकर्षण—
क्षोभामोटनभञ्जनानि भवतः स्वैरेव दुश्चेष्टितैः ॥ ११ ॥

चौरास्ते पर क्यों हो, घनी छायावाले क्यों हो, छाया से युक्त हुए तो फलवाले क्यों हो, यदि फल से युक्त हुए तो नय क्यों गये, हे मित्र अच्छे वृक्ष, अपने ही कर्मों से अब डालियों का तोड़ा जाना, टहनियों का खींचा जाना सहो ।

ग्रावाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मी हयो मानुषी,
मुक्तौघाः सिकता प्रवाललतिकाः शैवाल मम्भः सुधा,

तीरे कत्य महीरुहाः किमपरं नमापि रत्नाकरो
दूरे कर्णरसायनं निकटस्तृष्णापि नो शाम्यति

जहां के पत्थर मणि हैं, जलचर विष्णु भगवान हैं, लक्ष्मी जल की स्त्री हैं, मोतियां बाल हैं मूगों का लता शेवाल है, जल अमृत है, तीर पर कल्पवृक्ष है और क्या, नाम भी रत्नाकर है। भाई दूर से तो समुद्र की सभी बातें कानों को तृप्त करती हैं, पर समीप जाने से तो प्यास भी दूर नहीं होती।

भेकेन क्वणता सरोषपरुषं यत्कृष्णसर्पानने
दातुं कर्णचपेट मुज्झितभिया हस्तः सुमुल्लासित
पश्चाधोमुखमक्षिणी पिदधता नागेन तत्र स्थितं
तत्सर्वं विष मन्त्रिणो भगवतः कस्यापि लीलायितम्

क्रोध से कठोर बोलता हुआ इस मेढक ने कृष्णसर्प के गाल में चपत लगाने के लिए निर्भय होकर जो हाथ उठाया है और सांप ने नीचे मुंह करके जो अपनी आखें वन्द करली हैं, यह सब विष के मन्त्र जाननेवाले किसी भगवान् का खेल है।

भवभूति ।

इन्होंने महावीरचरित, उत्तररामचरित और मालती माधव नाम के तीन नाटक बनाये हैं। ये विदर्भदेश के पद्मपुर के रहनेवाले थे औदुम्बर ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम नीलकंठ और माता का नाम जतुकर्णी था। इनके गुरु का नाम

ज्ञाननिधि था। किसी किसी का कहना है कि भवभूति कुमारिल भट्ट के शिष्य थे, पर इस उक्ति में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है।

ये यशोवर्मा के आश्रय में रहते थे, काश्मीर के राजा मुक्तापीड़ ने जब यशोवर्मा को परास्त किया, तब भवभूति आदि कवि भी मुक्तापीड़ के यहां चले गये। राज तरङ्गिणी में लिखा है—

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः
जितो ययौ यशोवर्मा यत्पदस्तुतिवन्दिताम्॥

मुक्तापीड़ का समय सातवीं सदी का अन्तिम काल माना जाता है, इससे भवभूति का भी समय ७वीं सदी ही मानना चाहिए।

आचार्य गोवर्धन ने भवभूति के संवन्ध में लिखा है—

भवभूतेः संवन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति,
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा

ये करुणरस की कविता बनाने में सिद्धहस्त समझे जाते थे। इनकी करुणरस की कविता सुनकर पत्थर भी रो देता था, यही वात आचार्य गोवर्धन ने भी लिखी है।

स्वयं भवभूति भी सब रसों में करुणरस को ही मुख्य समझते थे। ये समझते थे कि अन्य रस इसी करुणरस के भेद हैं। भवभूति कहते हैं:—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्।

(उत्तर राम चरित से)

सर्वथा व्यवहर्तव्ये कुतो ह्यवचनीयता,
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ।

जिसका व्यवहार सदा होता है उसकी शुद्धता कैसे समझी जाय, स्त्री और वाणी की शुद्धता के विषय में प्रायः लोग सन्देह करते हैं ।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण,
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ।

प्रेमवश हम दोनों का मुंह पास पास था और क्रम रहित धीरे धीरे हम लोग कुछ कुछ बोलते थे, दृढ़ आलिंगन में एक एक हाथ व्यापृत थे, इस प्रकार हम लोगों को मालूम ही नहीं हुआ और रात ही बीत गयी ।

हे राम दक्षिण, मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्,
रामस्य वाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ।

रामचन्द्र शूद्र मुनि का वध करने के समय अपने हाथ से कहते हैं - हे दक्षिण हस्त, मरे हुए ब्राह्मण पुत्र के जीने के लिए शूद्र मुनि पर तलवार चलाओ, तुम तो राम के हाथ हो, तुम्हीं ने गर्भवती सीता का निर्वासन किया है, तुमको दया कहां से आ सकती है ।

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकवरीकमाननम्

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥

जानकी के सुन्दर कपोल पीले और दुर्वल होगये हैं, केश-पाश विखरे हुए हैं, वह करुणा की मूर्ति मालूम पड़ती हैं अथवा शरीरधारिणी विरह व्यथा मालूम पड़ती हैं, वह जानकी वन में आरही हैं।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद-
भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान्,
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेवहि तत्समस्तम् ।

रस एक ही है और वह करुणरस है, वही भेद के निमित्त अनेक रूपों में प्रतीयमान होता है, जिस प्रकार जल एक ही है, पर रूप भेद के कारण वह आवर्त, बुद्बुद, तरङ्ग आदि नाम धारण करता है।

सन्तानवाहिन्यपि मानुषाणां
दुःखानि संवन्धिवियोगजानि,
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोत सहस्रैरिव संप्लवन्ते ॥

मनुष्यों के सततरूप से बहनेवाला भी सम्वन्धियों के वियोग से उत्पन्न दुःख, प्रिय के दर्शन से और वढ़ जाता है वह दुःसह हो जाता है, उसकी हजारों धाराएँ वहने लगती हैं।

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः सभवति खुरास्तस्य चत्वार एव
शष्पाण्यत्ति प्रकरति शकृत् पिण्डकानाम्रमात्रान्
किं व्याख्यानैर्व्रजति सपुनर्दूरमे हयेहि यामः ।

महर्षि बाल्मीकि के आश्रम के विद्यार्थी घोड़े का वर्णन करते हैं। उसके पीछे की ओर बड़ी पूंछ है, उसे वह बार बार कँपाता है, उसकी लम्बी गर्दन है और चार खुर हैं, घास खाता है, आम के समान पीण्डाकार विष्टा करता है, कहने की क्या ज़रूरत है, यही जा रहा है, चलो हम लोग चलें।

कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्तिं सूते दुष्हृदो या हिनस्ति।
तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः

सत्यवाणी मनोरथों को पूरा करती है अपलङ्कों को दूर करती है कीर्ति फैलाती है और शत्रुओं का नाश करती है, धीरों का कहना है कि सूनृता वाणी मङ्गलों की माता है।

(मालती माधव से)

सानन्दं नन्दिहस्ताहतमुरजवाहूतकौमारबर्हि-
त्रासान्नासाग्ररन्ध्रं विशति फणिपतौ भोगसंकोचभाजि।
गण्डोड्डीनालीमालामुखरितककुभस्ताण्डवे शूलपाणे-
र्वैनायक्यश्चिरं वो वदनविधुतयः पान्तु चीत्कारवत्यः

महादेव ताण्डव नृत्य कर रहे हैं नन्दी बड़े आनन्द से मृदङ्ग बजा रहा है, मृदङ्ग का शब्द सुन कर कार्तिकेय का मयूर आया, उसको देखकर सांप डरे और वे गणेश की सूंड़ में घुसने लगे, गणेश चिल्लाने लगे और अपनी सूंड़ पटकने

लगे, इससे उनके कपोलस्थल पर बैठे हुए भौंरे उड़ने लगे और वे उड़कर दिशाओं में फैल गये, गणेश का वह चिल्लाना और सूंड़ का पटकना आप लोगों की रक्षा करे।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु वहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ।

भीतर रहनेवाला कोई कारण विशेष ही प्रेम का कारण है, बाहरी बातें प्रीति के कारण नहीं हो सकती, सूर्योदय के साथ कमल विकसित होता है और चन्द्रमा के उदय होने के समय चन्द्रकान्त मणि द्रवित होता है।

प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाढ़रागोदया—
स्तास्ता मुग्धदृशोनिसर्गमधुराश्चेष्टा भवेयुर्मयि ।
यास्वान्तःकरणस्य वाह्यकरणव्यापाररोधी क्षणा-
दाशंसापरिकल्पितास्वपि भवत्यानन्दसान्द्रो लयः ॥

प्रेम से आर्द्र प्रणय को (श्रेष्ठ प्रेम को) स्पर्श करनेवाली और परिचय के कारण जिसमें गाढ़ राग का उदय हुआ है, ऐसी स्वभावसुन्दर उसकी चेष्टाएँ यदि मेरे प्रति हों, जिनकी सम्भावना करने पर भी आनन्दमय विमोह उत्पन्न होजाता है, और वाहरी इन्द्रियों का ज्ञान ज़ाता रहता है।

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
संतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि
आनन्दनानि हृदयैकरसायनानि
दिष्ट्या मयाप्यधिगतानि वचोमृतानि ।

मुरझाये जीवपुष्प को विकसित करनेवाले, तृप्त करने वाले और सब इन्द्रियों को मोहित करने वाले हृदय के प्रसिद्ध रसायन और आनन्द देनेवाले वचनामृत मैंने भी सुनें, यह प्रसन्नता की बात है।

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसा-
त्प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥

हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, उद्वेग बढ़ता जाता है पर वह दो टुकड़े नहीं होजाता। इन्द्रिय-ज्ञान सून्य यह शरीर मोह प्राप्त करता है, पर प्राण नहीं जाते, अन्तर्दाह शरीर को तपा रहा है, पर जला नहीं देता।

अनियतरुदितस्मितं विराज-
त्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलकं शिशोःस्मरामि
स्खलदसमञ्जस मुग्ध जल्पितं ते॥

जिसके रोने हँसने का कोई ठिकाना ही नहीं था, फूल की कील के समान छोटे छोटे दांत थे, तुम्हारी बाल्यावस्था के उस मुख का मैं स्मरण करता हूँ और स्पष्ट तुम्हारी भोली भाली बोली को स्मरण करता हूँ।

भर्तृहरि।

शतकत्रय वाक्यपदीप और भट्टीकाव्य ये तीन ग्रन्थ भर्तृ-हरि के नाम से प्रसिद्ध हैं। पर इन तीनों के कर्ता एक भर्तृ-हरि नहीं हैं। भर्तृहरि भी तीन हैं और उन लोगों ने एक एक

ग्रन्थ बनाया है। शतकत्रय के कर्त्ता भर्तृहरि विक्रमादित्य के भाई थे। इनकी स्त्री का नाम पिंगला था। पिंगला के दुर्व्यवहारों से दुःखी होकर इन्होंने संसार का त्याग किया। इनका काल ईसवी सदी के ५७ वर्ष पहले है। वाक्यपदीप व्याकरण का एक बहुत प्रमाणिक और माननीय ग्रन्थ है। शतकत्रय में नीति शृङ्गार और वैराग्य का वर्णन है और भट्टीकाव्य में व्याकरण के प्रयोगों की प्रधानता रखकर रामचरित का वर्णन किया गया है। शतकत्रय के कर्ता राजा विक्रमादित्य के भाई हैं जो कि ईसवी सदी के पहले हुए थे, वाक्यपदीप के कर्ता भर्तृहरि छठी सदी के अन्त और सातवीं सदी के प्रारम्भ में हुए थे। भट्टीकाव्य के कर्ता भर्तृहरि नहीं किन्तु भट्टी हैं। उन्होंने स्वयं यह बात भट्टीकाव्य के अन्त में लिखी है।

नीचे शतकत्रय के कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं:—

अज्ञः सुखमाराध्या सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः
सज्ञानलव दुर्विदग्धं ब्रह्मापिचत नरं न रञ्जयति।

मूर्ख मनुष्य परिश्रम के विना ही समझाया जा सकता है और जो विद्वान् है वह और भी विना परिश्रम के समझाया जा सकता है, पर थोड़ा जाननेवाले मनुष्य को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते,
छेत्तुं वज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते,
माधर्यं मधुविन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।

वह मनुष्य हाथी को कोमलकमल के सूत्रों से बांधना चाहता है। शिरीष कुसुम के द्वारा हीरे को छेदना चाहता है और मधुविन्दु के द्वारा क्षार समुद्र के जल को मीठा बनाना

चाहता है जो दुष्टों को अमृतमयी वाणी से सज्जनों के मार्ग पर ले जाना चाहता है।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः
तृणं न खादन्नपिजीवमान
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।

साहित्य सङ्गीत और कला से विहीन मनुष्य पूंछ सींग रहित साक्षात् पशु हैं, वह बिना घास खाये ही जीता है और यह उसका बड़ा भारी भाग्य है।

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता
नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धाम्
वैदग्ध्य कीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः।

यदि भाग्य हंस पर बहुत अप्रसन्न हो जाय तो उसका कमल वन में रहना छुड़ा सकता है, पर दूध और जल को अलग करने की जो उसकी निपुणता की कीर्ति है, उसे वह नहीं छीन सकता।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।

वे पुण्यात्मा और रसों को वश में रखनेवाले कवीश्वर विजयी होते हैं, जिनके यश के शरीर में जरा और मरण का भय नहीं रहता।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण,

तस्मिँश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।

राजन्, यदि तुम इस पृथ्वीरूपी गौ को दूहना चाहते हो तो बछड़ारूपी इस प्रजा का पालन करो, जब तुम प्रजा का पालन करोगे तो यह भूमि कल्प वृक्ष के समान अनेक प्रकार के फल देगी ।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा
न भेजिरे भीमविषेणभीतम्,
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
ननिश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ।

देवता अमूल्य रत्नों को पाकर तृप्त न हुए भयङ्कर विष से भी वे न डरे, जब तक अमृत न मिला तब तक उन लोगों ने दम न लिया, समुद्र मथन करते ही रहे, धीर मनुष्य अपने उद्देश्य को विना सिद्ध किये विश्राम नहीं लेते ।

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानाम्
मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलितानम्,
सुरतजनितखेदस्विन्नगण्डस्थलीना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ।

जिनके विखरे हुए केश आकर छाती पर पड़े हैं, जिनकी आखें थोड़ी थोड़ी खुली हैं और बन्द हैं, सुरत की थकावट से जिनके कपोलों पर पसीना आगया है, ऐसी स्त्रियों का अधरमधु भाग्यवान् पीते हैं ।

मधुरयं मधुरैरपि कोकिला-
कलकलैर्मलयस्य च वायुभिः

विरहिणः प्रणिहन्ति शरीरिणो
विपदि हन्त सुधापि विषायते ।

यह वसन्त ऋतु कोकिल के मधुर शब्द और मलयाचल के वायु से भी विरहियों को मार रहा है, दुःख की बात है कि विपत्ति के समय अमृत भी विष बन जाता है ।

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः
यावदेव न कुरंगचक्षुषां ताड्यते चपललोचनाञ्चलैः ।

पण्डितों के भी हृदय में तभी तक विवेक का निर्मल दीपक प्रकाश करता है, जब तक वे मृगनेत्रों के चञ्चल कटाक्षों से तड़ित नहीं होते ।

मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे
कान्तापयोधरतटे रसखेदखिन्नः
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः ।

जो मनुष्य थक कर मतवाले हाथी के मस्तक के समान बड़े कान्ता के स्तनतट पर वक्षः स्थल रखकर भुज पंजर से बंधा हुआ शीघ्रही सोकर रात बिता देता है, वह धन्य है ।

यद्व यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्यास्पृहा मनोज्ञेऽपि ।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामः सरोजिन्याः ॥

जो जिसको सुन्दर नहीं मालूम होता वह उसको नहीं चाहता है, चन्द्रमा सुन्दर है पर कमलिनी उसपर प्रीति नहीं करती ।

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः

मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्चमाम् ।

धन प्राप्ति की लालसा से पृथ्वी को खोदा, पर्वत की धातुओं को फूंका, समुद्र पार किया, बड़े यत्न से राजाओं को सन्तुष्ट किया, मन्त्राराधन करने के लिए श्मशान में रातें बितायीं, पर एक फूटी कौड़ी भी न मिली, हे तृष्णे, अब तो मुझे छोड़ ।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये,
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ,

संसार के कष्टों को दूर करने के लिए ईश्वर के चरणों का विधिवत् ध्यान नहीं किया, स्वर्ग के कपाट खोलने के लिए धर्म भी उपार्जित नहीं किया, स्त्री का स्वप्न में भी आलिङ्गन नहीं किया, हम लोग केवल माता के यौवनछेदन करने के लिए कुठार हैं ।

अजानन्माहात्म्यं पततु शलभस्तीव्रदहने,
स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम् ,
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिला-
न्नमुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ।

पतंग बिना जाने अग्नि में कूदता है, मछली भी अज्ञान से ही वनसी का मांस खाती है, पर हम लोग जानबूझ कर विपत्तियों के आकर बिषय सुख को नहीं छोड़ते, यह मोह की ही महिमा है ।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरस्त्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृहाः

तुम राजा हो, तो हम भी गुरु की उपासना से प्राप्त ज्ञान के कारण उन्नत आत्माभिमान रखते हैं। तुम धन के द्वारा प्रसिद्ध हो, और हमारा यश विद्वान् लोग दिशाओं में फैलाते हैं, इस तरह हममें और तुममें कुछ बहुत भेद नहीं है, पर जब तुम हम से पराङ्मुख हो तो हम भी बिलकुल तुम्हारी ओर से लापरवाह हैं।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः
सम इह परितोषो निर्विशेषाविशेषः
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि चपरितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ।

हम लोग वल्कल से सन्तुष्ट होते हैं और तुम्हारे लिए कपड़े चाहिए, पर हमारे तुम्हारे सन्तोष में कोई भेद नहीं, दरिद्र तो वह है जिसकी तृष्णा बड़ी है, जब मन सन्तुष्ट है तो धनी कौन और दरिद्र कौन ?

भारवि ।

किरातार्जुनीय काव्य के कर्ता महाकवि भारवि सातवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। यह बात एक शिलालेख के नीचे लिखे श्लोक से प्रमाणित होती है।

येनायोजि न वेश्म
स्थिरमर्थविधौ विवेकिनाजिनवेश्म,
स विजयतां रविकीर्तिः
कविताश्रितकालिदास भारविकीर्तिः ।

महाकवि दण्डी ने किरातार्जुनीय के १५ वें सर्ग के कई श्लोक अपने काव्यादर्श में उद्धृत किये हैं। किरातार्जुनीय के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ इन्होंने लिखा है कि नहीं, इसका पता नहीं मिलता ।

उच्यतां स वचनीयमशेषं
नेश्वरे परुषता सखि साध्वी ।
आनयैनमनुनीय कथं वा
विप्रियाणि जनयन्ननुनेयः ।

उसकी निन्दा चाहे जितनी करो, पर स्वामी के विषय में कठोरता अच्छी नहीं, किसी प्रकार अनुकूल बनाकर लेआओ प्रतिकूलाचरण से अनुकूल न बनाना ।

द्वारि चक्षुरधिपाणि कपोलो
जीवितं त्वयि कुतः कलहोस्याः ।
कामिनामिति वचः पुनरुक्तं
प्रीतये नवनवत्वमियाय ॥

"द्वार की ओर आंखे हैं, हाथ पर कपोल हैं, और जीवन तुमपर अवलम्बित है वह वारबार कलह क्यों करेगी" कहा हुआ यह वचन कामियों की प्रसन्नता के लिए नयाही मालूम पड़ता था ।

प्रयच्छतोच्चैःकुसुमानि मानिनी
विपक्षगोत्रं दयितेन लम्भिता ।

न किंचिदूचे चरणेन केवलं
लिलेख बाष्पाकुललोचना भुवम् ॥

पति ने पुष्प देने के समय उस मानवती स्त्री को उसकी सौत के नाम से पुकारा, यह सुनकर मानवती ने कुछ कहा नहीं, उसकी आंखे भर आयीं और पैरों से भूमि खुरचने लगी ।

निपीयमानस्तवका शिलीमुखै-
रशोकयष्टिश्चलबालपल्लवा ।
विडम्बयन्ती ददृशे वधूजनै-
रमन्ददष्टौष्ठकरावधूननम् ॥

स्त्रियों ने अशोकलता को देखा कि भ्रमर उसके पुष्प, गुच्छे का पान कर रहे हैं और उसके कोमल पत्ते हिल रहे हैं, मालूम पड़ता था कि उसका ओठ काट लिया गया है जिससे वह हाथ पटक रही है ।

करौ धुनाना नवपल्लवाकृती
वृथा कृथा मानिनि मा परिश्रमम् ।
उपेयुषी कल्पलताभिशङ्कया
कथं न्वितस्त्रस्यति षट्पदावलिः

हे मानिनि ! तुम्हारे हाथ नवीन पत्ते के समान हैं, उनको पटक कर क्यों व्यर्थ परिश्रम करती हो, कल्पलता समझ कर भ्रमरों की पंक्ति तुम्हारे पास आरही है, वह क्यों डरे ।

व्यपोहितुं लोचनतो मुखानिलै-
रपारयन्तं किल पुष्पजं रजः ।
पयोधरेणोरसि काचिदुन्मना
प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी ॥

किसी स्त्री की आँख में पुष्पधूल पड़ गयी थी, मुंह से फूंक कर पति उसे निकाल रहा था, पर वह निकाल न सका, अतएव उस स्त्री ने पति को स्तन से धक्का मारा, उसके स्तन ऊंचे और मोटे थे।

प्रियकरप्रहिताम्बुकणच्छटा-
च्छुरणमीलितलोचनयाप्यहो।
हृदि कयाचिदसह्य मनोभव-
ज्वलनतापरुजा जगृहेतराम् ॥

पति अपने हाथों से जल के छींटे देरहा था और उन छींटों से स्त्री की आंखे बन्द होजाती थी, पर इससे उस स्त्री के हृदय में सहन करने के अयोग्य कामाग्नि उत्पन्न होगयी।

करौ धुनाना नवपल्लवाकृती
पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमा।
सखीष्वनिर्वाच्यमधाष्ट्र्य दूषितं
प्रियाङ्कसंश्लेषमवाप मानिनी ॥

अगाध जल में कोई स्त्री घबड़ा गयी और वह नवपल्लव के समान अपने हाथों को कँपाने लगी, तब उसे प्रियतम का आलिङ्गन प्राप्त हुआ, यह सखियों से कहने योग्य भी न था और धृष्टता से दूषित भी न था।

प्रियेण संग्रथ्य विपक्षसंनिधा-
वुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने।
स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां
वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ॥

सौंत के सामने ही गूँथ कर प्रिय ने उसके गले में माला पहना दी, वह माला जल के कारण खराब होगयी है, तौ भी वह छोड़ती नहीं, गुण प्रेम में रहता है, किसी वस्तु में नहीं

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलै-
रपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः ।
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां
द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः ॥

जल में स्नान करने के कारण उसके बाल बिखर जाते हैं और फैल जाते हैं, जिससे उसका मुंख ढक जाता है भ्रमर समूह से छिपे हुए कमल के समान उस समय स्त्रियों के मुख मालूम पड़ते थे ।

रम्यतामुपगते नयनानां
लोहितायति सहस्रमरीचौ ।
आससाद विरहय्य धरित्रीं,
चक्रवाकमिथुनान्यभितापः

सूर्य जब आंखों को प्रिय मालूम होने लगा और जब वह लाल हो गया, उस समय चक्रवाक की दम्पती ने पृथिवी का त्याग किया और उसे ताप होने लगा ।

हृदये दयितेन हृते वपुषि सवेपथुनि पथि निरालोके ।
अयि कथय कथमनङ्ग प्रियगृह मभि सारिकां नयसि ॥

हृदय प्रिय ने हर लिया, शरीर कांप रहा है, रास्ते में अन्धकार है, कामदेव, अभिसारिका को पति के घर में तुम कैसे ले जा रहे हो ।

दुर्दिननिशीथतिमिरे निःसंचारासु नगरवीथीषु ।
पत्यौ विदेशयाते परं सुखं जघनचपलायाः ॥

दुर्दिन की अन्धकारमयी अर्धरात्रि में, नगर के मार्गों के सूनसान होने पर और पति के विदेश जाने पर, जघन चपला स्त्रियों को बहुत सुख होता है ।

कान्तवेश्म वहु संदिशतीभि-
र्यातमेव रतये रमणीभिः ।
मन्मथेन परिलुप्तमतीनां
प्रायशः स्खलितमप्युपकारि ॥

प्रिय को बारबार सन्देश भेजनेवाली स्त्रियाँ रति के लिए चली हो गयीं, काम के वश होने के कारण उनकी बुद्धि लुप्त हो गयी थी । देखा जाता है कि कहीं कहीं विचलित होने से भी उपकार ही होता है ।

कामिनीवदननिर्जितकान्तिः शोभितुं नहि शशाक शशाङ्कः ।
लज्जयेव विमलं वपुराप्तुं शीधुपूर्णचषकेषु ममज्ज ॥

चन्द्रमा शोभित न हो सका, क्योंकि उसकी शोभा को स्त्रियों के मुख ने जीत लिया था । इससे लज्जित होकर सुन्दर शरीर प्राप्त करने के लिए वह मदिरा से भरे प्याले में डूब गया ।

यदा विगृह्णाति तदा हतं यशः
करोति मैत्रीमथ दूषिताः गुणाः
स्थितिं समीक्ष्योभयथा परीक्षकः
करोत्यवज्ञोपहतं पृथग्जनम् ॥

यदि उससे विरोध करें तो यश नष्ट होता है, यदि मित्रता की जाय तो सब गुणों पर ही पानी फिरता है, इस प्रकार

चारों ओर विचार कर बुद्धिमान मनुष्य छोटे आदमियों का तिरस्कारही करते हैं ।

तावदाश्रीयते लक्ष्म्या तावदस्य स्थिरं यशः ।
पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते ॥

तभी तक इसके पास लक्ष्मी रहती है, तभी तक इसका यश स्थिर रहता है। और पुरुष भी तभी तक है जब तक इसका मान बना हुआ है ।

सपुमानर्थवजन्मा यस्य नाम्नि पुरः स्थिते ।
नान्यामङ्गुलिमभ्येति संख्यायामुद्यताङ्गुलिः ॥

उसी मनुष्य का जन्म लेना सार्थक है, उत्तम मनुष्यों की गणना के समय जिसके नाम के लिए पहले अंगुली उठती है और पुनः दूसरी कोई अंगुली नहीं उठती, उसके समान दूसरा नहीं है । अर्थात् न तो कोई उसके बराबर ही है और न उसके ऐसा ही है ।

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं
चयमास्कन्दति भस्मनां जनः ।
अभिभूतिभयादसूनतः
सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः ॥

जलती हुई आग को कोई नहीं छूता, पर भस्मराशी को सभी छूते हैं । इसी कारण पराजय के डर से मानी मनुष्य सुख से प्राणछोड़ते हैं, पर अपना तेज नहीं छोड़ते ।

सहसा विदधीत न क्रिया–
मविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृष्यकारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

जल्दी में कोई काम न करना चाहिए, क्योंकि अविवेक सब आपत्तियों का मूल है, गुणों में अनुराग रखनेवाली सम्पत्तियां विचारपूर्वक कम करनेवालों को स्वयं चुनती हैं।

सर्वथा स्वःहतमाचरणीयं
किं करिष्यति जनो बहुजल्पः
विद्यते नहि स कश्चिदुपायः
सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥

सब प्रकार से अपना हित करना चाहिए, बहुत बोलने वालों से कुछ भी नहीं होता, संसार में ऐसा कोई भी उपाय नहीं है जिससे सब लोग प्रसन्न किये जा सकें।

मुनिरस्मि निरागसः कुतो मे
भयमित्येष न भूतयेऽभिमानः ।
परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां
किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् ॥

मैं मुनि हूं, निरपराध हूं, मुझे क्या भय है, इस प्रकार का अभिमान ठीक नहीं, क्योंकि दूसरों के उदय से जलने वाले दुरात्माओं के लिए कुछ असाध्य नहीं।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथा विधा-
नसंवृताङ्गा न्निशिता इवेषवः ॥

उन मनुष्यों का पराजय हो जाता है, जो छलकपट करनेवालों के प्रति छलकपट नहीं करते। जिस प्रकार

खुले अंग के मनुष्यों के शरीर में घुस कर वाण उन्हें मार देते हैं उसी प्रकार धूर्त मनुष्य भी ।

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं
गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ।
गुणाधिके पुंसि जनोऽनुरज्यते
जनानुरागप्रभवा हि संपदः ॥

जितेन्द्रिय होना विनय का कारण है, गुण से विनय की वृद्धि होती है, अधिक गुणवान् से मनुष्य प्रेम करते हैं और मनुष्यों के प्रेम से ही सब सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं ।

महाकवि भास ।

ये संस्कृत के बहुत बड़े कवि हैं । कहा जाता है कि इन्हों ने २२ नाटक बनाये थे । भास के बनाये नाटक अब तक अनुपलब्ध थे, पर महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री की कृपा से ट्रावंकोर संस्कृत सीरीज़ में इनके कतिपय नाटक प्रकाशित हुए हैं । यह प्रसन्नता की बात है । इनके विषय में एक श्लोक है जिससे संस्कृत साहित्य में इनका क्या स्थान है इसका पता लगता है ।

"भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः"

भास कवि कविता कामिनी के हास हैं । ये कवि कालिदास से भी प्राचीन हैं । कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में लिखा है ।

"प्रथितयशसांभाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य कुतौ कथं बहुमानः"

भास के नाटकों में स्वप्नवासवदत्त बड़ा ही प्रसिद्ध नाटक है। इसके विषय में राजशेखर ने लिखा है।

भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्,
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।

महाकवि बाणभट्ट ने भी हर्षचरित में भास का उल्लेख किया है।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिवः ।

इन बातों से और इनके श्लोकों से इनके महाकवि होने का परिचय मिलता है।

दग्धे मनोभव तरौ बालाकुचकुम्भसंभृतैरमृतैः ।
त्रिवलीकृतालवाला जाता रामोवली वल्ली ॥ १ ॥

काम वृक्ष के जल जाने पर स्तनों में रक्खे हुए अमृत के द्वारा त्रिवली के आलबाल में रोमावली रूपी वल्ली उत्पन्न हुई !

येया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं
ग्राह्यः स्वभावललितो विकटश्च वेषः ॥
येनेदमीदृशमदृश्यत मोक्षवर्त्म
दीर्घायुरस्तु भगवान्स पिनाकपाणिः ॥ २ ॥

शराब पीना चाहिए, स्त्री का मुंह देखना चाहिए, स्वभाव सुन्दर और विकटवेष ग्रहण करना चाहिए, जिसने मोक्षका मार्ग ऐसा बतलाया है, वह पिनाकपाणि भगवान् शिव चिरंजीवी हों।

तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराढ्यः
श्रृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवाकृतज्ञः ।

तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तमन्तः
कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥ ३ ॥

सूर्य तीखा तप रहा है, जैसे हाल का धन पाया हुआ कोई नीच। मृग अपनी सींग छोड़ रहा है जैसे अकृतज्ञ मित्र। जल स्वच्छ हो रहा है जैसे मुनि का अन्तः करण और दरिद्र कामी के समान पङ्क सूख रहा है।

बाला च सा विदितपञ्चशरप्रपञ्चा,
तन्वी च सा स्तनभरोपचिताङ्गयष्टिः।
लज्जां समुद्वहति सा सुरतावसाने
हा कापि सा किमिव किं कथयामि तस्याः ॥ ४ ॥

वह बाला है, पर कामदेव के प्रपञ्चों का उसे ज्ञान है, वह तन्वी है पर स्तनों की बाढ़ से उसका शरीर भी बढ़ गया है, सुरत के अन्त में वह लज्जित हो जाती है। वह कौन है कैसी है, यह बात मैं कैसे कहूं।

कपाले मार्जारः पय इति करांल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी संकलयति।
रतान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥ ५ ॥

चन्द्रमा की स्वच्छ किरणें कटोरे में पड़ी हैं, बिल्ली उसे दूध समझ कर चाट रही है। वृक्षों के छिद्र में पड़ी किरणों को कमल तन्तु समझ कर हाथी खीचता है, बिछौने पर पड़ी हुई किरणों को स्त्रियां वस्त्र समझती हैं इसीसे रतान्त में उसे खींचती हैं। इस प्रकार प्रभा से मत्त होकर चन्द्रमा समस्त जगत को पागल बना रहा है।

कठिनहृदये मुञ्च क्रोधं सुखप्रतिघातकं
लिखति दिवसं यातं यातं यमः किल मानिनि ।
वयसि तरुणे नैतद्युक्तं चले च समागमे
भवति कलहो यावत्तावद्वरं सुभगे रतम् ॥ ६ ॥

हे कठोर हृदयवाली क्रोध छोड़ दो, क्योंकि यह सुख का नाशक है, हे मानिनि, बीते दिनों की संख्या यमराज लिखा करता है । नयी उमर में यह बात अच्छी नहीं, हाथ भी तो चञ्चल है इसका क्या ठिकाना । जिस समय तुम कलह कर रही हो उस समय में तुम्हें प्रेम करना चाहिए ।

कृतककृतकैर्मायासख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता
निभृत निभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम् ।
भवतु विदितं नेष्टाहं ते वृथा किमु खिद्यसे,
ह्यहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥ ७ ॥

बनावटी व्यापारों से तुमने हमको ठग लिया है, तुम्हारे छिपे हुए कार्यों से मुझे इस बात का ज्ञान हो गया है । अच्छा, मालूम हो गया, तुम्हें हम प्रिय नहीं है, व्यर्थ खेद क्यों करते हो, तुम स्नेह रहित हो और हममें सहन करने की शक्ति नहीं, चलो दोनों बराबर हुए ।

विरहिवनितावक्त्रौपम्यं विभर्ति निशापति-
र्गलितविभावस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवेः
अभिनववधूरोषस्वादुः करीषतनूनपा
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः ॥ ८ ॥

विरहिणी स्त्री के मुख के समान चन्द्रमा हो गया है, नष्ट विभव की आज्ञा के समान सूर्य की द्युति चिकनी हो गयी है,

नयी बहू के क्रोध के समान भूसी की आग मनोहर हो गयी है, दुष्ट पुरुषों के आलिङ्गन के समान ठण्ढी हवा चल रही है ।

> यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथञ्चिदुपार्जितं
> तदपि सकलं चारु स्त्रीणां मुखेव विलोक्यते ।
> सुरसुमनसः श्वासामोदे शशीच कपोलयो–
> रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ॥ ९ ॥

देवताओं ने बड़े कष्टों से समुद्र में से जो वस्तु पायी है, वे सब सुन्दर स्त्रियों के मुख पर देखी जाती हैं । श्वासकी सुगन्धि में सुरसुमनस (देवता या देवताओं का फूल) दोनों गालों पर चन्द्रमा, ओष्ठ में अमृत और टेढ़ी आँखों में विष है ।

> दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टे प्रहृष्टा तथा ।
> दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते ॥
> कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति
> भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता ॥ १० ॥

मेरे दुःखित होने पर जो दुःखित होती है और प्रसन्न होने पर प्रसन्न होती है, मेरी दीनता में जो दीन होजाती है, मेरे क्रोध के समय जो कोमल बातें करती है, समय समझती है, समझदारी की बातें करती है और मेरे मित्रों पर अनुराग करती है, वह एकही स्त्री भार्या, मन्त्री, सखा, नौकर अनेक हो गयी है ।

भिक्षाटन ।

ये भिक्षाटन नामक एक खण्ड काव्य के कर्ता हैं। इनका दूसरा नाम शिवभी है। इन्होंने अपने काव्य में कालिदास और वाण का उल्लेख किया है। इनकी कविताएं बड़ी सरस हैं। त्रिपुरदाह के वाद शिव ने जो भिक्षा की है, उसी कथानक को लेकर इन्होंने अपना भिक्षाटन काव्य बनाया है। भिक्षाटन काव्य के कर्ता होने के कारण ये भी उसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

भिक्षाटनेन पुरुहूतपुराङ्गनाना–
माकस्मिकोत्सवविधायिनि चन्द्रमौलौ ।
तासामनङ्गशरजर्जरमानसानां
नानाविधानि चरितानि वयं वदामः ॥

महादेव अमरावती नगरी में भिक्षाटन के लिए निकले, उससे देवाङ्गनाएँ आकस्मिक उत्सव करने लगीं, अनङ्ग वाण से जर्जर उन स्त्रियों के अनेक प्रकार के चरित मैं कहता हूँ।

काचिन्निवारितवहिर्गमना जनन्या
द्रष्टुं प्रियं भवनजालकमाससाद ।
तस्या विलोचनमदृश्यत दाशदत्त
यन्त्रोपरुद्धशफरोपमितं क्षणेन ॥

किसी की माता ने उसे वाहर जाने से रोक दिया, अतएव वह प्रिय को देखने के लिए घर की खिड़कीपर चली गयी, उस समय उसकी आखें वंशी में फंसी हुई मछली के समान मालूम होती थीं।

काचिन्निवारितवहिर्गमना जनन्या
द्रष्टुं हरं भवनजालकमाससाद ॥

तस्या विलोचनयुगं घनजालयन्त्र-
संरुद्धमीनमिथुनोपमितं बभूव ॥

किसी स्त्री की माता ने उसे वाहर जाने से रोक दिया, इसलिए वह महादेव को देखने के लिए घर की खिड़कीपर गयी, उस समय उसकी आखें जालबद्ध दो मछलियों के समान मालूम होती थीं ।

कृच्छ्रेण कापि गुरुणैव जनेन रोध-
मुल्लङ्घ्य नायकसमीपभुवं प्रतस्थे ॥
हा हन्त शीघ्रगमनप्रतिरोधहेतु-
स्तस्याः पुनः स्तनभरोपि गुरुर्बभूव ॥

कोई स्त्री बड़े कष्टों से भीड़ को डाँक कर नायक के पास पहुँचने के लिए प्रस्थित हुई, पर हाय, उसका स्तनभार उसके शीघ्र गमन का बाधक हुआ, वह शीघ्र न चल सकी ।

प्राणेश विज्ञप्तिरियं मदीया
तत्रैव नेया दिवसाः कियन्तः ।
संप्रत्ययोग्यस्थितिरेष देशः
करा यदिन्दोरपि तापयन्ति ॥

हे प्राणेश, मेरा यह निवेदन है अभी कुछ दिन आप वहीं बितावें, क्योंकि इस समय यह देश रहने के योग्य नहीं है, क्योंकि यहां चन्द्रमा की किरणें भी ताप देती हैं ।

अस्थानगामिभिरलंकरणैरुपेता
भूयः पदस्खलननिन्हुतिरप्रसन्ना ।
वाणीव कापि कुकवेर्जनहस्यमान्त
द्वाडिनर्गता निजगृहाद्वनिता मदान्धा ॥

जल्दी के कारण किसी स्त्री ने गहनों को यथास्थान नहीं पहना था, वह अनुराग से अन्धी हो गयी थी, वह शीघ्रता-पूर्वक घर से निकली, उसके पैर फिसल गये, वह उनको छिपाने लगी, इन कारणों से वह देखने में भी अच्छी नहीं मालूम होती थी, कुकवि की वाणी के समान वह लोगों की हँसी की पात्र हुई।

खलेषु सत्सु निर्याता वयमर्जयितुं गुणान्
इयं सा तस्करग्रामे रत्नक्रयविडम्बना ॥

खलों की वर्तमानता में हम लोग गुण अर्जन करने निकले, हम लोगों का यह प्रयत्न चोरों के गांव में रत्न खरीदने का उपहासास्पद प्रयत्न के समान है।

वर्धेते स्पर्धयेवोभौ संपदाशतशाखया ।
अङ्कुरोवस्करोद्भूतः पुरुषश्चाकुलोद्भवः ॥

स्पर्द्धा से ये दोनों अनेक प्रकार की सम्पत्तियों द्वारा बढ़ते हैं, कूड़े करकट से उत्पन्न अङ्कुर और दुष्कुल में उत्पन्न पुरुष।

भ्रश्यन्ति यानि विरहे विदलन्ति यानि
योगे प्रियेण सखि किं वलयैः फूलं तैः ।
नैवास्ति यैर्विपदि संपदि चोपयोग-
स्तैः संगमं न खलु वाञ्छति कोपि मर्त्यः ॥

जो वलय विरह की दशा में गिर जाते हैं और प्रिय से संयोग की दशा में टूट जाते हैं, हे सखि! ऐसे इन कंकणों से क्या लाभ, जिसका सम्पति और विपत्ति में कोई उपयोग नहीं उसका साथ कोई भी मनुष्य नहीं चाहता।

भोजदेव ।

ये मालवा के प्रसिद्ध राजा थे, इनकी राजधानी धारा-नगरी में थी । ई० सन् की ग्यारहवीं सदी इनका समय है । ये प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ और संस्कृतानुरागियों के आश्रयदाता थे । इन्होंने कई ग्रन्थ बनाये थे, सरस्वतीकण्ठाभरण चम्पू-रामायण आदि इनके ग्रन्थों का संस्कृतज्ञों में बड़ा आदर है, ये स्मृतिशास्त्र के भी पण्डित थे, मनु संहिता की टीका भी इन्होंने बनायी थी ।

इनके पिता का नाम सिन्धुराज था । सिन्धुराज के पश्चात् मुञ्जदेव राजा हुए जो भोजदेव के चाचा थे, मुञ्जदेव ने भोज को मरवाने का प्रयत्न किया था, पर ये बच गये । इनके कई दान पत्र हैं, जो प्राचीनलेखमाला में संगृहीत हैं उनके देखने से भोजराज की दानशक्ति का पता मिलता है ।

अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा ।
शशाङ्कशङ्खसंभिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा ॥

लहरियों से दिगन्त और आकाश के मध्यभाग को जिसने ढक लिया है और जो चन्द्रमारूपी शंख तथा तारारूपी मोतियों से व्याप्त है ।

तरंगाकृष्टमार्तण्डतुरंगायासितारुणा ।
फेनच्छन्नस्वमातङ्गमार्गणव्यग्रवासवा ॥

सूर्य के घोड़ों को जिसने मार्गपर लगादिया है, पर सूर्य के घोड़ों ने मार्ग ढूँढ़ने के लिए अरुण को पुनः परिश्रम दिया है, और फेन से ढंकजाने के कारण जिसने इन्द्र को अपना हाथी ढूँढ़ने के लिए व्याकुल किया है ।

आविःशाखोशिखान्नेयनन्दनद्रुमकर्षणा ।
एकोदकनभोमार्गदिङ्मूढदिवसेश्वरा: ॥

दिखायी पड़नेवाली शाखा और पल्लवों के द्वारा जिसके नन्दन वन के वृक्षों के कम्पित करने की वात मालूम पड़ती है, जिसके जलसे आकाश मार्ग के डूब जाने के कारण दिशाओं का ज्ञान जाता रहा ।

आवर्तगर्तसंभ्रान्तविमानप्लवविप्लवा ।
नीलजीमूतशैवालकृतरेखाहरित्तटा ॥

जिसके आवर्तरूपी गढ़े में भ्रमण करनेवाले विमान डूबते उतराते हैं, नीले मेघरूपी शैवालों से जिसने अपने तटों को भूषित किया है ।

अवलेपभराक्रान्ता सुरलोकतरंगिणी ।
पपात पार्वतीकान्तजटाकान्तारगह्वरे ॥

गर्व के भार से युक्त देवलोक की वह नदी शिव की जटा के गह्वर में गिरी है ।

दुःखे सुखे च रज एव वभूव हेतु-
स्तादृग्विधे महति गौतमधर्मपत्न्याः ।
यस्माद्गुणेन रजसा विकृतिं गता सा
रामस्य पादरजसा प्रकृतिं प्रपेदे ॥

गौतम की स्त्री अहल्या को बड़े दुःख और सुख का कारण रज ही हुआ । रजोगुण के द्वारा उसे पत्थर की योनि मिली और रामचन्द्र के चरणरज से पुनः उसे अपना स्वरूप मिला ।

आवालवृद्धमनुगच्छति रामभद्र-
मेषा पुरी तदिह मा खलु निर्गुणा स्याम् ।

इत्यादरादिव धरा बहुधा विधाय
धूलिच्छलान्निजतनुं तमनु प्रतस्थे ॥

रामचन्द्र के साथ बालक वृद्ध आदि सभी जारहे हैं, यदि मैं न जाऊं तो मैं निर्गुण समझी जाऊंगी, यह समझ कर इस नगरी की भूमि ने आदर पूर्वक धूलि के व्याज से अपने शरीर को अनेक बनाया और वह रामचन्द्र के साथ चली ।

नृपसुखविमुखेन स्वेन कान्तेन साकं
दुहितरि विधिपाकात्काननाय व्रजन्त्याम् ।
अकुशलमिति मत्वा नूनमन्हाय धात्री
परिजनमुखबाष्पं पांशुभिः पर्यहार्षीत् ॥

पति ने राजसुख छोड़ दिया है, उसके साथ भाग्यफल से कन्या भी वन को जारही है । इस समय यह अकुशल है यह समझ कर पृथ्वी ने लोगों के मुंह पर का आँसू धूलि से पोंछ दिया ।

रामानुसाररसनिर्गतपौरवर्गा
संस्थानमात्रगृहचत्वरराजमार्गा ।
निर्मुक्तभोगभुजगत्वमिव क्षणेन
लघ्वी बभूव रघुपुंगवराजधानी ॥

राम के अनुसरण करने के प्रेम में पौर वर्ग राजधानी से निकल आये । अब वहां पर द्वार सड़कें आदि बच रही हैं, केंचुल छोड़े हुए सर्प के समान रघुश्रेष्ठ की राजधानी शीघ्र ही हल्की होगयी ।

अयं कथं स्यादिति बाष्पगर्भमालोक्यमानो वनदेवताभिः ।
विलोकयन्केवलपर्णशालां विनष्टचेता विललाप रामः ॥

"यह कैसे रह सकेगा, इस प्रकार सोच कर वन देवताओं ने रामचन्द्र को आंसूभरी आंखो से देखा और रामचन्द्र सूनी पर्णशाला को देखते रहे, उनकी चेतना लुप्त होगई और वे विलाप करने लगे (सीताहरण के समय की यह बात है)

हा कष्टमत्र नहि सा कमदं प्रवृत्त-
मालोकयामि चटुलामिह पादमुद्राम्।
मां वीक्ष्य नूनमगृहीतमृगं मुहूर्त-
मन्तर्हिता तरुषु रोषवतीव सीता॥

हाय, यहाँ सीता नहीं है यह क्या हुआ, मैं यहां उबड़-खाड़ पैर के चिन्ह देखता हूँ, मैं मृग को विना लिये चला आया हूं वह देखकर क्या वह थोड़ी देर के लिए क्रोध से यहीं किसी वृक्ष की ओट में छिप तो नहीं गयी है।

त्वदभिलषितपूर्त्यां वञ्चितः पञ्चवट्या-
मचरमचरमोऽहं मोहभाजां प्रजानाम्।
तदिह सरलबुद्धे नैष रोषस्य कालः
सुमुखि मम मुखं किं सोढसीतावियोगम्॥

हे भोली, जानकी, तुम्हारे ही मनोरथ की पूर्ति के लिए ठगा जाकर अज्ञानी मनुष्यों का अग्रगामी होकर मैं पञ्चवटी में घूम आया। सुवर्ण मृग को ढूंढ़ना अज्ञानी का काम है, पर तुम्हारी इच्छापूर्ति के लिए मैंने वह भी किया। यह समय क्रोध करने का नहीं है, हे सुमुखि, क्या राम के मुख ने कभी सीता का वियोग देखा है।

यद्यस्ति कौतुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि
चान्द्रं हरासि हरिणं मम सन्निधेहि।

यावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेनं
तावद्दधातु तव वक्त्रतुलां मृगाङ्कः ॥

हे मृगाक्षि, यदि तुम अद्भुत मृग लेना चाहती हो तो चन्द्रमा का हरिण मैं ले आता हूं, तुम मेरे पास आओ, मेरे द्वारा लाये हुए इस मृग को जब तक तुम न छोड़ोगी तब तक के लिए चन्द्रमा तुम्हारे मुख की समानता करे। अर्थात् हरिण के निकलने से चन्द्रमा भी निष्कलङ्क हो जायगा।

सप्राणा चेज्जनकतनया किं न तिष्ठेत मह्यं
हिंस्रैः सत्वैर्न खलु निहता रक्तसिक्ता न पृथ्वी।
गोदावर्यां पुलिनविहृतिं रामशून्या न कुर्या-
द्युक्तं नक्तंचरकवलनात्संस्थिता सर्वथा सा ॥

यदि जानकी जीती है तो मेरे सामने क्यों नही आती, हिंस्र जन्तुओं ने उसे मारा भी नहीं है, क्योंकि पृथ्वी रुधिर से रंगी नहीं है, राम के विना गोदावरी के तीर पर वह घमने भी नहीं जाती। इससे राक्षसो ने उसे अवश्य खा लिया।

लोकान्तरप्रणयिनं श्वशुरं प्रणन्तु-
माज्ञप्तकालमतिलङ्घ्य यदि प्रयासि।
विज्ञाप्य मामपि समाह्वय साध्वि तस्मै
सौमित्रिरेव भरते निदधातु राज्यम् ॥

स्वर्ग गये हुए श्वसुर को प्रणाम करने के लिए वनवास के नियत समय को डांक कर यदि तुम जाती हो तो हे साध्वी! उनसे कहकर मुझको भी बुलाओ, लक्ष्मण ही भरत को राज्य सौप देंगे।

मङ्खक

ये कश्मीर निवासी थे। इनको लोग कर्णिकार मंख और पण्डित मंखक भी कहते थे। इन्होंने श्रीकण्ठचरित नाम का एक महाकाव्य और मंखकोश नाम का एक कोश बनाया है। डा० ब्यूलर ने काश्मीर के कवियों संबन्धी अपने रिपोर्ट में लिखा है कि मङ्खक का श्रीकण्ठचरित ११३५ ई० से ११४५ ई० तक के बीच के समय में बना है। इनके विषय में इससे अधिक और कुछ मालूम नहीं।

इनके कुछ श्लोक सुनिये—

अज्ञातपाण्डित्यरहस्यमुद्रा ये काव्यमार्गे दधतेऽभिमानम्।
ते गारुडीयानन धीत्य मन्त्रान्हालाहलास्वादनमारभन्ते ॥१॥

जिन्हें पाण्डित्य रहस्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है, उन्हे काव्यमार्ग में अभिमान नहीं करना चाहिए। यदि कोई ऐसा करे तो उसका करना गारुड़ मन्त्रों को न जान कर विष खाने के समान होगा।

सरस्वतीमातुरभुञ्चिरं न यः कवित्वपाण्डित्यवनस्तनंधयः।
कथं स सर्वाङ्गमनाप्तसौष्टवो दिनाद्दिनं प्रौढिविशेषमश्नुते ॥२॥

जिसने सरस्वती माता के कवित्व और पाण्डित्य रूपी स्तनों का बहुत दिनों तक पान नहीं किया है उसके समस्त अङ्ग कैसे सुन्दर हो सकते और दिनोंदिन उसकी पुष्टिही कैसे हो सकती है?

वितीर्णशिक्षा इव हृत्पदस्थसरस्वतीवाहनराजहंसैः।
ये क्षीरनीरप्रविभागदक्षा विवेकिनस्ते कवयो जयन्ति ॥३॥

हृदय में वास करनेवाली सरस्वती के वाहन राजहंसों से शिक्षा पाये हुए के समान जो विवेकी क्षीर नीर को विलगाने में समर्थ हैं, वे ही कवि विजयी होते हैं ।

काव्यामृतं दुर्जनराहुनीतं प्राप्यं भवेन्नो सुमनोजनस्य ।
सच्चक्रमव्याजविराजमानतैक्ष्ण्यप्रकर्षं यदि नाम न स्यात् ॥४॥

दुर्जन राहु के द्वारा चुराया हुआ काव्यामृत कभी सज्जनों को प्राप्त न होता, यदि उसमें अधिक तीक्ष्णता न होती ।

विनम्रसाहित्यविदापरत्र गुणः कथंचित्प्रथते कवीनाम् ।
आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव विस्तारमन्यत्र न तैलविन्दुः ॥५॥

साहित्यज्ञों को छोड़ कर कवियों के गुण अन्यत्र प्रसिद्ध नहीं होते । तत्क्षण जल में ही तैलविन्दु विस्तार पाता है; अन्यत्र नहीं ।

अत्यर्थवक्रत्वमनर्थकं या शून्या तु सर्वान्यगुणैर्व्यनक्ति ।
अस्पृश्यताद्रूषितया तया किं तुच्छश्वपुच्छच्छटयेव वाचा ॥६॥

कविता की अनावश्यक अधिक कठिनता उसको अन्य सब गुणों से शून्य बतलाती है, जो छूने योग्य नहीं । जिसका रसास्वाद होना कठिन हो उस वचन से लाभ क्या ? वह तो कुत्ते की पूँछ के समान है ।

नीचस्तनोत्वश्रु नितान्तकार्ष्ण्यं पुष्णातु साधर्म्यं भृदञ्जनेन ।
विना तु जायेत कथं तदीय क्षोदेनसारस्वतदृक्प्रसादः ॥७॥

नीच अश्रु गिरावें, वह अत्यन्त काला भी हो और अञ्जन के साथ समानता भी प्राप्त कर ले, पर विना उसके रज के (प्रसाद के) सारस्वत दृष्टि की प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती ।

अर्थोंऽस्ति चेन्न पदशुद्धिरथास्ति सापि
नो रीतिरस्ति यदि सा घटना कुतस्त्या ।
साप्यस्ति चेन्न नववक्रगतिस्तदेव
व्यर्थं विना रसमहो गहनं कवित्वम् ॥८॥

अर्थ है तो पदशुद्धि नहीं; यदि पदशुद्धि है तो रीति नहीं है; यदि रीति भी है तो शब्दों का विन्यास अजीब तरह का है यदि वह भी है तो नयी कल्पनाएँ नहीं हैं, रस के विना यह कठिन कविता का मार्ग व्यर्थ ही है।

श्लाघैव वक्रिमगतिर्घन दार्ढ्य बन्ध—
स्तस्याः कविप्रवरसूक्तिधनुर्लतायाः ।
कर्णान्तिकप्रणयभाजि गुणे यदीये
चेतांसि मत्सरवतां झटिति त्रुटन्ति ॥९॥

कवीश्वरों की उक्तिरूपी धनुष की वक्रता और अच्छी तरह का दृढ वन्धन प्रशंसनीय ही है। अर्थात् कवियों की कविता की कठिनता प्रशंसनीय ही है, क्योंकि उसके गुण (धनुष की रस्सी या गुण) कानों तक पहुँचने पर मत्सरी मनुष्यों का चित्त शीघ्रही टूट जाता है, अर्थात् समझ में न आने के कारण मत्सरी मनुष्यों का अहंकार नष्ट हो जाता है।

यातास्तेसरसारसंग्रहविधिर्निष्पीड्यनिष्पीड्य ये
वाक्तत्त्वेक्षुलतां पुरा कतिपये तत्वस्पृशश्चक्रिरे ।
जायन्तेऽद्य यथायथं तु कवयस्ते तत्र संतन्वते
येनुप्रासकठोरचित्रयमकश्लेषादिशल्कोच्चयम् ॥१०॥

जो लोग रसको निचोड़ कर उसके सार द्वारा वाक्तत्व की ईक्षलता पहले बनाते थे, वे तत्वज्ञ आज

चले गये । इस समय तो ऐसे कवि उत्पन्न होते हैं जो अनुप्रास और कठिन चित्र यमक श्लेष आदि के काँटे एकत्रित करते हैं ।

परश्लोकाँस्तोकाननुदिवसमभ्यस्य ननु ये ।
चतुष्पादीं कुर्युर्बहव इह ते सन्ति कवयः ॥
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृदः ।
सुहृद्यावैशद्यं दधति किल केषाञ्चन गिरः ॥११॥

प्रतिदिन दूसरों के कुछ श्लोकों को कण्ठस्थ कर के चार पद के श्लोक बना देनेवाले कवियों की कमी नहीं; वे बहुत हैं। समुद्र की लहरी के समान सतत निकलने वाली, हृदय को हरने वाली किसी किसी की कविता होती है, और वही उज्वलता धारण करती है ।

वियोगिनी-प्रलाप ।

आलि कल्पय पुरः करदीपं चन्द्रमण्डलमिति प्रथितेन ।
नन्वनेन पिहितं ममचक्षुर्मङ्क्षु पाण्डुरतमोगुलकेन ॥ १२॥

हे सखि, हमारे आगे हाथ का दीपक ले आओ, क्योंकि चन्द्रमण्डल नाम से प्रसिद्ध पीले अन्धकार के द्वारा मेरी आँखें ढँक गयी हैं ।

कोटरे तिमिरमेष कलङ्कच्छद्मना वहति हन्त शशाङ्कः ।
यत्कणैरिव विलुम्पति दृष्टिर्मादृशां दयितदीपवियोगे ॥१३॥

यह चन्द्रमा कलङ्क के व्याज से अन्धकार धारण करता है, जिसके छोटे कण से भी प्रियरूपी दीप के वियोग की दशा में हम लोगों की आँखें ढँक जाती है ।

कालकूटमिह निन्दति लोको येन शंभुरजरामर एव ।
अन्तकं विरहिणीषु सुधांशुं स्तौत्यमुं तु विमलो हि विवेकः ॥१४

विष की लोग निन्दा करते हैं, पर विष खाने से ही शिव अजरामर होगये है। विरहिणियों के यमराज इस चन्द्रमा की लोग स्तुति करते हैं, इस न्याय के लिए क्या कहा जाय ?

कालकूटमधुनापि निहन्तुं हन्त नो वहसि लाञ्छनभङ्‌ग्या ।
यद्भयादिव निगीर्णमपित्वामाशु मुंचति सुधाकर राहुः ॥ १५ ॥

हे चन्द्रमा, हम लोगों को मारने के लिए तुम इस समय भी कलङ्क के व्याज से विष धारण करते हो . उस विष के भय से राहु तुमको निगल कर भी छोड़ देता है।

अंशवस्तव निशाकर नूनं कल्पितास्तरुणकेतकखण्डैः ।
येन पाण्डुरतरद्युतयो नः कण्टकैरिव तुदन्ति शरीरम् ॥१६॥

हे निशाकर, तुम्हारी किरणें प्रौढ केतक के टुकड़ों से बनायी गयी हैं, जिनकी कान्ति पीली है, पर काँटे के समान हम लोगों के शरीर को वे छेदती हैं।

अम्बुधेरुदगमद्विधुभङ्ग्या नूनमौर्वशिखिभास्मनपिण्डः ।
यत्किलास्य घटते नहि तृप्तिः खण्डिताजनदृगम्बुसरिद्भिः ॥१७॥

यह बड़वानल का अग्निपिण्ड समुद्र से चन्द्रमा के रूप में निकला है, यह सच बात है। क्योंकि खण्डिता स्त्रियों की आँखों से निकली हुई नदियों से इसकी तृप्ति नहीं होती।

रात्रिराजसुकुमारशरीरः कः सहेत तव नाम मयूखान् ।
स्पर्शमाप्य सहसैव यदीयं चन्द्रकान्तदृषदोपि गलन्ति ॥१८॥

हे रात्रिराज, कौन कोमल शरीर का मनुष्य तुम्हारी किरणों को सह सकता है ? जिनके स्पर्श होने से चन्द्रकान्त नामक पत्थर भी गल जाते हैं।

युक्तमाह दयितोममवक्त्रं पंकजं रहसि चाटकथासु ।
संस्तव'रुचिभिरस्य हिमांशो प्राप्य कामपि रुजं यदुपैति ॥१९॥

एकान्त की बातचीत में मेरे पति मेरे मुख को कमल कहा करते थे। उनका यह कहना ठीकही है, क्योंकि वह चन्द्रमा के प्रकाश से सम्पर्क होने पर एक बिलक्षण पीड़ा का अनुभव करता है।

पद्मनाभ करुणां कुरु भूयो विग्रहेण परिपूरय राहुम् ।
येन तज्जठरकोटरशायी जात्वयंविधुरयेन्न विधुर्नः ॥२०॥

हेपद्मनाभ, पुनः आप दया करें, राहु का शरीर जोड़ दें जिससे चन्द्रमा राहु के पेट में चला जाय, और फिर हम लोगों को वह कभी पीड़ा न दे।

मत्कार्यसिद्ध्यै तव हन्त कान्त्या मार्गे पुरोऽभूत्परुषः समीरः ।
यद्‌ग्राहतेयं लुलितालकत्वं पर्यस्तबन्धः कवरीनिवेशः ॥२१॥

मेरे कार्य की सिद्धि के लिए तुम्हे मार्ग में भयङ्कर आँधी का सामना करना पड़ा था यह मालुम होता है। क्योंकि तुम्हारे केश बिखर गये हैं और चोटी भी खुल गयी है। अपराधिनी सखी के प्रति उक्ति।

संस्पृश्य तं दुश्चरितैक बन्धुं सखि त्वया किं विहितोवगाहः ।
आर्द्राणि गात्राणि तवासते यद्वत्से च यन्निस्तिलकं ललाटम् ॥२२॥

हे सखि, उस पापी को छूकर क्या तुमने स्नान किया है ? क्योंकि तुम्हारे शरीर भीगे हैं और माथे का चन्दन भी नहीं है।

के न क्रमेणस्विदथाद्विवीया तेनाधिकं सुन्दरि भाविताभूः ।
यच्छाम्यति व्याकुलितेक्षणाया नाद्यापि ते कम्पकलानुबन्धः ॥२३॥

हे सुन्दरि, किसी कारण विशेष से अथवा अकेली होने के कारण तुम बहुत डरी हुई सी मालूम पड़ती हो । तुम्हारी आँखें घबड़ायी हुई सी हैं और तुम इस समय तक भी काँप रही हो ।

स एव कास्तूरिकपंकजन्मा दोषं ध्रुवं ते व्यधिताङ्गरागः ।
विभर्षि यत्सौरभसङ्गिभृङ्गदेशव्रणैर्भङ्गुरमङ्गमङ्गम् ॥२४॥

उसी कस्तूरी के बने अङ्गराग ही ने तुम्हे बहुत कष्ट दिया उसके सौरभ से भौंरे आ आकर तुम्हे काटते हैं, जिससे तुम्हारा अङ्ग अङ्ग छिद गया है ।

नखानखि प्रस्तुत आस्त तस्य केनापि सार्धं किमु संप्रहारः ।
यद्वारणार्थं सहसा विशन्ती त्वं तन्नखोल्लेख पथं गतासि॥२५॥

क्या जब तुम गयी उस समय किसीसे वह युद्ध कर रहा था ? नखों की लड़ाई वहाँ होरही थी ? जिसको छुड़ाने के लिए तुम बीच में गयी और तुम्हे नख लग गये ?

मयूर भट्ट

ये संस्कृत के प्रसिद्ध कवि हैं । राजा हर्षवर्धन के सम-कालीन और उनकी सभा के ये पण्डित थे। वाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में इनके लिए लिखा है —

दर्पं कविभुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम्,
विष विद्युयेव मायूरी मायूरी वाग् निकृन्तति"

मयूरभट्ट की कविता जब कवियों के श्रवण गोचर होती है, उस समय उनका अभिमान चूर चूर हो जाता है । जिस प्रकार मयूर संबन्धी विष-विद्या से सर्पों का अभिमान चूर्ण हो जाता है ।

जैनकवि मानतुंगाचार्य ने अपने भक्तामरस्तोत्र में मयूर को वाणभट्ट का श्वसुर बतलाया है । इसीके संबन्ध में एक किंवदन्ती भी प्रचलित है । वाणभट्ट और मयूर में यह संबन्ध तो था ही, इनमें मैत्री भी थी । एक दिन वाणभट्ट की स्त्री उनपर किसी कारण से नाराज़ थी । उसको मनाने के लिए वाणभट्ट प्रयत्न कर रहे थे, अन्त में हार कर वाण ने एक श्लोक बना कर पढ़ा, उस समय मयूर भी द्वार पर खड़े थे । वाण ने श्लोक के तीन चरण तो बना लिये, पर चौथा चरण मयूर ने बना दिया । यह देख कर वाण की स्त्री लज्जित हुई और उसने मयूर को कुष्ठ होने का शाप दिया ।

वह श्लोक नीचे लिखा जाता है ।

> गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यत इव,
> प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव,
> प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो, (वाण)
> कुच प्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥ (मयूर)

उसी कुष्ठ को दूर करने के लिए सौ श्लोकों से मयूरभट्ट ने सूर्य की स्तुति की है, जो सूर्यशतक के नाम से प्रसिद्ध है । यह आदरणीय ग्रन्थ समझा जाता है । इसके अतिरिक्त इनका और भी कोई ग्रन्थ है कि नहीं, इसका पता नहीं ।

विजये कुशलस्त्र्यक्षो न क्रीडितुमहमनेन सहाशक्ता ।
विजये कुशलोस्मि ननु त्र्यक्षोऽक्षद्वयमिदं पाणौ ॥१॥

पार्वती कहती हैं—त्र्यक्ष (महादेव तीनआँखवाला) निपुण है, इसके साथ मैं खेल नहीं सकती । शिव ने उत्तर दिया—हे विजये, मैं कुशल तो अवश्य हूँ, पर त्र्यक्ष (तीन पासे वाला) नहीं; क्योंकि मेरे हाथों में ये दोही अक्ष (पासे) हैं ।

किं मे दुरोदरेणप्रयातु यदि गणपतिर्न तेभिमतः ।
कः प्रद्वेष्टिविनायकमहिलोकः किं न जानासि ॥२॥

पार्वती—मुझे दुरोदर (जुआ) से क्या लाभ ? शिव ने दुरोदर का अर्थ समझा बुरा पेटवाला, इससे वे कहते हैं गणेश यहाँ से चले जाँय, यदि वे अच्छे न हों । पार्वती ने कहा—विनायक (गणेश) से द्वेष कौन करता है ? शिव ने विनायक का अर्थ समझा गरुड़, और वे उत्तर देते हैं—विनायक से द्वेष करने वाले सांप हैं, क्या मालूम नहीं ?

चन्द्रग्रहणेन विना नास्मि रमे किं प्रवर्तयस्येवम् ।
देव्यै यदि रुचितमिदं नन्दिन्नाहूयतां राहुः ॥३॥

चन्द्रग्रहण के (जब तक चन्द्रमा दांव पर नहीं लगाया जाय) विना मैं न खेलूंगी, तुम क्यों तङ्ग करते हो । शिव ने उत्तर दिया, यदि देवी को यही अच्छा मालूम होता है, तो नन्दी राहु को बुलाओ । पार्वती ने चन्द्रग्रहण का अर्थ चन्द्रमा का दाँव पर लगाना समझा था और शिव ने इसका अर्थ समझा चन्द्रग्रहण ।

हाराहौ निकटस्थे सितदंष्ट्रे भयकृति रतिः कस्यः ।
यदि नेच्छसि तस्यक्तः संप्रत्येवैष हाराहिः ॥४॥

हा, राहु पास है, इसके दाँत सफ़ेद और भयानक हैं; इस पर कौन अनुराग करेगा ? शिव ने उत्तर दिया, यदि तुम नहीं चाहती हो तो लो इसी समय मैं हाराहि (सर्पहार) छोड़ता हूँ।

भारोपयसि मुधा किं नाहमभिज्ञा त्वदङ्कस्य ।
दिव्य वर्षसहस्रं स्थित्वैवं युक्तमभिधातुम् ॥५॥

पा०—मुझे अपने अङ्क में क्यों लेना चाहते हो, मैं इससे अनभिज्ञ हूँ। शि०—देवताओं के हज़ार वर्ष तक इस अङ्क में रहने के बाद ऐसा कहना अवश्य शोभा देता है।

अनुदिनमभ्यासदृढ़ैः सोढुं दीर्घोपि शक्यते विरहः ।
प्रत्यासन्नसमागममुहूर्तेविघ्नोपि दुर्विषहः ॥६॥

प्रतिदिन अभ्यास की दृढ़ता के कारण बहुत दिनों का भी विरह सहा जा सकता है। पर समागम के समीप आ जाने पर एक मुहूर्त का भी विघ्न असहनीय होता है।

संग्रामाङ्गणसंगतेन भवता चापे समारोपिते
देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम् ॥
कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलं
तेन त्वं भवता च कीर्तिरमला कीर्त्या च लोकत्रयम् ॥७॥

महाराज, आप रणक्षेत्र में आये और आपने धनुष चढ़ाया, उस समय शीघ्रही जिस जिसको जो जो वस्तु मिली सो सुनिए। धनुष को वाण मिलें, वाणों को शत्रुओं के सिर, शत्रु शिरों को भूमण्डल, भूमण्डल को आप मिले, आपको कीर्ति मिली और कीर्ति को तीनों लोक मिले।

देवाकर्णय नाकिनां पुरि नृणां लोके पुरे भोगिना-
मासन्केचन सन्ति केचन तथा स्थास्यन्ति ये केचन ॥

तन्मध्ये न बभूव नास्ति भविता तादृङ् न नीतौ नतौ ।
कान्तौ काव्यरतौ नतौ रिपुहतौ कीर्तौ च यस्ते समः ॥८॥

महाराज, सुनिए; देवलोक में, मर्त्यलोक में और नाग-लोक में कोई थे । कोई हैं और कोई रहेंगे । पर उनमें कोई भी वैसा नहीं हुआ, न है और न होगा, जो नीति में, नम्रता में, कान्ति में, काव्यप्रेम में, स्तुति में, शत्रु मारने में और कीर्ति में तुम्हारी बराबरी कर सके ।

भूपालाः शशिभास्करान्वयभुवः के नाम नासादिता ।
भर्तारं पुनरेकमेव हि भुवस्त्वां देव मन्यामहे ॥
येनाङ्गं परिमृद्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्यायतं ।
चोलं प्राप्य च मध्यदेशमधुना काञ्च्यांकरः पातितः ॥९॥

सूर्यवंश और चन्द्रवंश के कितने राजा पृथ्वी के स्वामी नहीं हुए; पर हम तो तुम्हीं को पृथिवी का एक स्वामी मानते हैं । जिसने अङ्ग (इस नाम का देश) को मर्दन कर कुन्तल (इस नाम का देश अथवा चोटी) को खींच कर चोल (इस नाम का देश अथवा ज़नानी कुरती)को हटा कर, मध्य देश (देश या कमर) में पहुँच कर इस समय काञ्ची (एक नगर अथवा करधनी) में हाथ लगाया है ।

महाकवि माघ ।

महाकवि माघ ने शिशुपाल-वध नामका एक काव्य बनाया है । इनकी रचना बड़ी प्रौढ़ है । एक प्राचीन श्लोक है, जिसमें माघ की कविता की प्रशंसा की गयी है ।

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

माघ ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—श्रीवर्मल नाम के राजा के प्रधान मन्त्री सुप्रभदेव थे। सुप्रभदेव के श्री दत्तक हुए और दत्तक के पुत्र माघ ने यह काव्य बनाया। भोजप्रबन्ध में भी इनके विषय में थोड़ा लिखा है। जिससे इनके दानी और दानी होने के कारण ही दरिद्र होने की बात लिखी है। माघ के दो तीन श्लोक है जिनमें इन बातों का उल्लेख है।

अर्था न सन्ति नच मुंचति मां दुराशा,
त्यागान्न सङ्कुचति दुर्ललितं मनो मे ।
याञ्चा च लाघव करी स्ववधे च पापं ।
प्राणाः स्वयं व्रजत किन्तु विलम्बितेन ॥

बुभक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, नपीयते काव्यरसः पिपासितैः
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवाऽर्ज्जय निष्फलाः कलाः ।

इन श्लोकों से माघ ने अपनी अवस्था दिखायी है, वे विद्या से ऊब गये थे।

इनके कुछ मनोहर श्लोक आगे लिखे जाते हैं।

नारीनितम्बफलके प्रतिवध्यमाना
हंसीव हेमरशना मधुरं ररास ॥
तं मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा
आक्रन्दुरात्तमुखरं चरणावलग्नाः ॥ १ ॥

नारी के नितम्ब पर बँधी हुई सोने की करधनी हंसिनी के समान धीरे धीरे बोल रही है। उसका बन्धन छुड़ाने के लिए नूपुररूपी राजहंस बड़े दुःख से चिल्लाने लगे और वे पैरों पर भी पड़े।

मुहुरुपहसितामिवालिनादैर्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेत्ताम् ।
वसतिमभिगमेन धाम्नि तस्याः शठकलिरेव महाँस्त्वयाद्य दत्तः ॥२॥

कोई खण्डिता नायिका अपराधी पति को, जो उसे पुष्प देकर प्रसन्न करना चाहता है कहती है—इस कलिका का उपहास ये भ्रमर अपने शब्दों से कर रहे हैं। क्योंकि इसके द्वारा तुम मुझे ठगना चाहते हो। मुझे यह कलिका क्यों देते हो, हे शठ (छिप कर अपराध करने वाले) तुम अपनी प्रिया के घर पर जाकर बहुत बड़ा कलि (कलह) दे चुके हो। अब दूसरी कलि (पुष्पकली) की ज़रूरत क्या है ?

अवचितकुसुमा विहाय वल्लीर्युवतीषु कोमलमाल्यभारिणीषु ।
पदमुपदधिरे कुलान्यलीनां न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् ॥३॥

भ्रमरों के समूह ने उन लताओं को छोड़ दिया, जिनके पुष्प स्त्रियों ने तोड़ लिये थे। वे कोमल माला धारण करने वाली युवतियों पर जाकर बैठे। जिनकी आत्मा काली है, वे क्या परिचय की परवा करते हैं ?

विनयति सुदृशो दृशः परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन ।
तदहितयुवतेरभीक्ष्णमक्ष्णोर्द्वयमपि रोषरजोभिरापुपूरे ॥४॥

एक स्त्री की आँखों में किसी फूल की धूलि पड़ गयी थी। उसे उसका प्रियतम मुँह से फूँक कर निकाल रहा था। यह देख कर उसकी सौत की दोनों आँखे क्रोध की धूल से भर गयी।

संक्षोभं पयसि मुहुर्महेभकुम्भश्रीभाजा स्तनयुगलेननीयमाने ।
विश्लेषं युगमगमद्रथाङ्गनाम्नोरुद्वृत्तः क इव सुखावहः परेषाम् ॥५॥

स्त्रियाँ जलक्रीड़ा कर रही हैं। गजराज के मस्तक के समान विशाल उनके स्तनों से जल हिल उठा और इससे चक्रवाक दम्पती का वियोग हो गया। उच्छृङ्खल से क्या किसी को सुख हो सकता है ?

आनन्दं दधति मुखे करोदकेन श्यामाया दयिततमेन सिच्यमाने ।
ईर्ष्यन्त्या वदनमसिक्तमप्यनल्पस्वेदाम्भःस्नपितमजायतेतरस्याः ॥६॥

प्रियतम नवयौवना के मुख पर अपनी अंजली से जल सींच रहा था और उस नवयौवना का मुख प्रसन्न हो रहा था; क्योंकि प्रियतम उसका सम्मान कर रहा है। पर दूसरी के मुख पर जल के छींटे नहीं पड़े, इससे ईर्ष्या के कारण उसके मुँह पर इतना पसीना आया कि वह भींग गया।

कान्तानां कुवलयमप्यपास्तमक्ष्णोः शोभाभिर्न मुखरुचाहमेकमेव ।
संहर्षादलिविरुतैरितीव गायंल्लोलोर्मौ पयसि महोत्पलं ननर्त ॥७॥

जल में चञ्चल लहरियाँ उठ रही हैं; उनमें कमल नाच रहा है; उसके नाचने का कारण यह है, वह समझता है कि स्त्रियों के मुख की शोभा से मैं ही परास्त नहीं हुआ हूँ किन्तु आँखो की शोभा से कुवलय भी (रक्त कमल) परास्त हुआ है। इसी हर्ष के कारण यह भौंरों के शब्द से गाता हुआ नाच रहा है। उसको एक नया साथी मिल गया, इसीसे वह प्रसन्न होगया।

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता ।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्नपतिष्यतः करसहस्रमपि ॥८॥

भाग्य के प्रतिकूल होने पर अनेक साधन भी विफल हो जाते हैं। जब सूर्य गिरने (अस्त होने) लगता है, तब उसके हज़ारों हाथ भी उसकी सहायता नहीं कर सकते।

अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधतं वपुः सुखमतापकरम् ।
निरकासयद्रविमपेतवसुं वियदालयादपरदिग्गणिका ॥ ९ ॥

अनुरागी है, आँखो को सुख देनेवाला उसका शरीर भी है अर्थात् सुन्दर भी है; पर उसके पास वसु (धन या किरण) नहीं है,अतएव पश्चिम दिशा रूपिणी वेश्या ने सूर्य को आकाश रूपी घर से निकाल दिया ।

रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः ।
ज्वलनं त्विषा कथमिवेतरथा सुलभोन्यजन्मनि स एव पतिः ॥१०॥

तेजोनिधि पति के परलोक जाने पर - अस्त होने पर या मरने पर-कान्ति अग्नि में प्रविष्ट हुई। यदि वह ऐसा न करती तो दूसरे जन्म में वही पति उसको कैसे मिलता ।

अविभाव्यतारकमदृष्टहिमद्युतिबिम्बमस्तमितभानुनभः ।
विरतोरुतापमतमिस्रमभादपदोषतैव विगुणस्य गुणः ॥ ११ ॥

ताराओं का उदय नहीं हुआ है, चन्द्रमा भी दिखायी नहीं पड़ता, सूर्य अस्त हो चुका है, ताप शान्त हो चुका है और अन्धकार नहीं है, ऐसा आकाश शोभितहो रहा है। क्योंकि गुणहीन के लिए दोषों का न रहना ही गुण समझा जाता है।

ददृशेऽपि भास्कररुचान्हिः सततमीं तमोभिरधिगम्य तताम् ।
द्युतिमग्रहीद्ग्रहगणो लघवः प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः ॥ १२॥

जो ग्रहगण दिन में सूर्य के प्रकाश से दिखायी नहीं पड़ते थे, वे ही अन्धकारमयी रात्रि पाकर प्रकाशित होगये । नीच मलिनों का आश्रय पाकर चमकते हैं ।

प्रथमं कलाभवदथार्धमथो हिमदीधीतिर्महभूदुदितः।
दधति ध्रुवं क्रमत एव न तु द्युतिशालिनोपि सहसाभ्युदयम् ॥१३॥

चन्द्रमा पहले कलामात्र था, पर वही उदित होने पर महान् हो गया। तेजस्वी भी धीरे धीरे अभ्युदय पाते हैं, एक बारही नहीं, यह निश्चित है।

वदमजिकैटभजितः शयनादथनिद्रपाण्डुरसरोजरुचा।
प्रथमप्रवुद्धनदराजसुतावदनेन्दुनेव तुहिनद्युतिना ॥१४॥

विकसित श्वेत कमल के समान चन्द्रमा विष्णु के शयन से अर्थात् समुद्र से उदित हुआ। मानों विष्णु से पहले जागी हुई लक्ष्मी का मुखचन्द्र ही उदित हुआ।

अथ लक्ष्मणानुगतकान्तवपुर्जलधिं व्यतीत्य शशिदाशरथिः।
परिवारितः परित ऋक्षवलैस्तिमिरौघराक्षसकुलं विभिदे ॥ १५ ॥

उदित होने पर लक्ष्मण (कलङ्क या लक्ष्मण) जिसके पीछे चल रहा है, और ऋक्षों (नक्षत्र या भालू) की सेना से जो वेष्टित है, वह चन्द्रमारूपी राम समुद्र लाँघ कर अन्धकार रूपी राक्षसों का नाश करने लगा।

रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसावपि ताम्।
अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥१६॥

रात्रि ने चन्द्रमा को कान्ति दिया और चन्द्रमा ने भी उसी समय उस रात्रि को भूषित किया। वड़ों का वह चरित धन्य है, जिसमें शीघ्र ही परस्पर उपकार करने की रीति है।

दिवसं भृशोष्णरुचिपादहतां रुदतीमिवानवरतालिरुतैः।
मुहुरामृशन्मृगधरोग्रकरैं रुदशिश्वसत्कुमुदिनीवनिताम् ॥१७॥

दिन में सूर्य ने चरणों (किरणों) से कुमदिनी को मारा है। इस कारण सतत होनेवाले भौंरों के शब्द से वह रो रही

है, इस कारण चन्द्रमा अपने अग्रकर से (हाथ से या किरणों से) पोंछ रहा है और उसे आश्वासन दे रहा है।

अम्बरं विनयतः प्रियपाणेर्योषितश्च करयोः कलहस्य ।
वारणामिव विधातुमभीक्ष्णं कक्ष्यया च वलयैश्च शिशिञ्जे ॥१८॥

प्रिय का हाथ वस्त्र खींचता है, और स्त्री के दोनों हाथ उसे रोकते हैं इस प्रकार इन दोनों में कलह हो रहा है। इस कलह को मिटाने के लिए स्त्री की करधनी और कङ्कण बार बार बोल रहे हैं।

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥ १९ ॥

सूर्य का उदय होता है, और चन्द्रमा अस्त होता है, इस प्रकार यह पर्वत हाथी के समान मालूम होता है जिसके दोनों ओर दो घंटा लटके रहते हैं।

सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि
क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः
इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नङ्गमिन्दु-
र्वहतिकृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥२०॥

कुमुदिनी मुकुलित होगयी, रात्रि का भी अन्त होगया और वे समस्त तारकाएं नष्ट हो गयीं, इस कारण अपनी स्त्री से रात्रि से प्रेम रखनेवाला चन्द्रमा कृश होगया है, वह शोक से शोभारहित अङ्ग धारण कर रहा है।

नवनखपदमङ्गं गोपयस्यङ्शुकेन स्थगयसि मुहुरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम्
प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशंसी विसर्पन्नव परिमलगन्धः केन शक्योपरीतुम् ॥२१॥

नवीन नख का चिह्न वस्त्र से छिपा रहे हो; दाँतों से काटा हुआ ओष्ठ हाथों से छिपा रहे हो; पर दूसरी स्त्री के संग का सूचक, चारों ओर फैलनेवाले इस परिमल गन्ध के लिए क्या करोगे ? इसको कैसे छिपाओगे ?

> बहुजगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं
> चकर च किल चाटु प्रौढयेोषिद्वदस्य ।
> विदितमितिसखीभ्यो रात्रिवृत्तं विचिन्त्य
> व्यपगतमदयान्हि व्रीडितं मुग्धवध्वा ॥२२॥

मैं उन्मत्तावस्था में उसके सामने बहुत बोलती रही क्या ? प्रौढ़ा स्त्रियों के समान मैंने उसके सामने व्यवहार किया क्या ? सखियों के द्वारा रात की बातें जानकर नशा उतरने पर मुग्ध वधू को बड़ी लज्जा आयी ।

> द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैले
> दधति दधनि धीरानारवान्वारिणीव ।
> शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेते
> कलशिमुदधिगुर्वीं वल्लवा लोडयन्ति ॥२३॥

शीघ्र हाथ चलाने में निपुण इन अहीरों ने दही में मथानी रूपी पर्वत डाला है । इससे उसमें से गम्भीर ध्वनि निकल रही है । जिस प्रकार जल को मथकर देवताओं ने उसका सार चन्द्रमा निकाला था, उसी प्रकार ये भी समुद्र के समान कलश को मथ रहे हैं ।

> अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्ता पराची
> रुतमथ कृकवाकोस्तारमाकर्ण्य कल्ये ।
> कथमपि परिवृत्ता निद्रयान्धा किल स्त्री
> मुकुलितनयनैवाश्लिष्यति प्राणनाथम् ॥२४॥

उसको बहुत खुशामद की गयी, पर उसने कुछ भी न सुना और करवट बदल कर सो गयी। पर प्रातःकाल मुर्गे की बाँग जब उसने सुनी, तब निद्रित रहकर ही जँभाई के बहाने उसने पुनः करवट बदली और आँखें बंद किये ही पति का आलिंगन किया।

परिशिथिलितकर्णग्रीवमामीलिताक्षः
क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव ।
रिरसयिषति भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं
पटुतरचपलौष्ठप्रस्फुरत्प्रोथमश्वः ॥२५॥

कान और गर्दन सीधी करके आँखें बन्द करके इस अश्व ने जङ्घा को ऊपर करके थोड़ी देर तक शयन किया। अब इसके घास खाने में निपुण ओठ चञ्चल हो रहे हैं, प्रोथ फड़क रहा है। यह आगे रखी घास को खाना चाहता है।

उदयमुदयदीप्तिर्यातियः संगतौ मे
पतति न वरमिन्दुः सोपरामेष गत्वा ।
स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूयं प्रभेति
स्फुरति रुचिरमेषा पूर्वकाष्ठाङ्गनायाः ॥२६॥

जो सूर्य मेरे साथ उदय होता है, वही अपरा (पश्चिम दिशा या दूसरी स्त्री) के यहाँ जाने से पतित (अस्त या पतित) हो जाता है। यह समझकर पूर्व दिशारूपी स्त्री की प्रभा मुस्कुराहट के समान दिखायी पड़ती है।

दधदसकलमेकं खण्डितामानमद्भिः
श्रियमपरमपूर्णामुच्छ्वसद्भिः पलाशैः ।
कलरवमुपगीते षट्पदौघेन धत्तः
कुमुद कमलखण्डे तुल्यरूपामवस्थाम् ॥२७॥

एक—कुमुदवन मुकुलित होनेवाले पत्तों से आधा होगया है, अतएव नष्ट होनेवाली शोभा को वह धारण करता है। और दूसरा—कमल विकसित होनेवाले पत्तों से अपूर्ण अर्थात् बढ़ने वाली शोभा को धारण करता है। दोनों के पास भौंरे मधुर गम्भीर गान कर रहे हैं, इस प्रकार कुमुदवन और कमलवन दोनों समान अवस्था धारण करते हैं।

विकचकमलगन्धैरन्धयन्भृङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वायुः ।
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः ॥२८॥

विकसित कमल की गन्ध से भौरों को अन्धा बनाता हुआ, सुगन्धित पुष्परेणु को धारण करनेवाला वायु धीरे धीरे बहता है। यह हर्ष और मदन से उन्मत्त, यौवन के कारण उच्छृङ्खल स्त्रियों के रमण की थकावट से उत्पन्न पसीने को दूर करने में समर्थ है।

नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसङ्गा—
दधिकरुचिरशेषामप्युषां जागरित्वा ।
अयमपरदिशोऽङ्के मुञ्चति स्रस्तहस्तः
शिशयिषुरिव पाण्डु ग्लानमात्मानमिन्दुः ॥२९॥

अधिक शोभाशाली यह चन्द्रमा नवीन कुमुदवनश्री के हास की क्रीड़ा में लगे रहने के कारण समूची रात जागता रहा ; अब पश्चिम दिशा के अङ्क में सोने की इच्छा से थके हुए अपने को छोड़ रहा है। उसके हाथ (किरण) शिथिल हो गये हैं, अर्थात् वह अस्त हो रहा है।

विगततिमिरपङ्कं पश्यति व्योम यावद्
धुवति विरहखिन्नः पक्षती यावदेव ।
रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना
सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी ॥३०॥

यह चक्रवाक जब तक आकाश को अन्धकार हीन देखता है और जब तक यह अपने पंखों को झाड़ता है, तभी तक नदी के उसपार से उत्सुकता से प्रेरित होकर चक्रवाकी चली आयी ।

तदवितथमवादीर्यन्ममत्वं प्रियेति
प्रियजनपरिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः ।
मदधिवसतिमागाः कामिनां मण्डनश्री-
र्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥३१॥

तुम मेरी प्रिया हो, यह जो तुमने कहा है वह बिलकुल सच है । क्योंकि प्रियजन के द्वारा भोगा हुआ वस्त्र पहन कर तुम मेरे यहाँ आये । कामियों के श्रृङ्गार की शोभा वल्लभा के देखने से ही सफल होती है ।

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः
उदयतिरविरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥३२॥

कुमुदवन शोभाहीन हो गया और कमलवन ने शोभा धारण की । उलूक की प्रसन्नता गयी और चक्रवाक प्रसन्न हुए । सूर्य उदित हो रहा है और चन्द्रमा अस्त, । दुर्भाग्य का परिणाम अनेक प्रकार का होता है ।

मा जीवन्यः परावज्ञादुःखदग्धोपि जीवति ।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ॥३३॥

जो दूसरों के द्वारा होनेवाले तिरस्कार के दुःख से जलकर भी जीते हैं, वे न जीयें। उनका न जीना ही अच्छा है; क्योंकि उनसे केवल माता को कष्ट ही होता है।

तुल्येपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत् ।
हिमांशुमांशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम् ॥३४॥

दोनों का अपराध बराबर है, पर सूर्य को देर से और चन्द्रमा को शीघ्र शीघ्र राहु ग्रसता है। यह कोमलता का फल है।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥३५॥

पैर से आहत होने पर जो उठती है और शिर पर चढ़ जाती है, वह धूल अपमान होने पर भी जो चुपचाप बैठे रहते हैं उन मनुष्यों से अच्छी है।

मुरारि ।

इन्होंने अनर्घराघव नाम का एक नाटक बनाया है। इनके पिता का नाम भट्ट श्रीवर्धमान था और माता का नाम तन्तुमति था। हरविजय प्रणेता रत्नाकर से ये प्राचीन हैं। रत्नाकर ने अपने हरविजय काव्य में इनका स्मरण किया है।

"अङ्कोत्थनाटक इवोत्तमनायकस्य
नाशं कविर्व्यधित यस्य मुरारिरित्थम् ।

अतएव ये रत्नाकर से प्राचीन हैं। मुरारि ने अपने विषय में इस प्रकार लिखा है—

देवीं वाचमुपासते हि वहवः सारं तु सारस्वतं
जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः ।
अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता-
मापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः ।

सरस्वती की आराधना करनेवाले बहुत हैं, पर उसका सार गुरुकुल के क्लेशों को सहनेवाले मुरारि कवि ही जानते हैं। वानर समुद्र लाँघ गये, पर उसकी गहराई का पता मन्थाचल ही को है।

इनके कुछ मनोहर श्लोक आगे लिखे जाते हैं—

अभेदेनोपास्तेकुमुदमुदरे वा स्थितवतो
विपक्षादम्भोजादुपगतवतो वा मधुलिहः ॥
अपर्य्यासः कोपि स्वपरिपरिचर्यापरिचय—
प्रवन्धः साधूनामयमनभिसंधानमधुरः ॥ १ ॥

कमल शत्रु के यहाँ से आया हुआ भ्रमर और अपने कोश में रहने वाला भ्रमर इन दोनों को एक प्रकार से देखता है। उसकी इनमें भेद-दृष्टि नहीं है। यह अपना है यह दूसरा है, इस वात का विचार किये विनाही सज्जन सब का समान रूप से सेवा-सत्कार करते हैं।

अविनयभुवामज्ञा नानांशमाय भवन्नपि ।
प्रकृतिकुटिलाद्विद्याभ्यासः खलत्ववृद्धये ॥
फणि भयभृतामस्तुच्छेदक्षमस्तमसामसौ ।
विषधरफणारत्नालोको भयं तु भृशायते ॥ २ ॥

स्वभाव से कुटिल मनुष्य से विद्या के अध्ययन करने से, यद्यपि अविनयी अज्ञानियों को कुछ शान्ति मिल जाती है, पर

उससे उसकी खलता की वृद्धि होती है। सर्प की फणा पर रहने वाले मणि के प्रकाश से साँप से डरने वालों के लिए अन्धकार का नाश अवश्य होता है, पर भय तो कम नहीं होता, वह तो बढ़ता जाता है।

स्ववपुषि नखलक्ष्म स्वेन कृत्वा भवत्या
कृतमिति चतुराणां दर्शयिष्ये सखीनाम्
इति रहसि मयाते भीपिताया स्मरामि
स्मरपरिमलमुद्राभङ्गसर्वंसहायाः ॥३॥

स्वयं अपने शरीर में अपने नखों का चिन्ह बनाया और यह तुमने (स्त्री ने) किया है, यह मैं चतुर सखियों को दिखाऊँगा, । यह कह कर मैंने तुमको डरवाया और तुमने इसके प्रकाशित होने के भय से सब सह लिया।

जाताः पक्वपलाण्डुपाण्डुरमुखच्छायाकिरस्तारकाः
प्राचामङ्कुरयन्ति किंचन रुचो राजीवजीवातयः
लूत्तात्तन्तुवितानवतु लमिदं विम्बं दधच्चुम्बिति
प्रातः प्रोषित रोचिरम्बरतलादस्ताचलं चन्द्रमाः ॥ ४ ॥

ताराओं की प्रभा पके पलाण्डु के समान पीली हो गयी है। कमलों को जीवित करनेवाली रुचि पूर्व दिशा में उत्पन्न हो रही है। मकड़ी के जाला के समान बिम्बधारण करनेवाला यह चन्द्रमा प्रातःकाल आकाश से अस्ताचल पर जारहा है। इसकी शोभा हीन हो गयी है।

भोगीन्द्रः प्रमदोत्तरङ्गमुरगीसंगीतगोष्ठीषुते
कीर्तिं देव श्रृणोतु विंशतिशती मच्चक्षुषां वर्तते
रक्ताभिः सुरसुन्दरीभिरभितो गीतांनु कर्णद्वयी
दुःस्थः श्रोष्यति नाम किं सहि सहस्राक्षो न चक्षुःश्रवाः ॥५॥

देव, नागकन्याओं की सङ्गीत सभा में आनन्द से गद्गद होकर शेषराज तुम्हारी कीर्ति सुनें; क्योंकि उनके दो हज़ार आँखें हैं। पर अनुरक्त देवाङ्गनाओं के द्वारा गायी हुई तुम्हारी कीर्ति इन्द्र कैसे सुन सकेगा। क्योंकि उसके तो दो ही कान हैं। यद्यपि इन्द्र को भी हज़ार आँखें हैं, पर उनमें तो सुनने की शक्ति नहीं है।

मोरिका

ये स्त्री कवि थीं। इनके समय आदि के विषय में कुछ मालूम नहीं। इनके श्लोक सुभाषित ग्रन्थों से उद्धृत करके नीचे दिये जाते हैं।

मा गच्छ प्रमदाप्रिय प्रियशतैर्भूयस्तमुक्तो मया
वाला प्राङ्गणमागतेन भवता प्राप्नोति निष्ठां पराम् ॥
किंचान्यत्कुचभारपीडनसहैर्यत्नप्रवद्धैरपि
त्रुट्यत्कंचुकजालकैरनुदिनं निःसूत्रमस्मद्गृहम् ॥ १ ॥

हे प्रमदाप्रिय, न जाओ, यह मैंने कई बार उससे कहा। मैंने कहा - आप जब अंगने में आते हैं, तो वह बाला प्रसन्न होती है। उसके कुरते ख़ूब मजबूत बनाये जाते हैं जिससे स्तनों के भार वे सह सकें, पर वे फट फट जाते हैं। इस कारण आजकल हमारे घर में सूत की कमी होगयी है।

यामीत्यध्यवसाय एव हृदये वध्नातु नामास्पदं
वक्तुं प्राणसमासमक्षमघृणेनेत्थं कथं पार्यते ।
उक्तं नाम तथापि निर्भरगलद्बाष्पं प्रियाया मुखं
दृष्ट्वापि प्रवसन्त्यहो धनलवप्राप्तिस्पृहा मादृशाम् ॥२॥

जा रहा हूँ यह इच्छा हृदय में उत्पन्न हो सकती है, पर प्राणप्रिया के सामने निर्दय होकर यह कहा कैसे जा सकता है? पर वह कहा गया। अविरत अश्रु प्रवाहयुक्त प्रिया का मुख देख कर भी लोग विदेश चले जाते हैं। स्वल्पधन की प्राप्ति की इच्छा तुम लोगों के हृदय में ऐसी मज़बूत है?

लिखति न गणयति रेखा निर्भरवाष्पाम्बुधौतगण्डतला ।
अवधिदिवसावसानं माभूदिति शङ्किता बाला ॥३॥

आंसू से उसके दोनों गाल भींग गये हैं। वह अवधि के दिन बीतने की शङ्का से न तो लिखती है और न अवधि के लिए लगायी रेखा को ही गिनती है।

प्रियतमस्त्वमिमामनघार्हसि प्रियतमा च भवन्त मिहार्हति ।
नहि विभाति निशारहितः शशी न च विभाति निशापि विनेन्दुना ॥४॥

हे निष्पाप, तुम इसके प्रियतम होने योग्य हो और यह तुम्हारी प्रिया होने के योग्य है। रात्रि के बिना चन्द्रमा नहीं शोभता और चन्द्रमा के बिना रात्रि भी नहीं शोभती।

महाकवि राजानक रत्नाकर।

ये कश्मीर के निवासी कवि थे। इनका पूरा नाम' राजानक रत्नाकर वागीश्वर है। कश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा के समय में ये हुए थे। यह बात राजतरङ्गिणी में लिखी है।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः
प्रथां रत्नाकरश्चगात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ।

अवन्ति वर्मा का समय ८५५ से ८८४ ई० तक माना जाता है । रत्नाकर भी इसी समय के थे, यह समझना चाहिए ।

रत्नाकर के पिता का नाम अमृतभानु था और वे गांग-ह्रद नामक स्थान में रहते थे । महाकवि राजशेखर ने इनके विषय में लिखा है—

मा स्मसन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे ।
इतीव सत्कृतो धात्रा कविरत्नाकरोऽपरः ॥

चारही रत्नाकर (समुद्र) न रहें, इनकी संख्या और भी बढ़े इसलिए ब्रह्मा ने पाँचवे रत्नाकर कवि की सृष्टि की ।

इन्होंने हरविजय नामक एक महाकाव्य बनाया है । यह काव्य पचास सर्गों में पूर्ण हुआ है । इनकी कविता प्रौढ़ होती थी । इन्होंने अपने ग्रन्थ के अन्त में एक प्रतिज्ञा की है । प्रतिज्ञा यह है—

हरविजयमहाकवेः प्रतिज्ञां श्रृणुत कृतप्रणया ममप्रबन्धे,
अपि शिशुरकविः कविःप्रभावाद्भवति कविश्च महाकविः क्रमेण ।

मेरे ग्रन्थ से प्रेम रखनेवाले हरविजय काव्य के महाकवि की प्रतिज्ञा सुनें; कवि के प्रभाव से अकवि बालक कवि और महाकवि क्रम से हो जाता है ।

स्पष्टोच्छ्वसत्किरणकेसरसूर्यविम्ब-
विस्तीर्णकर्णिकमथोदिवसारविन्दम् ।
श्लिष्टाष्टदिग्दलकलापमुखावतार-
बद्धान्धकारमधुपावलि संचुकोच ॥ १ ॥

दिन एक कमल का फूल है। फैलने वाली सूर्य की किरणें उसकी केशर हैं। और सूर्यबिम्ब बड़ा सा कर्णिका है, आठों दिशा अष्टदल हैं, सायंकाल के प्रदोष के कारण फैलनेवाला अंधकार भौंरे हैं। वह कमल बन्द हुआ, अर्थात् सन्ध्या हुई।

अस्ताद्रिगोचरचरं रुरुचे चिराय
गोरोचनारुचिमरीचि विरोचनस्य
बिम्बं दिनान्तपवनाहतपुण्डरीक-
पर्यस्तपक्ष्मरजसेव विलङ्घ्यमानम् ॥ २ ॥

सूर्यबिम्ब की किरणें गोरोचना के समान पीली होगयी हैं। वह सूर्यबिम्ब अस्ताचल पर जाता हुआ बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। सायंकाल के पवन के द्वारा आहत कमल की बिखरी हुई धूल मानो उसमें लिपट गयी है।

सिन्धौ कुसुम्भकुसुमस्तवकाभिताम्र-
माजिह्मकान्तितपनः प्रतिबिम्बितं सत् ।
संपश्यतिस्म निजमण्डलमस्तकूट,-
संघट्टभग्नरथकाञ्चनचक्रशङ्की ॥ ३ ॥

समुद्र में प्रतिबिम्बित होने पर सूर्य की कान्ति कमल पुष्पों के गुच्छों के समान लाल और कुछ टेढ़ी हो जाती है। अस्ताचल के शिखरों के धक्का लगने के कारण कहीं मेरे सोने के रथ के पहिये टूट तो नहीं गये हैं, इसलिए अपने मण्डल को समुद्र में देखता है।

अस्तावलम्बिरविबिम्बतयोदयाद्रिचूडोन्मिषत्सकलचन्द्रतया च सायम्
संध्याप्रनृत्तहरवाद्यगृहीतकांस्यतालद्वयेव समलक्ष्यत नाकलक्ष्मीः ॥ ४ ॥

सूर्य विम्ब के अस्ताचल पर चले जाने के कारण और चन्द्रविम्ब के उदयाद्रि शिखर पर रहने के कारण आकाश की शोभा सायंकाल के नृत्य के लिए दो झाल लिये हुए शिव के समान मालूम पड़ती है।

प्रत्यग्ररागघटनेन्दुकलाकिरीटशैलाधिराजसुतयोरिव गाढ़संपत् ।
संध्याहिताथ दिवसक्षपयोः शरीरभागद्वयाविरलवृत्तिरजृम्भत श्रीः ॥५॥

नवीन प्रेम के कारण एक में मिले हुए शिव और पार्वती की गाढ़ शोभा के समान संध्या के द्वारा बनायी दिन और रात्रि दोनों के शरीर के मिलने की शोभा प्रकाशित हुई।

संध्याप्रवृत्तिरुधिरारुणसान्द्रधातु-
धूलिच्छटाकपिशिताम्बरदिग्विभागा ।
अध्यम्बुराशि गिरिपङ्क्तिरिव न्यपत-
दभ्यापतत्कुलिशताकुलितादिनश्रीः ॥६॥

सायंकाल के समान और रुधिर के समान लाल धातुओं की धूल के फैलने से आकाश और दिशाओं को जिसने चित्र विचित्र सा बना दिया है, और जो उड़नेवाले गौरैया पक्षियों के कारण व्याकुल हो गयी है, वह दिन की शोभा पर्वत श्रेणी के समान समुद्र के बीच डूब गयी।

प्राप्तेऽस्तशैलशिखरस्थिति मुष्णभासि,
लोकानुसार सरलत्वजुषो नलिन्यः ।
संध्यां ससंभ्रममवन्दिषतेव साय-
माताम्रकोरककराञ्जलिजालबन्धाः ॥७॥

जब सूर्य अस्ताचल के शिखर पर गया, तब लौकिक विनय दिखलाने के लिए कमलिनियों ने थोड़ी लाल अपनी

ढोंढियों को अंजली बनाकर घबराहट के साथ संध्या को प्रणाम किया ।

संध्यातपारुणितपार्श्वतटावलम्बि-
विम्बैकदेशजलदः क्षणमस्तशैलः ।
वज्रव्रणाननगलत्क्षतजोक्षितार्ध-
विच्छिन्नविश्लथपतत्र इवावभासे ॥८॥

वज्र के आघात लगने के कारण मुख से बहनेवाले रुधिर से जिसका आधा अङ्ग लाल होगया है और जिसके पंख शिथिल और बिखरे हुए हैं, उस पक्षी के समान एक क्षण के लिए अस्ताचल मालूम होने लगा । क्योंकि उसके एक भाग में लटकनेवाले मेघ का प्रान्त भाग संध्या के सूर्य की किरणों से लाल हो गया था ।

अभ्येयुषः परिणतिं समयक्रमेण, सायंनभःसरसि वासरपङ्कजस्य ।
स्त्रस्तांशुपक्ष्मरविमण्डलवीजकोपचक्रं वभार परिधूसर पीवरत्वम् ॥९॥

आकाशरूपी तालाब का दिन रूपी कमल सायंकाल में पक गया और उस कमल का बीजरूपी रविमंडल पीला और मोटा होगया ।

तुङ्गावकाश रचितस्थितिमातपस्य,
शेषं समुत्सुकतयेव दिदृक्षमाणाः ।
उत्कंधरा इव सरोजभुवोबभूवु-
रुन्नम्रकोरक करालित पुण्डरीकाः ॥१०॥

ऊँचे स्थान में सूर्य की स्थिति देखने के लिए उत्सुक होकर कमलवन ने मानो गर्दन उठायी है। क्योंकि उस समय कमलवन में ढोंढ़ियाँ ऊपर उठ गयी थीं, जिससे कमल

ऊबड़खाबड़ होगये थे और इसीसे कमलवन के गर्दन उठाने की बात समझी गयी ।

आकृष्य मारणमिव पश्चिम दिग्विभाग,
वद्धास्पदद्विरददीर्घकरार्गलेन,
ताराच्छवुद्‌वुदकरालनभस्तटाक-
रक्ताम्बुजं तपन विम्वमलम्वतारात् ॥ ११ ॥

आकाश एक तालाब है जिसमें तारायें बुद्‌बुद के समान हैं । और सूर्य कमल है । उस कमल को मानों पश्चिम दिशा के हाथी ने अपनी सूँड से खींच लिया है; अतएव सूर्य विम्ब इस समय पश्चिम की ओर दिखायी देता है ।

पर्यंस्तमस्तगिरि सानुनि सान्द्रसांध्य-
रागारुणच्छविसहस्रमरीचिविम्बम् ।
कंदर्पकोपित हरस्फुरितानलार्चि-
रूर्ध्वाक्षितारकतिरोहित भेदमासीत् ॥ १२ ॥

अस्ताचल के शिखर पर संध्या के कारण खूब लाल सूर्य का बिम्ब फैल गया है । वह कामदेव पर कुपित महादेव के तृतीय नेत्र से निकले हुए अग्नि स्फुलिंग के समान मालूम होता है ।

आविर्भवत्तिमिरसंवलनानुविद्ध,
संध्यांशुधूसरविपाटलमुष्णधाम्नः ।
भाति स्म निःश्वसितधूमशिखावकीर्ण-
विस्तीर्णशेषफणरत्नविडम्बि बिम्बम् ॥ १३ ॥

सूर्य का बिम्ब फैलनेवाले अंधकार के मिलने से और सायंकाल के प्रकाश के मिलने से थोड़ा काला लिये लाल-वर्ण का बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है । वह साँप के फुफु-

कारों से कुछ मलिन हुए सर्प की मणि की शोभा इस समय धारण कर रहा है ।

मुक्ताम्बरस्तिमिरतस्करलुप्यमानलक्ष्मीमलीमसरुचिः प्रकटोपघातः ।
अह्नाय वासरहितस्फुटलोहितश्रीरुष्णांशुरस्तगिरिकाननमभ्यचिक्षत् ॥१४॥

सूर्य ने अम्बर (आकाश या वस्त्र) छोड़ दिया; अंधकार-रूपी चोरों से लूटे जाने के कारण उसकी शोभा मलिन हो गयी है। उसपर प्रहार पड़े हैं, वह लाल हो गया है और वास रहित (वासर हित, वास=रहित) वह सूर्य अस्ताचल के वनों में चला गया ।

तेजःप्रकर्षपरिहानिपपेयिवांसमारात्प्रदोषतमसाभिविभूष्यमाणम् ।
अम्भोनिधौतपनमन्वपतद्दिनश्रीरेकात्मतां विदधतामिदमेव युक्तम् ॥१५॥

सूर्य का समस्त तेज नष्ट होगया। वह संध्या के अन्धकार से भूषित होरहा है यह देख कर दिनश्री समुद्र में डूब गयी, क्योंकि एकात्मता -- अभेद रखने वालों के लिए यही उचित है ।

आरूढमार्दवमुपाम्बुधिलम्बमानबिम्बः क्रमेण निपतन्रविरन्तरिक्षात् ।
उल्लासितत्सलिलतुङ्गतरङ्गभङ्गसंसर्गजातजडिमेव बभार तेजः ॥१६॥

अन्तरिक्ष से धीरे धीरे गिरता हुआ सूर्य का बिम्ब जब समुद्र के आसपास पहुँचा, तब वह कोमल होगया। मानों ऊपर उछलनेवाली समुद्र की किरणों के संसर्ग के कारण उसका तेज कोमल हुआ है ।

विस्रंसमानकपिलांशु शिखासहस्र
विष्पन्दिसान्द्र रुधिरस्रुति सूर्यबिम्बम् ।
छिन्नं जवाज्जलनिधौ निपपात काल-
खड्गेन विस्फुरितमन्ह इवोत्तमाङ्गम् ॥ १७ ॥

सायंकाल होगया है सूर्य की किरणें एक एक गिर रही हैं, मानों सूर्य-बिम्ब से रुधिर की धारा बह रही है। वह सूर्य-बिम्ब मानो दिन का मस्तक है और कालरूपी खड्ग से कट गया है, वह समुद्र में गिर गया।

ते साधवो भुवनमण्डलमौलिभूता
ये साधुतां निरुपकारिषु दर्शयन्ति ।
आत्मप्रयोजनवशी कृतखिन्नदेहः
पूर्वोपकारिषु खलोपि हि सानुकम्पः ॥१८॥

पृथिवी मण्डल में वे श्रेष्ठ साधु हैं जो निरुपकारियों पर भी अपनी साधुता दिखाते हैं। अपने स्वार्थ के लिए व्याकुल रहनेवाला खल भी अपने पूर्वोपकारी पर दया दिखाता है।

हेतोः कुतोप्यसदृशाः सुजना गरीयः
कार्यं निसर्ग गुरुवः स्फुटमारभन्ते ।
उत्थाय किं कलशतोपि न सिन्धुनाथ-
मुद्वीचिमालमपिबद्भगवानगस्त्यः ॥१९॥

स्वभाव से गुरु सुजनगण किसी कारण वश बड़ा ही कार्य प्रारम्भ करते हैं। अगस्त्य ने घड़ों से उठा कर तरंगों वाले समुद्र का पान किया था।

ख्यातिं यत्र गुणा न यान्ति गुणिनस्तत्रादरः स्यात्कुतः ।
किं कुर्य्याद्बहुशिक्षितोऽपि पुरुषः पाषाणभूते जने ॥
प्रेमारूढ़विलासिनीमदवशव्यावृत्तकण्ठस्वनः
सीत्कारो हि मनोहरोपि बधिरे किं नाम कुर्य्याद्गुणम् ॥२०॥

जहाँ गुणों की प्रसिद्धि ही नहीं होती, वहाँ गुणियों का आदर क्या होगा? पत्थर के समान आदमियों में बहुत पढ़ा लिखा भी मनुष्य क्या कर सकता है? प्रेमाकुल विला-

सिनी के गला टेढ़ा करने से निकला हुआ सीत्कार मनोहर होता है । पर वह बहरों पर क्या प्रभाव डाल सकता है ?

यदयं शशिशेखरो हरो हरिरप्येष यदीशिता श्रियः ।
अमरा अपि यत्सुरा अमी तदिमास्तस्य विभूतिविप्रुषः ॥२१॥

जो मस्तक पर चन्द्रमा धारण करनेवाले शिव हैं, जो ये लक्ष्मी के स्वामी विष्णु हैं और जो ये अमर हैं, देवता हैं, ये सब उस समुद्र की विभूति के बिन्दु हैं ।

आस्तां क्लमापहरणं जलधेर्जलेन दूरे दवाग्निपरिदीपितमानसानाम् ।
एतावदस्तु यदि तोयकणैर्न जिह्वा दन्दह्यते द्विगुणतां च न याति तृष्णा ॥२॥

दवाग्नि से जिनका मन सन्तप्त हो गया है उनकी थकावट यदि समुद्र के जल से दूर नहीं होती तो न हो, केवल इतना ही होना चाहिए कि उसके जल से जीभ न जले और प्यास दूनी न बढ़ जाय ।

मूर्च्छानुबन्धश्वसितप्रलापप्रजागरोत्कम्पविजृम्भणानि ।
फलान्यवाप्तानि तया सुखार्थमात्मार्पणं त्वय्यपि नाम कृत्वा ॥२३॥

दूती कहती है, उसने सुख के लिए आपको आत्मार्पण किया था, पर उसका फल उसे मूर्च्छा, श्वास, प्रलाप, प्रजागर, कम्प और जम्भाई मिल रहा है ।

यदधरगतमादधाति तृष्णां दिशति नयश्चषकोत्पलस्य निद्राम् ।
किमपि तदमृतं स कोपि चन्द्रो वदनमयः श्रियमातनोति तन्व्याः॥२४॥

जो अधर के समीप आने पर तृष्णा बढ़ाता है, चषक कमल को निद्रा भी नहीं देता, वह कोई अमृत है वह मुखरूपी कोई चन्द्रमा है, जो तरुणी की शोभा बढ़ाता है ।

काञ्चिगुणैर्विरचिता जघनेपुलक्ष्मी--
लब्धा स्थितिः स्तनतटेषु च रम्यहारैः ।
नो भूषिता वयमितीव नितम्बिनीनां
कार्श्यं निरर्गलमधार्यत मध्यभागैः ॥२५॥

करधनी के द्वारा जघनों की शोभा बढ़ायी गयी, स्तनों पर उत्तम हार पहनाया गया। पर हम को कोई भूषण नहीं मिला, इसी दुःख से स्त्रियों का मध्यभाग दुर्बल हो गया।

व्यक्तोपकारममुना स्थगितासु दिक्षु
प्रेयोगृहं सुखमलक्षितमेव यामः ।
धम्मिल्ल बन्धरुचिरैरभिसारिकाभिः
प्रेम्णातमश्चिरमितीव शिरोभिरूहे ॥२६॥

इसने दिशाओं को छिपाकर स्पष्ट उपकार किया है। अब हम लोग छिप कर अपने प्रिय के घर जाँयगीं। इसी कारण प्रेमपूर्वक अभिसारिकाओं ने गूथे हुए केशों के कारण सुन्दर सिरों से अन्धकार को धारण किया है।

आवद्धपद्ममुकुलाञ्जलियाचितोसा-
प्रत्सृज्य संप्रति गतः कथमंशुमाली ।
अन्तर्विरुद्धमधुपक्कणितैरितीव
स्वप्नायतिस्म नलिनी निशि वद्धनिद्रा ॥२७॥

ढोंढ़ीरूपी अंजली बाँधकर हमने प्रार्थना की थी; इस समय छोड़कर चन्द्रमा कहाँ चले गये। रात को सोयी हुई कमलिनी, कमलपुट में वन्द भ्रमर के शब्दों से यह स्वप्न देख रही है।

अस्ताद्रिपार्श्व मुपजग्मुषि तिग्मभासि
जानीत शीतकिरणोभ्युदितो न वेति ।
चारा इवाथ रजनीतिमिरप्रयुक्ता--
श्चेरुश्चिरं चरणभूमिषु चञ्चरीकाः ॥२८॥

सूर्य अस्ताचल के पास चले गये, देखो चन्द्रमा उदित हुआ कि नहीं, रात्रि के अन्धकार से यह आज्ञा पाकर चार (दूत) के समान भौंरे घूम रहे हैं ।

निष्ठ्यूतकज्जलकरालशिखाशिखण्डै--
रुत्सङ्गवृत्तिमधिगम्य निकेतनानाम् ।
स्नेहानुवन्धिभिरदीपि दिनावसाने
संध्यार्भकैरिव सरागकरैः प्रदीपैः ॥२९॥

जिन्होंने कज्जल का भयानक मस्तक हटा दिया है और जो घरों के गोद में वर्तमान हैं । वे स्नेह (प्रेम या तैल) का अनुसरण करने वाले लालकर (हाथ या किरण) के दीपक दिन के अन्त में प्रकाशित हुए, मानों ये सन्ध्या के पुत्र हों ।

पीतस्तुषारकिरणो मधुनैव सार्ध--
मन्तःप्रविश्य चषकप्रतिबिम्बवर्ती ।
मानान्धकारमपि मानवतीजनस्य
नूनं बिभेद यदसौ प्रससाद सद्यः ।।३०॥

चषक में (मद्य पीने के पात्र में) चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ा था, मालूम होता था कि स्त्रियों ने शराब के साथ चन्द्रमा को भी पीलिया । क्योंकि उनके हृदय में पैठ कर चन्द्रमा ने मानरूपी अन्धकार का नाश कर दिया और वे शीघ्र ही प्रसन्न हो गयीं ।

उत्साहितासकलशीधुमदेन वक्तु--
सर्धोदिते नववधूरवलम्बितह्रीः ॥
आलीजनेष्वनुपसंहृतवाक्यशेषा
भर्तुश्चकार सविशेषकुतूहलित्वम् ॥३१॥

सुरा के नशा के कारण वह बोलने के लिए उत्साहित हुई। पर आधा कहने पर वह लज्जित होकर चुप रह गयी। उसने अपना कथन समाप्त नहीं किया. इससे पति का कुतूहल और बढ़ गया।

राजशेखर ।

इन्होंने कर्पूरमंजरी, बाल रामायण, विद्धशाल भंजिका और बाल भारत नाम के नाटक बनाये हैं। ये महाराष्ट्र देश के निवासी थे। इनके पिता का नाम ठीक ठीक मालूम नहीं होता। इन्होंने अपनेको एक जगह दौर्दकि लिखा है एक जगह दौहकि, सम्भवतः इनके पिता का नाम दुहकि या दुर्दकि होगा। ये नाम सुनने में ज़रा विचित्र मालूम पड़ते हैं। इनकी माता का नाम शीलवंती था। महाकवि अकालजलद इनके पितामह थे। यायावर कुल में ये उत्पन्न हुए थे। बालरामायण की प्रस्तावना में स्वयं राजशेखर यह बात कहते हैं—

स मूर्त्या यत्रासीद्गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले ।

कुछ लोग राजशेखर को शैव समझते हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थों में प्रायः शिव को ही नमस्कार किया है। इस कारण इनके शैव होने की प्रसिद्धि लोगों में फैल गयी। सोमदेव रचित यशस्तिलक चम्पू में राजशेखर के जैन धर्म के अभ्युदय के लिए प्रयत्न करने की बात लिखी है। सम्भवतः ये राजशेखर दूसरे हों।

अवन्तीसुन्दरी नाम की चहुआन कुलोत्पन्ना स्त्री से इन्होंने ब्याह किया था। ये कान्यकुब्ज के राजा महेन्द्रपाल के गुरु थे। यह बात विद्धशालभंजिका में स्वयं राजशेखर ने लिखी है—

रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः
सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः।

महीपाल का शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो ९७४ विक्रमी संवत् का लिखा हुआ है। यह महिपाल महेन्द्रपाल का पुत्र था। इससे राजशेखर का समय नवीं सदी का प्रारम्भ समझना चाहिए। दशरूपक, औचित्य विचार चर्चा आदि ग्रन्थों में इनके श्लोक उद्धृत हुए हैं।

राजशेखर की कविता बड़ी ही मनोहर है। इनकी कविता की प्रशंसा में शङ्करवर्मा ने एक श्लोक लिखा है, जो नीचे लिखा जाता है—

पातुं श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मता,
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः
भोक्तुं स्वादुफलञ्च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकम्,
तद्भ्रातः शृणु राजशेखर कवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनी।

इनके कुछ श्लोक सुनिये —

पर्णं नागरखण्डमार्द्रं सुभगं पूगीफलैलास्तथा ।
कर्पूरस्य च तत्र कोऽपि चतुरस्ताम्बूलयोगक्रमः ।
देशः केरल एष केलिसदनं देवस्य शृङ्गारिण-
स्तद् दृष्ट्वा कुरु कोमलाङ्गि सफले द्राघीयसी लोचने ॥१॥

हरा और अच्छा पान सुपारी और इलायची और इनमें कपूर की सावधानी से योग यहाँ होता है। यह केरल देश है, यह कामदेव का क्रीड़ास्थान है। हे कोमलाङ्गि, इसको देखकर अपनी आँखों को सफल करो।

वाक्सत्वाङ्गसमुद्भवैरभिनयैर्नित्यं रसोल्लासतो,
वामाङ्ग्यः प्रणयन्ति यत्र मदनक्रीड़ामहानाटकम् ।
अत्रान्ध्यास्तव दीक्षणेन त इमे गोदावरीः स्रोतसां
सप्तानामपि वार्निधिप्रणयिनां द्वीपान्तराणि श्रिताः ॥२॥

वचन मानसिक भाव और शरीर के द्वारा उत्पन्न होने वाले अभिनयों से जहाँ स्त्रियाँ हर्षपूर्वक कामदेव का महा-नाटक खेलती हैं, समुद्र में मिलनेवाली गोदावरी की सातों धाराओं से द्वीप के समान बना हुआ यह देश है।

कावेरी कबरीव भामिनि भुवो देव्याः पुरो दृश्यतां ।
पूगैर्नागलताश्रितैरुपदिशत्याश्लेषविद्यामिव ।
कर्णाटीजनमज्जनेषु जघनैर्यस्याः पयः प्लावितं ।
पीत्वा नाभिगुहाभिरात्तरुचिभिः प्राचीं दिशं नीयते ॥३॥

हे देवि, कावेरी नदी पृथ्वी देवी के केशपाश के समान मालूम होती है। यह आगे देखो, लताश्रित सुपारी के वृक्षों के द्वारा यह आलिङ्गन विद्या का उपदेश दे रही है। कर्णाट की स्त्रियों के स्नान के समय उनके जघनों से उछाले जल को पीकर पूर्व दिशा की ओर जारही है।

यत्क्षेमं त्रिदिवाय वर्त्म निगमस्याङ्गं च यत्सत्तमं
स्वादिष्ठञ्च यदैक्षवादपि रसाच्चक्षुश्च यद्वाङ्मयम्।
तद्द यस्मिन् मधुरप्रसादि रसवत् कान्तञ्च काव्यामृतं
सोऽयंसुभ्रु पुरोविदर्भविषयः सारस्वतीजन्मभूः॥४॥

जो कल्याण है, जो स्वर्ग का मार्ग है, जो शास्त्रों का उत्तम अङ्ग है, ईक्षु रस से भी जो स्वादिष्ट है जो वचनरूपी चन्द्र है वह मधुर प्रसन्नकरनेवाला सरस और मनोहर काव्यामृत जिसमें है वह यह विदर्भ देश है। हे सुभ्रू, यह विद्याओं की जन्मभूमि है।

यद्दयोनिः किल संस्कृतस्य सुदृशां जिह्वासु यन्मोदते
यत्र श्रोत्रपथावतारिणि कटुर्भाषाक्षराणां रसः।
गद्यं चूर्णपदंपदं रतिपतेस्तत्प्राकृतं यद्वच-
स्तांल्लाटांल्ललिताङ्गि पश्य नुदती दृष्टेर्निमेषव्रतम्॥५॥

जो संस्कृत भाषा का मूल कारण है, जिसे स्त्रियां बोलती हैं, जिसके सुनलेने पर अन्य भाषा के अक्षर कठोर मालूम पड़ते हैं, जिसका असमस्त पद गद्य कामदेव का स्थान है, वह प्राकृत जिनकी बोली है। हे ललिताङ्गि, उस लाट देश को देखो, उसके देखने के लिए आँखों का निमेष व्रत भूल जाओ।

सेयं सुभ्रु पुरः कलिन्दतनयागीर्वाणसिन्धोःसखी,
वासः कालियपन्नगस्य यमुना दृग्गोचरे वर्तते।
वन्दस्वार्यमणीमिमां दुहितरं वैवस्वतस्यानुजां
यस्या स्वर्णपरीक्षणक्षमदृषत्तापी स्वसा सोदरी॥६॥

हे सुभ्रू, यह गङ्गा की सखी कलिन्दतनया यमुना सामने है। जहाँ कालिय साँप रहता है। इस सूर्य की कन्या और यमराज की छोटी बहिन को नमस्कार करो; जिसकी सोदर

वहिन तापी है, जहां सुवर्ण की परीक्षा करने योग्य पत्थर होते हैं।

यत्रार्ये न तथानुरज्यति कविग्रामीणगीगुंम्फने।
शास्त्रीयासु च लौकिकीषु च यथा भव्यासु नव्योक्तिषु,
पञ्चालास्तव पश्चिमेन त इमे वामा गिरां भाजना-
स्तद्दृष्टेरतिथी भवन्तु यमुनां त्रिस्रोतसं चान्तरा ॥७॥

आर्यें, जहां का कवि ग्रामीण कविता करना नहीं चाहता, किन्तु शास्त्रीय लौकिक सुन्दर और नयी उक्तियों में ही वह अनुराग प्रकाशित करता है, तुम्हारे पश्चिम के ओर वही यह पाञ्चाल देश है, जहां वक्र उक्ति का बड़ा आदर है, उस यमुना और गङ्गा के बीचवाले पाञ्चाल देश को देखो।

यो मार्गः परिधानकर्मणि गिरां यः सूक्तिमुद्राक्रमो
भङ्गीर्या कवरीचयेषु रचनं यद्भूषणालीषु च
दृष्टं सुन्दरि कान्यकुब्जललनालोकैरिहान्यच्च य-
च्छिक्षन्ते सकलासु दिक्षु तरसा तत्कौतुकानि स्त्रियः ॥८॥

कान्यकुब्ज स्त्रियों के कपड़े पहने की जो रीति है, बोलने का जो ढंग है और केशपश बनाने की तथा गहने पहनने की जो विधि है उसको अन्य देश की स्त्रियां कौतुक पूर्वक सीखती हैं।

इन्द्रोर्लक्ष्म त्रिपुरजयिनः कण्ठमूलं मुरारे-
स्त्वन्नागानां मदजलमषीभांजि गण्डस्थलानि,
अद्याप्युर्वीवलयतिलक, श्यामलिम्नानुलिप्ता-
न्याभान्त्येवं वद धवलितं किंयशोभिस्त्वदीयैः॥

चन्द्रमा का कलङ्क शिव का कण्ठमूल, श्रीकृष्ण और तुम्हारे हाथियों के कपोल स्थल जिनमें काला मदजल

लगा हुआ है, हे पृथ्वीतलभूषण ये सब आज भी काले हैं, फिर आपके यश ने किसको श्वेत बनाया ।

उदन्वच्छिन्ना भूः सचपतिरपां योजनशतम्,
सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कथयति ।
इतिप्रायो भावाः स्फुरदवधिमुद्रामुकुलिताः
सतां प्रज्ञोन्मेषः पुनरयमसीमा विजयते ॥

पृथ्वी समुद्र से घिरी हुई है और वह समुद्र सौ योजन परिमाण का है, आकाश में सदा परिभ्रमण करने वाला यह पथिक सूर्य आकाश का भी परिमाण बतलाता ही है, इस प्रकार जितने पदार्थ हैं, उन सब की कोई न कोई अवधि है, पर सज्जनों के बुद्धिविकास की सीमा नहीं, वह असीम है ।

दातुर्वारिधरस्यमूर्धनि तडिद्गाङ्गेयश्रृङ्गारिता,
वृक्षेभ्यः फलपुष्पदायिनि मधौ मत्तालिवृन्दस्तुतिः ।
भीतत्रातरि वृत्तिदातरि गिरौ पूजाभ्ररैश्चामरैः
सत्कारोऽयमचेतनेष्वपि विधेः किं दातृषु ज्ञातृषु ॥

देनेवाले मेघ के मस्तक पर सुवर्ण श्रृङ्गारित विद्युत होती है, वृक्षों को फलपुष्प देनेवाले वसन्त के मतवाले भौरों का समूह स्तुति करता है, डरे हुओं की रक्षा करनेवाला और वृत्ति देने वाला पर्वत झरना रूपी चामरों से पूजित होता है । अचेतनों में भी दाता का इस प्रकार का सम्मान देखा जाता है, फिर चेतन दाता के विषय की तो बात ही क्या ।

दाहोऽम्भः प्रसृतिंपचः प्रचयवान् वाष्पः प्रणालोचितः
श्वासाःप्रेङ्खितदीप्रदीपलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः

किञ्चान्यत् कथयामि रात्रिमखिलां त्वन्मार्गवातायने
हस्तच्छलनिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते ।

जल गर्म मालूम पड़ता है, भोजन पत्थर भर होगया है, आसूँ बढ़ता जाता है, वह नाली में बहने के योग्य होगया है, श्वास उज्ज्वल दीप ज्वाला के समान अविराम निकल रहे हैं, समस्त शरीर पीला होगया है, और क्या कहूँ, समूची रात तुम्हारा मार्ग देखने के लिए वातायन पर बैठी रहती है और हाथ को छाता बनाकर अपने पर पड़नेवाली चन्द्रमा की किरणों को रोकती है, ऐसी दशा उसकी हो रही है (यह दूती का नायक से कथन है)

लीलाशुकः ।

इस कवि का कुछ परिचय नहीं मिलता। इनके विषय में केवल इतनाही कहा जा सकता है कि यह दक्षिणी थे, शिव-भक्त थे और श्रीकृष्ण में इनकी अटल भक्ति थी।

यह कोई महाकवि नहीं थे; किन्तु पण्डितराज जगन्नाथ कुलशेखर और भल्लट आदि के समान मधुर और भावपूर्ण श्लोकों के निर्माता थे। इनके श्लोकों का संग्रह "कृष्णकर्णामृत" नाम से प्रसिद्ध है। वह तीन शतकों में विभक्त है। इनके प्रबन्ध से कुछ चुने हुए श्लोक नीचे दिये जाते हैं।

मुकुलायमाननयनाम्बुजं विभो मु रलीनिनादमकरन्दनिर्भरम् ।
मुकुराय माणमृदु गण्डमण्डलं मुखपंकजं मनसि मे विजृम्भताम् ॥१॥

श्रीकृष्ण का मुखकमल मेरे मन में प्रकाशित हो, जिसमें आँखरूपी दो कौंढ़ियां लगी हैं, वंसी का निनाद जिसका मकरन्द है, जिसका कोमल कपोलमण्डल दर्पण के समान चमकता है ।

मदशिखण्डिशिखण्डविभूषणं मदनमन्थरदिग्ध मुखाम्बुजम् ।
व्रजवधूनयनाञ्चलवाञ्छितं विजयतां मम वाङ्मयजीवितम् ॥२॥

मस्त मयूर के पूँछ को जिसने भूषण बनाया है, विलास के कारण जिसका मुखकमल सुन्दर होगया है, ब्रज की स्त्रियों के कटाक्ष से जो ठगा गया है, उस मेरे वाङ्मय जीवित की जय हो, अर्थात् उसकी जय हो जिसका मैं वर्णन करना चाहता हूं ।

पुनः प्रसन्नेन मुखेन्दुतेजसा पुरोऽवतीर्णस्य कृपामहाम्बुधेः ।
तदेव लीलामुरलीरवामृतं समाधिविघ्नाय कदा नु मे भवेत् ॥३॥

कब वह कृपासागर मेरे सामने उपस्थित होगा वह कब अपने प्रसन्न मुखचन्द्र से मुरली बजावेगा और वह मुरली-ध्वनि कब मेरी समाधि का विघ्न होगी । अर्थात् जिसके लिए समाधि लगायी जाती है उसीकी मुरली ध्वनि सुनायी पड़े तो समाधि की आवश्यकता ही क्या है ? यह विघ्न ही समाधि की पूर्ति है ।

परामृश्यं दूरे परिषदमुनीनां व्रजवधू-
दृशां वश्यं शश्वत्त्रिभुवनमनोहारि वपुषम् ।
अनामृश्यं वाचामनिद मुदयानामपि कदा
दरीदृश्ये देवं दरदलितनीलोत्पलरुचिम् ॥४॥

मुनियों की परिषत् जिसका केवल विचार करती है, व्रज की स्त्रियाँ जिसको अपनी आंखों से वश में करती हैं, जिसका शरीर त्रिभुवन में सुन्दर है, वचनों से जिसका वर्णन नहीं होता, उस देव को मैं कब देखूंगा, जो थोड़ा विकसित नील-कमल के समान कान्तिवाला है।

सुष्णानमेतत्पुनरुक्तशोभमुष्णेतरांशोरुदयं मुखेन ।
तृष्णाम्बुराशिं त्रिगुणीकरोति कृष्णाद्वयं किंचन जीवितं मे ॥५॥

चन्द्रमा का उदय पुनरुक्त है; क्योंकि उसीके समान श्रीकृष्ण का मुख है, इस कारण चन्द्रोदय को अपने मुख की शोभा से अनर्थक बनानेवाला और जिसके दर्शन से तृष्णा (अतृप्ति) का समुद्र बढ़ जाता है, वह एक कृष्ण ही मेरा जीवन है।

शुश्रूषसे यदि वचः शृणु मामकीनं पूर्वैरपूर्वकविभिर्न कटाक्षितं यत् ।
नीराजनक्रमधुरं भवदाननेन्दोर्निर्व्याजमर्हति चिराय शशिप्रदीपः ॥६॥

यदि कुछ सुनना चाहते हो तो मेरी बात सुनो, जिसे पहले के महाकवियों ने भी नहीं कहा, जो एकदम नयी है। वह यह है—यह चन्द्रमारूपी दीपक आपके मुखचन्द्र की आर्ती के ही योग्य है।

यां दृष्ट्वा यमुनां पिपासुरनिशं व्यूहो गवां गाहते ।
विद्युत्वानिति नीलकण्ठनिवहो द्रष्टुं समुत्कण्ठते ॥
उत्तंसाय तमालपल्लवमिति च्छिन्दन्ति यां गोपिकाः ।
कान्तिः कालियशासनस्य वपुषः सा पावनी पातु वः ॥७॥

प्यासे गौओं का समूह जिसको देखकर जमुना में पानी पीने जाता है। मेघ है; यह समझकर मयूर जिसको देखने के

लिए उत्कण्ठित होते हैं, यह तमाल का पत्र है यह जानकर गोपिकाएं जिसको तोड़ना चाहती हैं, उस कालियदमन करनेवाले श्रीकृष्ण के शरीर की पवित्र कान्ति तुम्हारी रक्षा करे।

अयि मुरलि मुकुन्दस्मेरवक्त्रारविन्दश्वसनमधुरसज्ञे त्वां प्रणमाद्य याचे।
अधरमणिसमीपं प्राप्तवत्यां भवत्यां कथय रहसि कर्णे मद्दशां नन्दसूनोः॥८

हे मुरलि, हे कृष्ण के हंसते मुखकमल के श्वास का मधुर रस जानने वाली, तुमको प्रणाम कर मैं यह प्रार्थना करता हूँ। जब तुम नन्दपुत्र के मुंह के समीप जाना तो एकान्त में उनके कानों में मेरी दशा अवश्य कहना।

अमुनाखिलगोपगोपनार्थं यमुनारोधसि नन्दनन्दनेन ।
दमुनावनसंभवः पपे नः किमुनासौ शरणार्थिनां शरण्यः ॥९॥

इस नन्दनन्दन ने यमुना के तीर पर सब गोपों की रक्षा करने के लिए कालियदह का मथन किया, क्या वह शरण चाहने वालों को शरण न देगा।

वृन्दावनद्रुमतलेषु गवां गणेषु वेदावसानसमयेषु च दृश्यते यत्।
तद्वेणुनादनपरं शिखिपिच्छचूड़ं ब्रह्म स्मरामि कमलेक्षणमभ्रनीलम्॥१०॥

वृन्दावन के वृक्षों की छाया में, गौओं के समूह में, वेदों की समाप्ति में, जो दिखायी पड़ता है, उस वंशी बजानेवाले मयूर पुच्छ धारण करने वाले कमल के समान आंखों वाला और मेघ के समान नीले ब्रह्म का मैं स्मरण करता हूं।

देवकीतनयपूजनपूतः, पूतनारि–चरणोदक धूतः।
यद्यहं स्मृतधनञ्जयसूतः, किं करिष्यति स मे यमदूतः ॥११॥

यदि हमने अपने को देवकी तनय के पूजन से पवित्र किया है, यदि हम पूजनादि के चरणोदक से प्रक्षालित हुए हैं, यदि हमने अर्जुन के सारथि का स्मरण किया है तो वह यमदूत हमारा क्या कर सकता है ।

आताम्रपाणिकमलं प्रणयि प्रतोदमालोलहारमणिकुण्डलहेमसूत्रम् ।
आविःश्रमाम्बुकणमम्बुदनीलमव्यादाद्यं धनञ्जयरथाभरणंमहोनः ॥१२॥

जिसका हस्तकमल लाल है, क्रीड़ा जिसको प्रिय है, हार तथा कुण्डल जिसके हिल रहे हैं, परिश्रम से जिसके पसीने निकल रहे हैं जो मेघ के समान नीलवर्ण का है वह अर्जुन के रथ का भूषण दिव्यप्रभा हम लोगों की रक्षा करे ।

कालिन्दीपुलिनादरेषु मुसली यावद्गतः खेलितुं
तावत्कर्बुरिकापयः पिव हरे वर्धिष्यते ते शिखा ॥
इत्थं वालतया प्रतारणपराः श्रुत्व यशोदागिरः
पायाद्वः स्वशिखां स्पृशन्प्रमुदितः क्षीरेऽर्धपीते हरिः ॥१३॥

बलदेव जब तक यमुना के तीर खेलने गया है तब तक हे कृष्ण कलोर का दूध पीलो, तुम्हारी चोटी बढ़ेगी । कृष्ण वालक था इसलिए उसे ठगने के लिए यशोदा ने ये बातें कहीं । कृष्ण आधा दूध पीने पर अपनी चुटिया देखने लगा, वह कृष्ण तुम्हारी रक्षा करे ।

लावण्यवीचीललिताङ्गभूषां भूषापदारोपितपुण्यवर्हाम् ।
कारुण्यधाराच्छकटाक्षमालां वाङ्गां भजेद्वल्लववंशलक्ष्मीम् ॥१४॥

लावण्य परम्परा ही जिसके शरीर का सुन्दर भूषण है जिसने भूषण के स्थान पर पवित्र वर्ह (मयूर पुच्छ) धारण किया है, जिसकी चितवन करुणा की सुन्दर धारा है, उस गोपकुल की लक्ष्मी, वाले को मैं भजता हूं ।

प्रातःस्मरामि दधिघोषविधूतनिद्रं
निद्रावसानरमणीयमुखारविन्दम् ॥
हृद्यानवद्यवपुषं नवनीतचोर-
न्मोलिताब्जनयनं नयनाभिरामम् ॥१५॥

प्रातःकाल दही मथने की आवाज़ से जिसकी निद्रा खुल गयी है, निद्रा खुल जाने से जिसका मुखकमल सुन्दर होगया है जिसका शरीर सुन्दर और मनोहर है जिसकी कमलरूपी आंखें खुल गयी हैं उस नयनाभिराम को मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूं।

वररुचि

राजा विक्रमादित्य के समय में एक वररुचि का पता मिलता है। पत्रकौमुदी नाम की एक पुस्तक वररुचि की वनायी है, जिसमें पत्र लिखने की विधि बतलायी गयी है। उस पुस्तक के प्रारम्भ में लिखा है।

विक्रमादित्यभूपस्य कीर्तिसिद्धेर्नियोगतः
श्रीमान् वररुचिर्धीमांस्तनोति पत्रकौमुदीम्,
राज्ञाँ मन्त्रिनप्रवीराणां पण्डितानां तथैव च,
गुरुणां स्वामि भार्याणां तथैव पितृ पुत्रयोः
सन्यासिभृत्यशभूणां तथैवान्यविवेकनाम,
एतेषांमपि सर्वेषां पत्रचिन्हादिकं ब्रुवे।

इस पुस्तक में पत्र लिखने का प्रकार बतलाया गया है, किसको किस प्रकार का पत्र लिखना चाहिए आदि बातें इस पुस्तक में बतलायी गयी है। इनके भाँजे का नाम सुबन्धु

था जिन्होंने वासवदत्ता नाम का गद्यकाव्य लिखा है। सुबन्धु ने वैद्यशतक नाम का एक और ग्रन्थ बनाया है।

व्याकरणवार्तिककार कात्यतयन को भी वररुचि कहते हैं। पर वे इन वररुचि से भिन्न हैं। उनका समय लगभग ई० सदी के चार सौ वर्ष पूर्व माना जाता है, जिस समय महानन्द का राज्य था। यह बात भविष्य पुराण में लिखी है। पतञ्जलि मुनि के पहले कात्यायन हुए थे और पतञ्जलि का समय ई० सदी से १५० सौ वर्ष पूर्व है। इसलिए वररुचि का पूर्वोक्त समय ठीक जान पड़ता है।

प्राकृतप्रकाश नामक एक प्राकृत व्याकारण के कर्ता बररुचि का भी पता मिलता है। बहुत संभव है कि ये वररुचि विक्रमादित्य के समय वाले हों और पालिव्याकरण के कर्ता कात्यायन हों, इसप्रकार वररुचि नामक दो पंडितों का पता मिलता है, कौन ग्रंथ किस का बनया है, इसके निश्चय करने का इस समय कोई उपाय नहीं।

सूक्तिमुक्तावाली में महाकवि राजशेखर ने इनके लिए एक श्लोक कहा है—

यथार्थता कथं नाम्नि माभूद्वररुचेरिह ।
व्यधत्त कण्ठाभरणं यः सदारोहणप्रियः ॥

इस श्लोक से मालूम होता है कि कण्ठाभरण नामक एक और ग्रन्थ इन्होंने बनाया था।

दानोपभोगवन्ध्या या सुहृद्भिर्या न भुज्यते ।
पुंसां यदि हि सा लक्ष्मीरलक्ष्मीः कतमा भवेत् ॥१॥

जो दान और उपभोग के काम में न आवे, जिसका उपभोग मित्रगण भी न कर सकें, वह यदि पुरुषों के लिए लक्ष्मी है तो अलक्ष्मी कौन कही जायगी ।

पाण्डुच्छायं क्षामं वक्त्रं कमलमुखि ललितमलकं करे स्थितमाननं
शून्यालोका दीना दृष्टिः शिखरमभिपतितरसना तनुस्तनुतां गता ॥
ध्यानैकाग्रामन्दा बुद्धिर्मदजननि रहसि रमसे करोपि न सत्कथां
को नामायं रम्यो व्याधिस्तव सुतनु कथय किमिदं न खल्वसि नातुरा ॥२॥

हे कमलमुखि, तुम्हारा पीला मुख दुर्बल हो गया, सुन्दर केशपासवाला मुख तुमने हाथ पर रखा है, दुःखी नेत्रों से मानों देखने की शक्ति जाती रही, शरीर दुर्बल हो गया है जिससे करधनी मस्तक की ओर चली गयी है। हे मदजननि तुम्हारी प्रखर बुद्धि सदा ध्यान में लगी रहती है, अकेले में रहना तुम्हें पसन्द है, तुम बातचीत तक नहीं करती, सुतनु, तुम्हारा यह कौन सा विलक्षण रोग है, कहो यह क्या है, जिससे तुम आतुर नहीं हो ।

हस्ते कपोलममलं पथि चक्षुर्मनस्त्वयि ।
न्यस्तमास्ते चिरंतस्या मानस्यावसरः कुतः ॥३॥

सुन्दर कपोल हाथ पर है, आँखें मार्ग की ओर लगी हुई है और मन सदा तुममें लगा हुआ है, ऐसी दशा में मान करने को अवसर कहां है ।

बहुनात्र किमुक्तेन दूति मत्कार्यसिद्धये ।
स्वमांसान्यपि दत्तानि वस्तुष्वन्येषु का कथा ॥४॥

हे दूति, अधिक क्या कहा जाय, मेरे कार्य की सिद्धि के लिए तुमने अपने मांस तक दे दिये, अन्य वस्तुओं की तो बात ही क्या ?

इन्द्रगोपैर्बभौ भूमिर्निचितेव प्रवासिनाम् ।
अनङ्गवाणैर्हृद्भेदस्त्रुतलोहितविन्दुभिः ॥५॥

इन्द्रगोप (इस नाम का एक कीड़ा) भूमि में फैल गये, उस समय कामदेव के वाणों से छिदे प्रवासियों के हृदय से निकले हुए रुधिरविन्दु मानो भूमि पर फैले हैं ऐसा मालूम पड़ता था।

सान्द्रनीहारसंवीततोयगर्भगुरूदरा ।
सततस्तनिताभ्राली निषसादाद्रिसानुषु ॥६॥

सघन कुहरे से ढंकी हुई, गर्भ में जल रहने के कारण भारी पेटवाली और सदा बोलनेवाली मेघों की पंङ्क्ति पर्वतों के शिखर पर बैठी ।

व्योम्नि नीलाम्बुदच्छन्ने गुरुवृष्टिभयादिव ।
जग्राह ग्रीष्मसंतापो हृदयानि वियोगिनाम् ॥७॥

आकाश में काले काले बादल छा गये, बड़ी भारी वृष्टि होगी, इसी भय से ग्रीष्म ऋतु का सन्ताप वियोगियों के हृदय में चला गया अर्थात् वर्षाकाल के आगमन होते ही वियोगियों का हृदय जलने लगा ।

आलोहितमाकलयन्कंदलमुत्कम्पितं मधुकरेण ।
संस्मरति पथिषु पथिको दयिताङ्गुलितर्जनाललितम् ॥८॥

थोड़ा लाल और भ्रमर के द्वारा कँपाया हुआ नया अङ्कुर पथिकों ने मार्ग में देखे और उससे उन्हे अपनी भार्या की उन अंगुलियों का स्मरण हुआ, जो कि तर्जन करने के समय भी सुन्दर मालूम पड़ती हैं ।

प्रसादयन्त्या शिरसा चन्द्रमन्तर्मलीमसम् ।
तीव्रतापः कृतो भास्वानुषेवालोहितद्युतिः ॥९॥

कमलिनी सिर नवा कर भीतर से काले चन्द्रमा को मना रही है, यह देखकर सूर्य क्रोध से लाल हो गया और उसने कड़ा ताप या क्रोध किया ।

कलमं फलभारातिगुरुमूर्धतया शनैः ।
विननामान्तिकोद्भूतं समाघ्रातुमिवोत्पलम् ॥१०॥

कलम नामक धान का मस्तक फल के भार से बहुत भारी हो गया था इस कारण वह नत गया मालूम होता था मानो अपने पास ही फूले हुए कमल को सूंघने के लिए उसने थोड़ासा सिर नवाया है ।

मयैवाजन्मसम्वृद्धः संपन्न क्वनु यास्यति ।
शालेर्वियोगभीत्येव क्षेत्राम्भःकृशतां ययौ ॥११॥

हम्हीं ने उसे जन्म दिया और बढाया, अब तयार होकर न मालूम कहाँ जायगा, मानो धान के वियोग होने के भय से ही खेतों का जल सूखने लगा ।

मन्युनेव कृशां ग्रीष्मे वर्षासु रुदितामिव ।
शरत्प्रसादमनयच्छशाङ्कस्य निशाङ्गनाम् ॥१२॥

मानों क्रोध से ग्रीष्म ऋतु में चन्द्रमा की रात्रि नाम की जो स्त्री कृश होगयी थी और वर्षाकाल में जो रोती थी, उसे शरदऋतु ने प्रसन्न किया, अर्थात् शरद्काल के आने से रात्रि सुन्दर हुई ।

उपकारिणि विक्षीणे शनैः केदारवारिणि ।
सानुक्रोशतया शालिरभूत्पाण्डुरवाङ्मुखः ॥१३॥

अपने उपकार करने वाले खेत के जल जब धीरे धीरे सूखने लगे, तब बड़े दुःख से धान पीला हो गया और उसने अपना मुंह नीचा कर लिया ।

यत्रयत्राभिजायेयं यदि दुःखाकुले कुले ।
तत्र तत्राक्षयंमेऽस्तु माधवाराधनंधनम् ॥१४॥

जहाँ जहाँ मैं उत्पन्न होऊं, चाहे दुःख से व्याकुल कुल में ही मेरा जन्म क्यों न हो, वहीं वहीं मेरा माधव का आराधन रूपी धन सदा बना रहे, उसका नाश न हो ।

वाल्मीकि (आदिकवि)

ये आदिकवि कहे जाते है । इन्होंने ही प्रसिद्ध रामायण काव्य बनाया है, लौकिक छन्दों में इसी काव्य की रचना पहले पहल हुई है, इस कारण यह काव्य भी आदिकाव्य कहा जाता है ।

रामचन्द्र लङ्का विजय करके अयोध्या चले आये, राज्य-शासन करने लगे । किसी लोकापवाद के भय से उन्होंने लक्ष्मण को आज्ञा दी कि सीता को कहीं जङ्गल में ले जाकर छोड़ आओ । लक्ष्मण ने सीता को तमसा नदी के उस पार जाकर छोड़ दिया । उसी समय वाल्मीकि ऋषि से सीता की भेंट हुई । उसी समय वाल्मीकि ऋषि की कविता शक्ति जाग उठी और वे वाल्मीकीय रामायण बनाने लगे; क्योंकि रामजन्द्र के आदर्श पुरुष होने की बातें वे पहले नारद से सुन चुके थे। रामायण के बनाने में ऋषि के १०, १२ वर्ष लगे । जब रामचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया था, उस समय राम-चन्द्र के पुत्र लव और कुश ने वाल्मीकीय रामायण का गान किया था। लव कुश को शस्त्र और शास्त्र विद्या की शिक्षा

वाल्मीकि ऋषि ने ही दी थी । ये ऋषि राजा जनक के पुरोहित थे, यह बात भी कही जाती है ।

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना ।
शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः ॥१॥

रात्रि बीत जाने पर नगरनिवासी रामचन्द्र के बिना बड़े दुःखी हुए, वे शोक के कारण अपना काम धाम भूल गये, मूर्च्छित के समान हो गये ।

शोकाजाश्रुपरिद्यूना वक्षीमाणास्ततस्ततः ।
आलोकमपि रामस्य न पश्यन्तिस्म दुःखिताः ॥२॥

शोकाश्रु से वे दुःखी होकर इधर उधर देखते थे, वे बहुत ही दुःखी थे, उनकी आंखें भर आयी थीं, इस कारण रामचन्द्र के जाने के चिन्ह रथ से उड़ायी धूलि आदि भी नहीं देख सके ।

ते विषादार्तवदना रहितास्तेन धीमता ।
कृपणाः करुणावाचो वदन्ति स्ममनीषिणः ॥३॥

रामचन्द्र के बिना दुःख से पुरवासियों के मुंह सूख गये थे, वे मनीषी दुःखी होकर दीन वचन कहते थे ।

धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहतचेतसः ।
नाद्य पश्याम हे रामं पृथूरस्कं महाभुजम् ॥४॥

उस निद्रा को धिक्कार, जिसने हम लोगों के ज्ञान लुप्त कर दिये और जिससे हम लोग इस समय लम्बी भुजावाले और चौड़ी छातीवाले रामचन्द्र को नहीं देखते ।

कथं रामो महाबाहुः स तथावितथक्रियः ।
भक्तं जनमभित्यज्य प्रवासं तापसो गतः ॥५॥

महाबाहु राम-जिनकी सभी क्रियायें सफल होती हैं—भक्तजन का त्याग करके तपस्वी वेश धारण करके प्रवास को क्यों चले गये ।

यो नः सदा पालयति पिता पुत्रानिवौरसान् ।
कथं रघूणां स श्रेष्ठस्त्यक्त्वा नो विपिनं गतः ॥६॥

जो हम लोगों का पालन करता है जैसे पिता औरस पुत्र का पालन करता है, वह रघुकुल का श्रेष्ठ हम लोगों का त्याग करके वन क्यों गया ।

इहैव निधनं याम महाप्रस्थानमेव वा ।
रामेण रहितानां नो किमर्थं जीवितं हितम् ॥७॥

हम लोग यहीं प्राण त्याग करेंगे, अथवा महाप्रस्थान (मरने की इच्छा से उत्तर दिशा की यात्रा) करेंगे, रामचन्द्र के विना हम लोगों के जीवन से लाभ क्या ?

सन्ति शुष्काणि काष्ठानि प्रभूतानि महान्ति च ।
तैः प्रज्वाल्य चितां सर्वे प्रविशामोऽथवा वयम् ॥८॥

अथवा, बहुत से और बड़े बड़े सूखे काष्ठ हैं, उनसे चिता जलाकर हम लोग उसी में प्रवेश करेंगे ।

किं वक्ष्यामो महाबाहुरनसूयः प्रियंवदः ।
नीतः स राघवोऽस्माभिरिति वक्तुं कथं क्षमम ॥ ९ ॥

हमलोग क्या कहेंगे, महाबाहु प्रियवादी और असूयाहीन राम को हमलोग पहुँचा आये, यह कैसे कहा जा सकता है ।

सा नूनं नगरी दीना दृष्ट्वाऽस्मान्राघवं विना ।
भविष्यति निरानन्दा सस्त्रीबालवयोधिका ॥१०॥

रामचन्द्र के विना हमलोगों को लौटा देखकर वह दीन अयोध्यानगरी सभी बाल और वृद्धों के साथ आनन्द रहित हो जायगी ।

निर्यातास्तेन वीरेण सह नित्यं महात्मना ।
विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम् ॥ ११ ॥

हम लोग उस महात्मा के साथ नगरी से निकल कर आये हैं, पर अब उस महात्मा के विना हम लोग उस नगरी को कैसे देख सकेंगे ।

इतीव बहुधा वाचो बाहुमुद्यम्य ते जनाः ।
विलपन्तिस्म दुःखार्ताह्ववत्सा इवाग्रगाः ॥ १२ ॥

इसी प्रकार वे अयोध्यावासी हाथ उठा कर विलाप करते थे, वे उस गौ के समान दुःखी थे, जो अपने बछड़े से बिछुड़ गयी हो ।

ततो मार्गानुसारेण गत्वा किंचित्ततः क्षणम् ।
मार्गनाशाद्विषादेन महता समभिप्लुताः ॥ १३ ॥

कुछ दूर तक तो वे ठीक रास्ते से लौटे, पर आगे जाकर वे मार्ग भूल गये और इससे उन्हे बड़ा कष्ट हुआ ।

रथमार्गानुसारेण न्यवर्तन्त मनस्विनः ।
किमिदं किं करिष्यामो दैवेनोपहता इति ॥१४॥

जिस मार्ग से रथ लौटा था, उसी मार्ग से वे भी लौटे यह क्या है अभागी हमलोग क्या कर रहे हैं, यह बात उनकी समझ में न आयी ।

तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः ।
अयोध्यामगमन्सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम् ॥१५॥

उनका चित्त थक गया था, वे उसी मार्ग से लौटे, जिस मार्ग से आये थे, वे उस नगरी में लौट आये, जहाँ के वासी दुःखी थे ।

आलोक्य नगरीं तां च क्षयव्याकुलमानसाः ।
आवर्तयन्त तेऽश्रूणि नयनैः शोकपीड़ितैः ॥१६॥

अयोध्या नगरी की दशा देखकर वे बहुत व्याकुल हुए, शोक पीड़ित आंखों से वे पुनः आँसू बहाने लगे ।

एषा रामेण नगरी रहिता नातिशोभते ।
आपगा गरुड़ेनेव ह्रदादुद्धृतपन्नगा ॥१७॥

राम के विना आज इस नगरी की शोभा जाती रही, जिस प्रकार गरुड़ के द्वारा सर्प के उठा ले जाने के पश्चात् किसी तालाब की शोभा नष्ट हो जाती है ।

चन्द्रहीनमिवाकाशं तोयहीनमिवार्णवम् ।
अपश्यन्निहतानन्दं नगरं ते विचेतसः ॥१८॥

चन्द्रमा के विना आकाश की, जल के बिना समुद्र की जैसे शोभा नष्ट हो जाती है, उसी तरह राम के विना आनन्द-शून्य शोभाहीन उस नगर को उन लोगों ने देखा ।

ते तानि वेश्मानि महाधनानि दुःखेन दुःखोपहता विशन्तः ।
नैव प्रजग्मुः स्वजनं परं वा निरीक्षमाणाः प्रविनष्टहर्षाः ॥१९॥

वे पुरवासी दुःख से पीड़ित थे, वे बड़े दुःख से अपने अपने बड़े बड़े मकानों में गए । उन लोगों ने स्वजन या परिजन की ओर देखकर भी उधर की ओर नहीं गये; क्योंकि उनमें उत्साह नहीं था, हर्ष नहीं था ।

तेषामेवंविषण्णानां पीडितानामतीव च।
वाष्पविप्लुतनेत्राणां सशोकानां मुमूर्षया ॥ २० ॥

इस प्रकार वे दुःखी थे, पीड़ित थे, उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे, शोक से वे मर रहे थे।

अभिगम्य निवृत्तानां रामं नगरवासिनाम्।
उद्गतानीव सत्वानि बभूवुरमनस्विनाम् ॥ २१ ॥

रामचन्द्र को पहुँचा कर लौटे हुए नगरवासी ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों उनके प्राण ही निकल गये हों।

स्वं स्वं निलयमागम्य पुत्रदारैः समावृताः।
अश्रूणि मुमुचुः सर्वे वाष्पेण पिहिताननाः ॥ २२ ॥

अपने अपने घर आकर स्त्री पुत्र आदि के साथ वे रोने लगे, उनका मुखमण्डल आंसू से भींग गया।

न चाहृष्यन्न चामोदन्वणिजो न प्रसारयन्।
न चाशोभन्त पण्यानि नापचन्गृहमेधिनः ॥ २३ ॥

कोई हर्षित नहीं था, कोई प्रसन्न नहीं था, बनियों ने दूकानें नहीं खोलीं बाजार सूना मालूम पड़ता था और गृहस्थों के घर में चूल्हे नहीं जलाये गये।

नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन्विपुलं वा धनागमम्।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाप्यनन्दत ॥ २४ ॥

किसी भूली हुई चीज़ के मिलने पर भी कोई प्रसन्न न हुआ, अधिक धन मिलने का भी किसी को हर्ष नहीं हुआ और पहले पहल पुत्रप्रसव करने का भी आनन्द माता को नहीं हुआ।

गृहे गृहे रुदत्यश्च भर्तारं गृहमागतम् ।
व्यगर्हयन्त दुःखार्ता वाग्भिस्तोत्रैरिव द्विपान् ॥२५॥

प्रत्येक घर में रोती हुई स्त्रियाँ घर में आये हुए पति को दुःख के कारण बचनों से कोसती थीं, जिस प्रकार अङ्कुश से हाथी कोसा जाता है ।

किं नु तेषां गृहैः कार्यं किं दारैः किं धनेन वा ।
पुत्रैर्वापि सुखैर्वापि ये न पश्यन्ति राघवम् ॥२६॥

उनको घर से क्या करना है, स्त्रियों से भी क्या प्रयोजन, पुत्र या सुख भी उनके किस काम के, जो रामचन्द्र को नहीं देख पाते ।

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया ।
योऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन्वने ॥२७॥

संसार में एक लक्ष्मण ही सत्पुरुष हैं और सीता, जो रामचन्द्र की सेवा करते हुए वन में उनका अनुगमन करते हैं ।

आपगाः कृतपुण्यास्ताः पद्मिन्यश्च सरांसि च ।
येषु पास्यति काकुत्स्थो विगाह्य सलिलं शुचि ॥२८॥

वे नदियां पुण्यवती हैं, वे कमलिनियां, वे तालाब पुण्यवान् हैं, जिनका जल रामचन्द्र पीयेंगे ।

शोभयिष्यन्ति काकुत्स्थमटव्यो रम्यकाननाः ।
आपगाश्च महानूपाः सानुमन्तश्च पर्वताः ॥२९॥

वे अटवी जिनमें सुन्दरवन हैं, वे नदियां वे पर्वत रामचन्द्र को प्रसन्न करेंगे ।

कानन' वापि शैलं वा यं रामोऽनुगमिष्यति ।
प्रियातिथिमिव प्राप्त' नैनं शक्ष्यन्त्यनर्चि'तुम् ॥३०॥

वन या पर्वत जिस किसीके पास रामचन्द्र जायंगे, वही प्रिय अतिथि के समान विना उनकी पूजा किये नहीं रह सकता ।

विचित्रकुसुमापीडा वहुमञ्जरिधारिणः ।
राघवं दर्शयिष्यन्ति नगा भ्रमरशालिनः ॥३१॥

पुष्पों का विचित्र शिरोभूषण और अनेक प्रकार मञ्जरी धारण करनेवाले वे वृक्ष अपने को रामचन्द्र को दिखावेंगे जिन पर भौंरे शोभित हो रहे हैं ।

स्यकाले चापि मुख्यानि पुष्पाणि च फलानि च ।
दर्शयिस्यन्त्यनुक्रोशाद्गिरयो राममागतम् ॥३१॥

पर्वत वृक्षों के द्वारा रामचन्द्र का स्वागत करेंगे, अनऋतु का पुष्प और फल आये हुए रामचन्द्र को समर्पित करेंगे ।

प्रस्रविष्यन्ति तोयानि विमलानि महीधराः ।
विदर्शयन्तो विविधान्भूयश्चित्रांश्चनिर्झरान् ॥३२॥

रामचन्द्र के लिए पर्वत विमल जल बहावेंगे और अनेक अद्भुत झरने उनको दिखावेंगे ।

पादपाः पर्वताग्रेषु रमयिष्यन्ति राघवम् ।
यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः ॥३३॥

वृक्ष पर्वतों पर रामचन्द्र की प्रसन्नता सम्पादन करेंगे । जहां राम हैं वहां भय नहीं और वहां पराजय भी नहीं ।

सहि शूरो महाबाहुः पुत्रो दशरथस्य च ।
पुरा भवति नोऽदूरादनुगच्छाम राघवम् ॥३४॥

वह महाबाहु और शूर है, वह दशरथ का पुत्र है। वह हम लोगों से दूर चला जायगा, हम लोग उसका अनुगमन करें।

पादच्छाया सुखंभर्तुस्तादृशस्य महात्मनः ।
सहि नाथो जनस्यास्य स गतिः स परायणम् ॥३५॥

वैसे महात्मा स्वामी के चरणों का आश्रय बड़ा सुख है, वे ही हमारे स्वामी हैं, वे ही गति हैं और वे ही हम लोगों की प्रतिष्ठा हैं।

वयं परिचरिष्यामः सीतां यूयं च राघवम् ।
इति पौरस्त्रियो भर्तृन्दुःखार्तास्तत्तदब्रुवन् ॥३६॥

हम लोग सीता की सेवा करेंगी और आप लोग राम की, इस प्रकार नगर की स्त्रियां दुःखित होकर अपने अपने पति से कहने लगीं।

युष्माकं राघवोऽरण्ये योगक्षेमं विधास्यति ।
सीता नारीजनस्यास्य योगक्षेमं करिष्यति ॥३७॥

वन में तुम लोगों का योगक्षेम रामचन्द्र करेंगे और स्त्रियों का योगक्षेम सीता जी करेंगी।

कोन्वेनाप्रतीतेन सोत्कण्ठितजनेन च ।
संप्रीयेतामनोज्ञेन वासेन हृतचेतसा ॥३८॥

उस वास को कौन चाहेगा, जिसमें कोई सुख नहीं, जहां मनुष्य उत्कण्ठित हों जो असुन्दर और चित्त को नष्ट करने वाला हो।

कैकेय्या यदि चेद्राज्यं स्यादधर्म्यमनाथवत् ।
नहि नो जीवितेनार्थः कुतः पुत्रैःकुतो धनैः ॥३९॥

यदि यह राज्य कैकेयी का हो तो यहां अधर्म का राज्य होगा, और प्रजा अनाथ के समान हो जायगी, वैसी दशा में हम लोगों को जीना भी उचित नहीं है, फिर पुत्र और धन आदि लेकर क्या होगा।

यया पुत्रश्च भर्ता च त्यक्तावैश्वर्यकारणात्।
कं सा परिहरेदन्यं कैकेयी कुलपांसनी ॥४०॥

जिसने पुत्र और पति को ऐश्वर्य के लिए छोड़ दिया, वह कुलनाशिनी कैकेयी और किसको छोड़ सकती है।

कैकेय्या न वयं राज्ये भृतका हि वसेमहि।
जीवन्त्या जातु जीवन्त्यः पुत्रैरपि शपामहे ॥४१॥

कैकेयी के जीवनकाल में उसके द्वारा पोषित होने पर भी अपने जीवितकाल में उसके राज्य में हम लोग रहना नहीं चाहतीं, इस बात के लिए हम लोग अपने पुत्र की शपथ करती हैं।

या पुत्रं पार्थिवेन्द्रस्य प्रवासयति निर्घृणा।
कस्तां प्राप्य सुखं जवेदधर्म्यां दुष्टचारिणीम् ॥४२॥

जिस निर्दयी ने महाराजा के पुत्र को वन में भेज दिया, उस दुष्टा और अधर्मी के आश्रय में कौन सुखपूर्वक जी सकता है।

उपद्रुतमिदं सर्वमनालम्भमनायकम्।
कैकेय्यास्तु कृते सर्वं विनाशमुपयास्यति ॥४३॥

इस राज्य में अब उपद्रव होंगे, यज्ञ न होंगे, इसका कोई स्वामी भी नहीं है, इस राज्य का अब नाश होगा और इसका कारण कैकेयी ही है।

नहि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपतिः।
मृते दशरथे व्यक्तं विलोपस्तदनन्तरम् ॥४४॥

रामचन्द्र के वन जाने पर राजा जी नहीं सकते और उनके मरने पर राज्य का नाश निश्चित है।

ते विषं पिबतालोड्य क्षीण पुण्याः सुदुःखिताः।
राघवं वानुगच्छध्वमश्रु तिं वापि गच्छत ॥४५॥

अब हम स्त्री पुरुषों के पुण्य क्षीणं होगये हैं, हमारे दुःखों का ठिकाना नहीं, अब हम लोग विष घोलकर पीलें, अथवा रामचन्द्र का अनुगमन करें।

मिथ्या प्रव्राजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः।
भरते संनिबद्धाः स्म सौनिके पशवो यथा ॥४६॥

व्यर्थ ही लक्ष्मण और सीता के साथ रामचन्द्र वन में भेज दिये गये, अब हम लोग भरत के हवाले किये गये, जैसे पशु कसाई को सौंप दिये जाते हैं।

पूर्णचन्द्राननः श्यामो गूढजत्रुररिंदमः।
आजानुबाहुः पद्माक्षो रामो लक्ष्मणपूर्वजः ॥४७॥

रामचन्द्र का मुख पूर्णचन्द्र के समान है, वे श्याम हैं, शत्रुओं के दमन करने वाले और गूढ़जत्रु हैं आजानुबाहु और पद्माक्ष हैं, वे लक्ष्मण के बड़े भाई राम वन में घूमकर उसे सुशोभित करेंगे।

पूर्वाभिभाषी मधुरः सत्यवादी महाबलः
सौम्यश्च सर्वलोकस्य चन्द्रवत्प्रियदर्शनः ॥४८॥

वे पहले ही बोलनेवाले, सुन्दर, सत्यवादी, महाबल, सौम्य और चन्द्रमा के समान सबके प्रिय हैं, वे घूमकर वन की शोभा बढ़ावेंगे ।

नूनं पुरुषशार्दूलो मत्तमातङ्गविक्रमः
शोभयिष्यत्यरण्यानि विचरन्स महारथः ॥४९॥

वे पुरुषसिंह मतवाले हाथी के समान पराक्रमवाले वन में घूमकर अवश्य ही उसकी शोभा बढ़ावेंगे ।

तास्तथा विलपन्त्यस्तु नगरे नागरस्त्रियः
चुक्रुशुर्दुःखसंतप्ता मृत्योरिव भयागमे ॥५०॥

मृत्यु के आगमन के भय से जिस प्रकार मनुष्य त्रस्त होकर रोता है, उसी प्रकार वे नगर की स्त्रियां दुःख से पीड़ित होकर रोती थीं ।

इत्येवं विलपन्तीनां स्त्रीणां वेश्मसु राघवम्
जगामास्तं दिनकरो रजनी चाभ्यवर्तत ॥५१॥

इस प्रकार रामचन्द्र के लिए विलाप करनेवाली उन स्त्रियों का दुःख देखकर सूर्य अस्ताचल को चला गया और रात आगयी ।

नष्टज्वलनसंतापा प्रशान्ताध्यायसत्कथा
तिमिरेणानुलिप्तेव तदा सा नगरी बभौ ॥५२॥

होम आदि के लिए आग नहीं जलायी गयी, अध्ययन तथा सत्कथा बन्द रहीं, उस समय वह नगरी अन्धकार से पोती गयी के समान हो गयी थी ।

उपशान्त वणिक्पण्या नष्टहर्षा निराश्रया
अयोध्यानगरी चासीन्नष्टतारमिवाम्बरम् ॥५३॥

बनियों की दूकानें बन्द थीं, आनन्द चला गया था, आश्रय नष्ट हो गया था, अयोध्यानगरी ताराहीन आकाश के समान होगयी थी।

तदा स्त्रियो रामनिमित्तमातुरा यथा मृते भ्रातरि वा विवासिते
विलप्य दीना रुरुदुर्विचेतसः सुतैर्हि तासामधिकोऽपि सोऽभवत्॥५४॥

उस समय स्त्रियां राम के लिए आतुर होकर मानो उनका पुत्र या पति हो निर्वासित किया गया हो – वे दुःखित होकर विलाप करने लगीं, रोने लगीं; क्योंकि रामचन्द्र उनके पुत्र से भी बढ़कर उन्हें प्रिय थे।

प्रशान्तगीतोत्सवनृत्य बादना विभ्रष्टहर्षा पिहिता पणोदया।
तदा ह्ययोध्यानगरी बभूव सा महापविःसंक्षपितोदको यथा॥५५॥

गीत उत्सव नृत्य और बाजा बन्द हो गये थे, हर्ष दूर हो गया था, दूकानें बन्द थीं, उस समय अयोध्यानगरी अल्प जल समुद्र के समान हो गई थी।

वासुदेव।

इन्होंने युधिष्ठिर विजय नामक एक काव्य लिखा है, वह काव्य कठिन है, उसके प्रत्येक श्लोक में यमक है। कविता की दृष्टि से न सही शब्द चमत्कार की दृष्टि से यह काव्य श्रेष्ठ है। ग्रन्थकार ने अपना परिचय लिखा है जिससे मालूम होता है कि ये राजा कुलशेखर के समय में वर्तमान थे और इनके गुरु का नाम भारत गुरु था।

तस्य च वसुधामवतः काले कुलशेखरस्य वसुधामवतः
वेदानामध्यायी भारतगुरुरभवदाद्यनामध्यायी,

समजनि कश्चित्तस्य प्रवणः शिष्योऽनवर्तं कश्चित्तस्य,
काव्यानामालोके पटुमनसो वासुदेवनामा लोके ।

वासुदेव का समय निर्णय करने के लिए अब राजा कुल-शेखर का समय जानना चाहिए। एक राजा कुलशेखर सिंहल द्वीप से निकाले गये थे और उन्होंने भारत में आकर आश्रय ग्रहण किया था, उनका समय बारहवीं सदी है, यदि वासु-देव के कुलशेखर वे ही हैं तो इनका भी १२ वीं सदी मानना चाहिए।

वासुदेव विजय नामक एक काव्य भी वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध है, ये दोनों वासुदेव एक हैं या दो इसका निर्णय करना सहज नहीं है।

अथ रभसेनानीकं व्यूह्य सरित्सूनुना ससेनानीकम् ॥
कुरवः शौर्यभरणात्तस्थुर्युद्धायशक्रशौर्यभरणाः ॥ १ ॥

इसके पश्चात् भीष्म ने सेनापति के सहित सेना के व्यूह बनाकर सजाया, शूर कुरुगण युद्ध के लिए तयार हुए, उनका यह युद्ध इन्द्र और उपेन्द्र के रण के समान था।

तानभिदुद्राव ततः सरोषपार्षतचमूभृद्दुद्रावततः ।
सकटुकालापी कुन्तीपुत्रबलौघः शरीकलापी कुन्ती ॥ २ ॥

युधिष्ठिर की सेना ने जिसके सेनापति धृष्टद्युम्न थे और जिसमें जोरों का शब्द होरहा था -कौरवों पर आक्रमण किया। युधिष्ठिर की सेना के लोग शत्रुअ के प्रति कठोर शब्दों का व्यवहार कर रहे थे, बाण तूणीर और भालेवाले उस सेना में थे।

भ्रातृभिरेव युयुत्सुर्विभीषणो राघवं पुरेव युयुत्सुः ।
कौन्तेयानभियातानाश्रितवान्नीतिमत्तया न भिया तान् ॥ ६ ॥

जिस प्रकार विभीषण रामचन्द्र के आश्रय में गया था, उसी प्रकार भाइयों से युद्ध करने की इच्छा रखनेवाले युयुत्सु ने (दुर्योधन का भाई) शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले पाण्डवों के पक्ष का आश्रय लिया, पर डर से नहीं किन्तु नीति से ।

दृष्ट्वा मान्यानमितान्पार्थो योद्धुं कुरूत्तमान्यानमितान् ॥
अमुचच्चापं करतः कृष्णेनाश्वासितः स चापङ्करतः ॥ ४ ॥

अर्जुन ने सवारी पर बैठे हुए पूज्य अनेक कौरवों को युद्ध के लिए उपस्थित देखकर हाथ से धनुष छोड़ दिया, तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि तुम यह पाप नहीं कर रहे हो ।

युद्धारम्भेऽरीणां नादः समचुम्बदम्बरं भेरीणाम् ।
द्रवतां वै धुर्याणां खुरजन्म रजोऽपि रहितवैधुर्याणाम् ॥ ५ ॥

युद्ध के आरम्भ के समय शत्रुओं की भेरी का नाद हुआ जो आकाश तक फैल गया और घोर घोड़े आदि के चलने से उड़ी हुई धूलि भी आकाश में फैल गयी ।

जनितारावे शङ्खे चारणचक्राणि चक्रु रावेशं खे ।
विबभावभ्रामरजः समदैः सर्वदिक्षु बभ्राम रजः ॥ ६ ॥

युद्ध की घोषणा के लिए जब शङ्ख बजा, तब चारणों (देवविशेष) का समूह आकाश में चला गया, आकाश में देवताओं की भीड़ एकट्ठी होगयी, और दिशाओं में धूलि फैल गयी ।

मुहुरकृपणवाद्यानामाहत इव स्वनेन पणवाद्यानाम् ।
अनुगतवन्दिव्यजनः समागमद्द्रष्टुमाहवं दिव्यजनः ॥ ७ ॥

बड़े लोगों के द्वारा बजाये जानेवाले पणव आदि बाजों के शब्द से ताड़ित के समान देवगण युद्ध देखने के लिए आकाश में आये और वन्दि और चामर उनके साथ था ।

नागंनागोऽऽधावद्रथिनं च रथी नरं च ना गोधावत् ।
तुरगवरं च तुरङ्गः प्राप क्लीवः परस्परं चतुरङ्गः ॥ ८ ॥

हाथी हाथी से रथी रथी से पैदल पैदल से और घोड़े घोड़ों से मिले, अर्थात् उनमें युद्ध प्रारम्भ हुआ, इस प्रकार सेना के चारो अङ्ग आपस में मिले ।

अवनिभृदाहवहोत्रव्यापारे जीवहव्यदाहवहोऽत्र ।
धुतपांसावलसदसिः स्फुटमग्निशिखेव वचसा वल्लङ्गसि ॥ ९ ॥

धूलिरहित सेनारुपी सभामें राजाओं का युद्धरूपी अग्निहोत्र प्रारम्भ हुआ, वहां जीवरूपी आहुति के जलानेवाली तलवार तेज से अग्निशिखाके समान शोभने लगी ।

अजनि तु भूरिभराजौ चलितायां तत्क्षणेन भूरिभराजौ ।
लघुतां रथवाहास्तव्योमस्थितपांसुपङ्क्तिरथवाहास्त ॥१०॥

रणके लिए हाथियों के चलने पर पृथिवी भारवती होगयी और रथ और घोड़ों के द्वारा आकाश में फैलायी गयी धूलि ने अपनी लघुता छोड़ दी अर्थात् आकाश में धूलि सघन जम गयी ।

तत्र विवेद न तावद्योद्धा पतितं भुजं विवेद नतावत् ।
अरिनिशितमहास्यस्तं प्रहर्तुमैच्छदधिकतमहास्यस्तम् ॥११॥

शत्रु के तीक्ष्ण तलवार से कटी हुई अपनी भुजा योधा को तब तक मालूम न हुई, जब तक उसे पीड़ा मालूम न हुई और भुजा के कट जाने पर भी उसने शत्रु पर प्रहार करने

की इच्छा की जिससे उसको बड़ी हंसी हुई, क्योंकि उसकी भुजा तो कट गयी थी।

क्षिप्तेनोपरि करिणा रथेन गगनादपातिनो परिकरिणा ।
वायुषु सङ्गे गलता द्युस्त्री तत्रास्त धृतरसं खेऽगलता ॥१२॥

हाथी ने रथ ऊपर फेंक दिया, पर वह नीचे न गिर सका, क्योंकि आकाश में वायु था जिसपर वह रुका रहा, कम्बुकण्ठी देवाङ्गनाएँ उस रथ को पाकर बहुत प्रसन्न हुईं।

तत्र घनप्रासारिक्षुरिके रक्षोगणेन न प्रासारि ।
गतशङ्काबन्धेन स्थितमग्रभक्षणेन कावन्धेन ॥१३॥

उस युद्ध में भाले चक्र और छूरी आदि अस्त्र शस्त्र चल रहे थे, जिनके डर से राक्षस वहां न आये, पर रुण्डों का समूह वहां निर्भय होकर स्थित रहा।

न मृतं नामानेन प्राङ्निहतं येन सुकृतिना मानेन ।
खङ्गवती क्षामासेरागतिरसिपाणिना प्रतीक्षामासे ॥१४॥

जो पुण्यात्मा सम्मान पूर्वक युद्ध में पहले मारा गया, अवश्य ही उसका मरना मरना नहीं है। एक योद्धा की तलवार टूट गयी, उसके प्रतिद्वन्द्वी ने तबतक उसकी प्रतीक्षा की जबतक वह नयी तलवार लेकर न आया।

गुरुमत्सरसादरुषः पतिताः क्षरितासृजश्च सरसादरुषः ।
दुधुवुः पादानश्वा हर्षाद्भषति स्म कृतवपादानः श्वा ॥१५॥

घोड़े भारी मत्सर कष्ट और क्रोधसे भरे हैं, रुधिर बह रहा है, कच्चे घाव के कारण वे गिर गये और पैर फेंकने लगे और कुत्ता चर्बी पाने के हर्ष से भूंक रहा है।

विकटनितम्बा ।

ये संस्कृत की कवि हैं . इन्होंने कोई ग्रन्थ वनाया है कि नहीं इसका पता नहीं । सुभाषित ग्रन्थों में इनकी कविता पायी जाती हैं । जिनसे इनकी कविता की सरसता प्रतीत होती है । महाकवि राजशेखर ने विकटनितम्बा के विषय में लिखा है ।

के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन रंजिताः
निन्दन्ति निजकान्तानां न मौग्ध्यमधुरं वचः ।

विकटनितम्बा की वाणी से प्रसन्न होकर कौन मनुष्य अपनी स्त्री की वाणी की निन्दा नहीं करता, वह वाणी भले ही भोली हो, मधुर हो ।

ये गोविन्द स्वामी के साथ कविता करती थीं । इनके समय के विषय में तथा इनके और परिचय के विषय में कुछ मालूम नहीं ।

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।
मुग्धामजातरजसं कलिकामकाले
वालां कदर्थयसि किं नवमालिकायाः ॥ १ ॥

भ्रमर, तबतक तुम किसी दूसरी भार सहने योग्य लता पर अपना मनोविनोद करो, इस नवमल्लिका की छोटी कोढी को जिसमें अभी पराग भी उत्पन्न नहीं हुआ है क्यों दुःखीनी करते हो (इस श्लोक के द्वारा भ्रमर के व्याज से किसी बालिका पर आसक्त कामुक को उपदेश दिया गया है)

वाला तन्वी मृदुरियमिति त्यजतामत्र शङ्का
दृष्टा काचिद्भ्रमरभरतो मञ्जरी भग्नपुष्पा,
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया,
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः कदाचित् ॥ २ ॥

यह वाला है दुबली है, कोमल है इस प्रकार की शङ्काएँ छोड़ दो, क्या ऐसी कोई मञ्जरी देखी गयी है जिसका पुष्प भ्रमरों के भार से टूट गया हो। इस कारण एकान्त में तुम इसको निर्दय होकर दवाना, क्योंकि विना ज़ोर से दबाये ईख से रस नहीं निकलता।

अय्यथि साहसकारिणि किं तव चङ्क्रमणेन ।
टसदिति भङ्गमवाप्स्यसि कुचयुगभारभरेण ॥ ३ ॥

अरे साहस करनेवाली, तुम क्यों चक्कर लगा रही हो, सम्भल जा, नहीं तो स्तनों के भार से टस से टूट जाओगी।

किं द्वारि दैवहतिके सहकारकेण संवर्धितेन विषवृक्षक एष पापः ।
यस्मिन्मनागपि विकासविकारभाजि घोरा भवन्ति मदनज्वरसंनिपाताः ॥४॥

द्वार पर इस अभागे आम के वृक्ष को बढ़ा रखने से क्या लाभ, यह पापी निश्चय विष वृक्ष है, जिसके थोड़ा भी विकसित रहने के समय काम का सन्निपात ज्वर भयानक होजाता है।

दिग्वधूवदनचुम्बि चेर्ष्यया वीक्ष्य सम्प्रति दिवा भवद्यशः ।
दर्शितः पृथुपयोधरोद्गमस्तेन सापि परिरभ्यते खिला ॥५॥

किसी राजा की स्तुति है- दिन में भी आपका यश दिशारूपी स्त्री का मुख चूमता है, इस बात से उसने भी ईर्ष्यापूर्वक अपने बड़े स्तन दिखला दिये (अर्थात् सूर्योदय

हुआ) पर आपके यश ने उस समूची का आलिङ्गन किया ।

अभिहिताप्यभियोगपराङ्मुखी प्रकटमङ्गविलासमकुर्वती ।
उपरि ते पुरुषापितुमक्षमा नववधूरिव शत्रु पताकिनी ॥६॥

कहने पर भी जो आक्रमण करना नहीं चाहती जो प्रकाश रूप से अपने अङ्गों का विलास नहीं दिखाती, नई स्त्री के समान तुम्हारे शत्रुओं की सेना तुमपर पुरुषार्थ नहीं करता ।

विज्जका

ये संस्कृत की कवि हैं, संस्कृत साहित्य में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है । ये सरस्वती का अवतार समझी जाती हैं । इनका दूसरा नाम विज्ञा भी है, इनकी कवितायें बड़ी मनोहर और भाव पूर्ण होती हैं ।

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम् ॥
वदद्भिरङ्गैः कृतरोमविक्रियैर्जनस्य तूष्णीम्भवतोयमञ्जलिः ॥ १ ॥

शब्दों के द्वारा प्रकाशित न किया जा सकनेवाला केवल कोमल शब्दों में दिखायी पड़ने वाला कवि के भाव को जो केवल रोमाञ्चित अङ्गों के द्वारा कहता है स्वयं चुप रहता है उस पुरुष को यह अञ्जलि है अर्थात् उसको नमस्कार है ।

गते प्रेमाबन्धे हृदयबहुमानेपि गलिते
निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः ।
तथा चैवोत्प्रेक्ष्य प्रियसखि गतांस्तांश्च दिवसान्
जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम् ॥ २ ॥

प्रेम बन्धन चला गया, हृदय का सम्मान भी जाता रहा, सद्भाव भी नष्ट हुआ, साधारण मनुष्यों से मनुष्य का सा व्यवहार रह गया, हे सखि, इसी प्रकार उन उन दिनों का स्मरण करके न मालूम क्यों यह हृदय फट नहीं जाता ।

नार्याः सा रति शून्यता नयनयोर्यद्दृष्टि पाते स्थितः
कामी प्राप्तश्रतार्थ एव न भवत्यालिङ्गितुं वाञ्छति
आश्लेषादपि यापरं मृगपते धिक्तामयोग्यां स्त्रियं
श्रोणीगोचरमागतो रतिफलं प्राप्नोति तिर्यङ्क किम् ॥३॥

स्त्रियों का वह राग का अभाव है, जो प्रिय आंखों के सामने खड़ा रहे रतिप्राप्त करनेवाला कामी नहीं है; किन्तु वह आलिङ्गन करना चाहता है, जो स्त्री आलिङ्गन से भी अधिक कुछ चाहती है वह अयोग्य है, उसको धिक्कार, रति का फल क्या पक्षियों को नहीं मिलता ।

कोपः स्फीततरः स्थितानि परितः पत्राणि दुर्गं जलं
मैत्रं मण्डलमुज्ज्वलं चिरमधो नीतास्तथा कण्टकाः
इत्याकृष्टशिलीमुखेन रचनां कृत्वा तदप्यद्भुतं
यत्पद्मेन जिगीषुणापि न जितं मुग्धे त्वदीयं मुखम् ॥४॥

कोष (कमल का मध्य, या म्यान) बड़ा है, चारों ओर पत्ते वर्तमान है, जल किला है, उज्ज्वल मित्रमण्डल (सूर्य मण्डल, या मित्र राजा) को सदा के लिए नीचे कर दिया है, और कण्टक (कमल के कांटें, या छोटे शत्रु) को भी नीचा दिखाया है, पर जिसने वाण चढ़ाया है या भौरों को एकत्रित किया है, उस विजयी कमल ने भी तुम्हारा मुंह न जीता यह भी आश्चर्य ही की बात है ।

उन्नमय्य सचकग्रहमास्यं चुम्बति प्रियतमे हठवृत्त्या
हुं ममेति वदनान्तरलीनं जल्पितं जयति मानवतीनाम् ॥५॥

बालों को पकड़ कर मुंह ऊपर की ओर उठाकर जब पति चुम्बन करता है, उस समय मुंह में ही घूमता हुआ "हुँ नहीं" यह माननियों के वचन बड़े ही अच्छे मालूम होते हैं।

प्रियसखि विपद्दण्डप्रान्तप्रयातपरंपरा-
परिचयचले चिन्ताचक्रे निधाय विधिःखलः ।
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्वा प्रगल्भकुलालवद्
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥६॥

जो चिन्ताचक्र विपत्ति के दण्ड के कोर के अनवरत परिचित है, अर्थात् जो चिन्ताचक्र विपत्ति के दण्ड से चलाया जाता है, उस चक्र पर मिट्टी के समान पिण्डा बना कर यह दुष्ट भाग्य मेरे मन को रखता है और चतुर कुम्हार के समान उस चक्र को घुमाता है, मालूम नहीं मेरे मन को यह क्या बनाना चाहता है।

विरम विफलायासादस्माद्दुरध्यवसायतो
विपदि महतां धैर्यध्वंसं यदीक्षितुमीहसे ।
अयि जड़विधे कल्पापायव्यपेतनिजक्रमाः
कुलशिखरिणः क्षुद्रा नैते नवा जलराशयः ॥७॥

हे मूर्ख भाग्य, तुम विपत्ति के समय महान् मनुष्यों की धीरता का नाश देखना चाहते हो, इस बुरी बात को मत करो; इस बुरे काम को छोड़ दो, क्योंकि इसका कोई फल नहीं, क्या प्रलय के समय जिन्होंने अपना क्रम बदल दिया था, वे कुलपर्वत छोटे नहीं हैं और न समुद्र ही छोटे हैं।

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तंसर्वशुक्ला सरस्वती ॥८॥

मैं विज्जाका नीलकमल के समान श्यामहूं इस बात को न जान कर दण्डी ने यों ही सरस्वती को सर्वशुक्ला कह दिया है, अर्थात् मैं भी तो एक सरस्वती हूं ।

किंशुककलिकान्तर्गतमिन्दुकलास्पर्धिकेसरं भाति ।
रक्तनिचोलकपिहितं धनुरिव जतुमुद्रितमनङ्गस्य ॥९॥

पलाश की कलि के भीतर चन्द्रकला के समान वक्र-केशर लाल, चाली में रखे हुए और लाख से वन्द किये हुए काम के धनुष के समान शोभता है ।

केनात्र चम्पकतरो वत रोपितोसि
कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढनवशाकविवृद्धिलोभा-
द्गोभग्नवाटघटनोचितपल्लवोसि ॥१०॥

हे चम्पक वृक्ष, तुमको किसने यहां बुरे गांव के मूर्ख मनुष्य की वाटिका के पास रोपा है ? यह अच्छा नहीं हुआ ! इस बाग में जब नये साग उगेंगे तब उनके बढ़ने के लिए, उनकी रक्षा के लिए, बाढ़ (घेरा) लगायी जायगी, उस बाढ़ को जब कोई गौ आदि तोड़ देगा, तब तुम्हारे पत्ते तोड़ कर वह बाढ़ दुरुस्त की जायगी। यह अन्योक्ति है। कोई कवि किसी अरीसक स्वामी के यहाँ था। उसीको चम्पक वृक्ष बनाकर विज्जका ने उपदेश दिये हैं। हे कवे! आप यहां क्यों आये, आपका यहां आना अच्छा नहीं हुआ ! जिसके यहां आप हैं वह मूर्ख है, वह आप की क़दर क्या जानेगा ?

माद्यद्दिग्गजदानलिप्तकरटप्रक्षालनक्षोभिता
व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः।
कष्टं भाग्यविपर्ययेण सरसः कल्पान्तरस्थायिन-
स्तस्याप्येकवकप्रचारकलुषं कालेन जातं जलम् ॥११॥

मतवाले दिग्गजों के मदलिप्त कपोलस्थल के धोने से क्षुभित जिस नदी की निर्मल तरङ्गें निर्बाध होकर आकाश में विचरती थीं, दुःख है! आज भाग्य के दोष से उसी कल्पान्त तक स्थित रहने वाली नदी का जल एक बगुले के चलने से गंदला हो जाता है। यह भी अन्योक्ति है। इसमें किसी धनपात्र मनुष्य की धनिक और दरिद्र दोनों अवस्थाओं का वर्णन है।

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोःकन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वानोद्बन्धुराः।
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभकम्पितोरःस्थल-
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डनीगीतयः ॥१२॥

धान कूटनेवालियों का गान बड़ा ही मनोहर मालूम होता है! बड़ी अदा के साथ मूसल हाथ में लिये हुई हैं, मूसल के उठाने तथा गिराने के कारण चूड़ियां बज रही हैं, उन चूड़ियों के शब्द से वह गान और भी मनोहर हो गया है। जब वे मूसल गिराती हैं उस समय उनके मुंह से हुङ्कार निकलता है और हृदय कम्पित हो जाता है, वही गान का गमक बन रहा है।

विद्यारण्य ।

इनका दूसरा नाम माधवाचार्य भी है; ये अपने समय के बड़े विख्यात पण्डित थे । इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं ।

१ वैदिक ग्रन्थों का भाष्य,
२ पराशर धर्मशास्त्र की टीका,
३ जैमिनीय न्यायरत्नाधिकरण माला,
४ वेदान्ताधिकरण रत्नमाला,
५ शङ्कर विजय,
६ काल माधव,
७ आचार माधव,
८ व्यवहार माधव,
९ माधवीय धातुवृत्ति,
१० सर्वदर्शन संग्रह,
११ पंचदशी,
१२ ब्रह्मगीता,
१३ शतप्रश्नकल्पलतिका,
१४ सूत संहिता की टीका,

वीजापुर के राज्य स्थापन में इन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था, ये तेरहवीं सदी में माने जाते हैं । इनकी माता का नाम श्रीमती, पिता का नाम मायण और भाइयों के नाम सायण तथा लोकनाथ था । ये शङ्कराचार्य के अनुयायी सन्यासी थे ।

शङ्करदिग्विजय से

अथ प्रतस्थे भगवान्प्रयागात्तम्मण्डनं पण्डितमाशुजेतुम् ।
गच्छन्खसृत्या पुरमालुलोके माहिष्मतीं मण्डनमण्डितां सः ॥१॥

तदन्तर भगवान् उस मण्डन पण्डित को जीतने के लिए प्रयाग से शीघ्र प्रस्थित हुए, आकाश मार्ग से जाते हुए उन्होंने दूर ही से माहिष्मती नगरी देखी, जिसमें मण्डन मिश्र रहते थे ।

अवातरद्रत्नविचित्रवप्रां विलोक्य तां विस्मितमानसोऽसौ ।
पुराणवत्पुष्करवर्त्मनीतः पुरोपकण्ठस्थवने मनोज्ञे ॥२॥

जहां की अटारियों में अनेक प्रकार के रत्न जड़े हुए थे उस नगरी को देखकर वे विस्मित हुए, और नगर के पास के एक सुन्दर उद्यान में आकाश मार्ग से उतरे ।

प्रफुल्लराजीववने विहारी तरङ्गरिङ्गत्कणशीकरार्द्रः ।
रेवामरुत्कम्पितसालमालः श्रमापहृद्भाष्यकृतं सिषेवे ॥३॥

विकसित कमलवन में विहार करनेवाला, तरङ्ग के छोटे छोटे जलकण से जो आर्द्र है और जिसने सालवन को कँपाया है, वह नर्मदा का वायु थकावट दूर करनेवाला भाष्यकार की सेवा करने लगा ।

तस्मिन्स विश्रम्य कृताह्निकः सन्खस्वतिकारोहणशालिनीने ।
गच्छन्नसौ मण्डनपण्डितौको दासीस्तदीयाः स ददर्श मार्गे ॥४॥

उस उद्यान में रहकर उन्होंने दिन का कृत्य समाप्त किया और मध्यान्ह के समय मण्डन पण्डित के घर की ओर जाते हुए रास्ते में मण्डन पण्डित की दासियों को देखा ।

कुत्राऽऽलयो मण्डनपण्डितस्येत्येताः स पप्रच्छ जलाय गन्त्रीः ।
ताश्चापि दृष्ट्वाऽद्भुतशंकरं तं संतोषवत्यो ददुरुत्तरं स्म ॥५॥

जल के लिए जानेवालियों से उन्होंने पूंछा कि मण्डन पण्डित का घर कहां है, वे भी उनको अद्भुत और सुखकर जानकर सन्तोष पूर्वक उत्तर देने लगीं ।

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥६॥

वेद स्वतः प्रमाण हैं या परतः प्रमाण हैं, यह बात जहाँ द्वार पर पिंजड़े में बैठी हुई शुकाङ्गना कहती है वही मण्डन पण्डित का घर है ।

फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥७॥

कर्म स्वयं फल देनेवाले हैं या परमात्मा कर्म फल देता है, जहां द्वार पर पिंजड़े में बैठी हुई शुकाङ्गना यह बात कहती है वही मण्डन पण्डित का घर है ।

जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥८॥

जगत् नित्य है या अनित्य जहां द्वार के पिंजड़े में बैठी हुई शुकाङ्गना यह बात कहती है वही मण्डन पण्डित का घर है ।

पीत्वा तदुक्तिरथ तस्य गेहाद्द गत्वा वहिः सद्म कवाटगुप्तम् ।
दुर्वेशमालोच्य स योगशक्त्या व्योमाध्वनाऽवातरदङ्गणान्तः ॥९॥

उनकी वातें सुनकर वे मण्डन मिश्र के घर के वाहर पहुँचे, वहां उन्होंने किवाड़ बन्द देखे, घर में प्रवेश करना कठिन देखकर उन्होंने योगशक्ति के द्वारा आकाश मार्ग से घर के भीतर प्रवेश किया ।

तदा स लेखेन्द्रनिकेतनाभं स्फुरन्मरुच्चञ्चलकेतनाभम् ।
समग्रमालोकत मण्डनस्य निवेशनं भूतलमण्डनस्य ॥१०॥

भीतर जाकर भगवान ने भूलोक के अलङ्कार मण्डन मिश्र का समस्त घर देखा, वह घर इन्द्र के घर के समान था और वायु उस घर की पताका कंपा रहा था ।

सौधाग्रसंछन्ननभोवकाशं प्रविश्य तत्प्राप्य कवेः सकाशम् ।
विद्याविशेषात्तयशःप्रकाशं ददर्श तं पद्मजसंनिकाशम् ॥११॥

आकाश से बातें करनेवाले घर में भगवान ने उस मण्डन मिश्र को देखा, जिसने अपनी विद्या की अधिकता से यश का प्रकाश पाया है और जो ब्रह्मा के समान है ।

तपोमहिम्नैव तपोनिधानं सजैमिनिं सत्यवतीतनूजम् ।
यथाविधि श्राद्धविधौ निमन्त्र्य तत्पाद पद्मान्यवनेजयन्तम् ॥१२॥

उस समय मण्डन मिश्र श्राद्ध कराने के लिए व्यास और जैमिनि को निमन्त्रित करके उनके चरण कमल धो रहे थे ।

तत्रान्तरिक्षादवर्वीर्यं योगिवर्यः समागम्ययथार्हमेषः ।
द्वैपायनं जैमिनिमप्युमाभ्यां ताभ्यां सहर्षं प्रतिनन्दितोऽभूत ॥१३॥

वहां वे योगीराज आकाशमार्ग से आये और व्यास और जैमिनि ने इनका हर्षपूर्वक स्वागत किया ।

अथ द्युमार्गादवतीर्णमन्तिके, मुन्योः स्थितं ज्ञानशिखोपवीतिनम् ।
संन्यास्यसावित्थवगत्य सोऽभवत्प्रवृत्तिशास्त्रैकरतोऽपि कोपनः ॥१४॥

आकाशमार्ग से आये हुए और उन दो मुनियों के समीपस्थित इनको सन्यासी वेष में देख कर वह प्रवृत्ति शास्त्रों का अनुयायी होने पर भी क्रुद्ध हुआ ।

तदातिरुष्टस्य गृहाश्रमेशितुर्यतीश्वरस्यापि कतूहलं भृतः
क्रमात्किलैवं बुधशस्तयोस्तयोः प्रश्नोत्तराण्यासुरथोत्तरोत्तरम् ॥१५॥

गृहस्थ मण्डन मिश्र रुष्ट होगये थे और यतीश्वर को भी कौतूहल था इस कारण उन दोनों पंडितश्रेष्ठों में नीचे लिखे अनुसार प्रश्नोत्तर हुए ।

कुतोमुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृछ्यते मया ।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुन्डेत्याह तथैव हि ॥१६॥

मण्डन—मुण्डी कहां से ?
शङ्कर—गले के उपर से ।
मंडन—मैं तुम्हारा रास्ता पूछता हूँ ।
शङ्कर—रास्ते ने तुमसे क्या कहा ?
मण्डन—तुम्हारी माता मुण्डा है,
शङ्कर—ठीक है ।

पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मंडन ।
त्वन्मातेत्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयादपृच्छकम् ॥१७॥

शङ्कर रास्ते से तुमने पूछा, रास्ते ने तुम्हें उत्तर दिया । ऐसी दशा में नहीं पूछनेवाले "तुम्हारी माता" के तुम्हारी से मेरा बोध नहीं हो सकता, क्योंकि मैं पूछनेवाला नहीं हूँ ।

अहो पीता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर ।
किं त्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्णं भवान्रसम् ॥१८॥

मण्डन—क्या तुमने सुरा (मद्य) पीता (पी है) ?
शङ्कर—नहीं वह पीता (पीली) नहीं, श्वेत है ।
मण्डन—क्या तुम उसका रङ्ग जानते हो ?
शङ्कर—मैं रङ्ग जानता हूँ और तुम रस ।

मत्तो जातः कलञ्जाशी विपरीतानि भाषते ।
सत्यं ब्रवीति पितृवत्त्वत्तो जातः कलञ्जभुक् ॥१९॥

मण्डन—यह विषिद्धमांस खानेवाला मत्त हो गया है, क्योंकि अनर्थक बोल रहा है ।

शङ्कर—ठीक है। पिता के समान बोल रहे हो, जैसे तुम निषिद्ध मांस खानेवाले हो उसी तरह तुमसे निषिद्ध मांस खाने वाला उत्पन्न हुआ है।

कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्दभेनापि दुर्वहाम् ।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति ॥२०॥

मण्डन —मूर्ख कथड़ी ढो रहा है, जो गधा भी कठिनता से ढो सकता है। पर शिखा और यज्ञोपवीत भार था, जिससे उसका त्याग किया।

कन्थां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्राऽपि दुर्भराम् ।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति ॥२१॥

शङ्कर - मूर्ख, कन्था ढो रहा हूँ, जिसे तुम्हारा पिता भी नहीं ढो सकता। शिखा और यज्ञोपवीत से श्रुति का भार होता।

त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वामशक्त्या परिरक्षणे ।
शिष्य पुस्तकभारेच्छो व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता ॥२२॥

मण्डन—रक्षा न कर सकने के कारण अपनी स्त्री को छोड़ दिया, अब शिष्य और पुस्तक का भार लिये फिरते हो, इसीसे तुम्हारी ब्रह्मनिष्ठता मालूम पड़ती है।

गुरुशुश्रूषणालस्यात्समावर्त्य गुरोः कुलात् ।
स्त्रियः शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्मनिष्ठता ॥२३॥

शङ्कर - गुरु की सेवा में आलस्य के कारण गुरुकुल से समावर्तन कराकर स्त्रियों की सेवा करनेवाले की कर्म-निष्ठता मालूम पड़ती है।

स्थितोऽसि योषितां गर्भे ताभिरेव विवर्धितः ।
अहो कृतघ्नता मूर्ख कथं ता एव निन्दसि ॥२४॥

मण्डन—स्त्रियों के गर्भ में रहे हो, स्त्रियों ने ही तुम्हे बढ़ाया है, मूर्ख यह कितनी कृतघ्नता है कि तुम उन्हींकी निन्दा करते हो।

यासां स्तन्यं त्वया पीतं यासां जातोऽसि योनितः ।
तासु मूर्खतम स्त्रीषु पशुवद्रमसे कथम् ॥२५॥

शङ्कर—जिनका दूध तुमने पीया, जिनसे तुम उत्पन्न हुए। मूर्ख, उन्हीं स्त्रियों से पशु के समान तुम रमण क्यों करते हो ?

वीरहत्यामवाप्तोऽसि वन्हीनुद्वास्य यत्नतः ।
आत्महत्यामवाप्तस्त्वमविदित्वा परं पदम् ॥२६॥

मंडन—जानबूझ कर अग्नि का त्याग करने के कारण तुमको वीर हत्या लगी है।

शङ्कर—तुम्हे तो आत्महत्या का दोष लगा है, क्योंकि तुमने परमपद का ज्ञान नहीं पाया।

दौवारिकान्वञ्चयित्वा कथं स्तेनवदागतः ।
भिक्षुभ्योऽन्नमदत्वा त्वं स्तेनवद्भोक्ष्यसे कथम् ॥२७॥

मंडन—द्वार-रक्षकों को तुम ठगकर चोर के समान कैसे चले आये ?

शङ्कर—भिक्षुकों को अन्न बिना दिये तुम चोर के समान खा कैसे रहे हो ?

कर्मकाले न संभाष्य अहं मूर्खेण संप्रति ।
अहो प्रकटितं ज्ञानं यतिभङ्गेन भाषिणा ॥२८॥

मंडन—हम इस समय श्राद्ध कर रहे हैं ऐसे समय में मूर्ख को हमसे नहीं बोलना चाहिए ।

शङ्कर—तुमने अपने वाक्य में यतिभङ्ग (वाक्य का एक दोष) करके अपना ज्ञान प्रकाशित कर दिया ।

यतिभङ्गे प्रवृत्तस्य यतिभङ्गो न दोषभाक् ।
यतिभङ्गे प्रवृत्तस्य पञ्चम्यन्तं समस्यताम् ॥२९॥

मंडन—जो यतिभंग (यति-सन्यासी का भंग) के लिए तयार है, उसके लिग यतिभंग (वाक्य का दोष) दोष नहीं ।

शङ्कर—यतिभंग में यति के द्वारा भंग यह पञ्चमी समास करो ।

क्व ब्रह्म क्व च दुर्मेधाः क्व संन्यासः क्व वा कलिः ।
स्वाद्वन्नभक्षकामेन वेषोऽयं योगिनां धृतः ॥३०॥

मंडन—कहाँ ब्रह्म और कहाँ यह मूर्ख ? कहाँ सन्यास और कहाँ यह कलियुग ? तुमने स्वादु अन्न खाने के लिए यह योगियों का वेष बनाया है ।

क्व स्वर्गः क्व दुराचारः क्वाग्निहोत्रं क्व वा कलिः ।
मन्ये मैथुनकामेन वेषोऽयं कर्मिणां धृतः ॥३१॥

शङ्कर—कहाँ स्वर्ग और कहाँ यह दुराचार ? कहाँ अग्निहोत्र और कहां यह कलि ? मालूम पड़ता है मैथुन की इच्छा से यह कर्मियों का वेष बनाया है ।

इत्यादिदुर्वाक्यगणं ब्रुवाणे, रोषेण साहंकृतिविश्वरूपे ।
श्रीशंकरे वक्तरि तस्य तस्योत्तरं च कौतूहलतश्च चारु ॥३२॥

इस प्रकार क्रोध से अहङ्कार पूर्वक मण्डन मिश्र दुर्वचन कहने लगे, और कौतुक पूर्वक श्रीशङ्कर उनका उत्तर देने लगे ।

तं मण्डनं सस्मितजैमिनीक्षितं, व्यासोऽब्रवीज्जल्पसि वत्स दुर्वचः ।
आचारणा नेयमनिन्दितात्मनां, ज्ञातात्मतत्त्वं यमिनं धुतैषणम् ॥३३॥

मण्डन को जैमिनी स्मित पूर्वक देख रहे थे। उस समय व्यास ने कहा कि तुम बुरे वचन कह रहे हो। सज्जनों की यह रीति नहीं है कि वह आत्मतत्त्वज्ञ वासना-रहित योगी के प्रति ऐसे दुर्वचनों का प्रयोग करे।

अभ्यागतोऽसौ स्वयमेव विष्णुरित्येव मत्वाऽऽशु निमन्त्रय त्वम् ।
इत्याश्रवं ज्ञातविधिं प्रतीतं, सुध्यग्रणीः साध्वशिषन्मुनिस्तम् ॥३४॥

विद्वानों के अग्रणि मुनि ने अपनी बात माननेवाले तथा शास्त्रज्ञ अपने शिष्य से कहा—ये स्वयं विष्णु आये हैं, ऐसा समझो और यही समझकर इनको निमन्त्रित करो।

अथोपसंस्पृश्य जलं स शान्तः ससंभ्रमं मण्डनपण्डितोऽपि ।
व्यासाज्ञया शास्त्रविदर्चयित्वा न्यमंन्त्रयच्छैक्ष्यकृते महर्षिम् ॥३५॥

अनन्तर आचमन करके शान्त मण्डन पण्डित ने भी व्यास की आज्ञा से शङ्कराचार्य को भोजन के लिए निमन्त्रित किया।

सचाब्रवीत्सौम्य विवादभिक्षामिच्छन्भवत्संनिधिमागतोऽस्मि ।
साऽन्योन्यशिष्यत्वपणा प्रदेया, नास्त्वादरः प्राकृतभक्तभैक्ष्ये ॥३६॥

शङ्कर ने कहा—सौम्य, विवादभिक्षा की इच्छा से मैं आपके पास आया हूँ। वही आप दें और उसकी शर्त यह रहे कि जो हार जाय वह जीतनेवाले का शिष्य बन जाय। इस साधारण भोजन में हमारा कुछ भी आदर नहीं है।

मम न किंचिदपि ध्रुवमीप्सितं, श्रुतिशिरःपथविस्तृतिमन्तरा ।
अवहितेन मखेष्ववधीरितः सभवता भवतापहिमद्युतिः ॥३७॥

उपनिषद् मार्ग के विस्तार के अतिरिक्त और कुछ मैं नहीं चाहता और कुछ मेरा अभीष्ट नहीं है। सूर्य के समान प्रकाशमान उस मार्ग का यज्ञ में लग कर आपने तिरस्कार किया है।

जगति संप्रति तं प्रथयाम्यहं समभिभूय समस्तविवादिनम् ।
त्वमपि संश्रय मे मतमुत्तमं,विवद वा वद वाऽस्मि जितस्त्विति॥३८॥

समस्त विवादियों को परास्त कर मैं उसी मार्ग को प्रसिद्ध कर रहा हूँ। तुम भी मेरे उत्तम मत को ग्रहण करो या शास्त्रार्थ करो, अथवा कह दो कि मैं हार गया।

इति यतिप्रवरस्य निशम्य तद्वचनमर्थवदागतविस्मयः ।
परिभवेन नवेन महायशाः स निजगौ निजगौरवमास्थितः ॥३९॥

यतिश्रेष्ठ का यह अर्थयुक्त वचन सुन कर इस नये पराजय से मंडन मिश्र को विस्मय हुआ। उन्होंने अपने महत्व की ओर देखकर कहा—

अपि सहस्रमुखे फणिनामके, न विजितस्त्विति जातु फणस्ययम् ।
न च विहाय मतं श्रुतिसंमतं, मुनिमते निपतेत्परिकल्पिते ॥४०॥

इसने (मंडन ने) सहस्रमुख फणि (शेष) के सामने भी कभी हार स्वीकार न की; और श्रुतिसम्मत मत को छोड़ कर आपके कल्पित मत को कौन स्वीकार कर सकता है ?

अपि कदाचिदुदेष्यति कोविदः सरसवादकथाऽपि भविष्यति ।
इति कुतूहलिनो मम सर्वदा जयमहोऽयमहो स्वयमागतः ॥४१॥

बहुत दिनों से मुझे इस बात का कुतूहल था कि कभी कोई विद्वान् उत्पन्न होगा और सरस शास्त्रार्थ भी होगा। आज वह जय का दिन स्वयं आया है।

भवतु संप्रति वादकथाऽऽवयोः, फलतु पुष्कलशास्त्र परिश्रमः ।
उपनता स्वयमेव न गृह्यते, नवसुधा वसुधावसथेन किम् ॥४२॥

अब हम दोनों का शास्त्रार्थ हो, अनेक शास्त्रों का परिश्रम सफल हो । यदि स्वयं नवीन अमृत आवे तो क्या पृथिवी वासी उसे ग्रहण नहीं करता ।

व्यासदेव ।

ये कृष्णद्वैपायन व्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके पिता का नाम पराशर था। इन्होंने ही वेदों का सम्पादन और विषय विभाग के अनुसार क्रमवद्ध किया है। महाभारत तथा हरिवंश आदि ग्रन्थों में इन्होंने पाण्डवों का इतिहास लिखा है। इनके अतिरिक्त इन्होंने अन्य १८ पुराणों का भी निर्माण किया है। वेदान्तसूत्र जो व्याससूत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं वे भी इन्हीके बनाये हुए हैं। पाणिनि के एक सूत्र में ये सूत्र भिक्ष-सूत्र के नाम से भी कह गये हैं। पाणिनि का वह सूत्र है "पाराशर्यशिलालियां भिक्षुनट सूत्रयो" . इनको वादरायण भी कहते हैं। इनका समय ई० सदी से १२६३ वर्ष पूर्व बतलाया जाता है। सब कवियों के ये उपजीव्य कहे जाते हैं अर्थात् अन्य कवियों ने इन्हींको अपना आदर्श बनाया है। इन्हींकी कविता की सहायता से वे अपने काम में सफल हुए हैं।

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते ।
स्वल्पमप्यनु मन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति ॥१॥

सज्जनों की राह पर यदि तुम पूरी तरह नहीं चल सकते तो थोड़ा भी उस राह पर चलने का प्रयत्न करो। क्योंकि रास्ते का मनुष्य एक न एक दिन ठीक स्थान पर पहुँच ही जाता है।

उपकारः परो धर्मः परोर्थः कर्मनैपुणम् ।
पात्रे दानं परः कामः परो मोक्षो वितृष्णता ॥२॥

उपकार प्रधान धर्म है; कर्म—कुशलता प्रधान धन है; सुपात्र को दान देना प्रधान काम है और तृष्णाहीन होना प्रधान मोक्ष है। यही श्रेष्ठ चतुवर्ग है।

स धर्मो यो निरुपधः सोर्थो यो न विरुध्यते ।
स कामः सङ्गहीनो यः स मोक्षो यो पुनर्भवः ॥३॥

धर्म वह है जिसमें छल न हो, धन वह है जिसमें प्रतियोगिता न हो, काम वह है जो आसक्तिरहित हो और मोक्ष वह है जिसमें पुनर्जन्म न हो।

अविद्यानाशिनी विद्या भावना भवनाशिनी ।
दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ॥४॥

अज्ञान को नष्ट करनेवाली विद्या है, संसार के दुःखों को नाश करनेवाली भावना है। दान दरिद्रता को नष्ट करने वाला है और दुःखों को दूर करनेवाला शील है।

गतेपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः ।
इह चेत्स्यान्न फलदाफलदा सान्य जन्मनि ॥५॥

अधिक उम्र के बीत जाने पर भी बुद्धिमानों को विद्या ग्रहण करना चाहिए। यदि इस जन्म में उससे फल न हो सकेगा, तो आगे के जन्म में अवश्य वह फलदायिनी होगी।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥६॥

जो अत्यन्त सज्जन है, जो अत्यन्त दानी है, जो अधिक व्रत करने वाला है, जिसे अपनी बुद्धि का अभिमान है, लक्ष्मी इन लोगों के पास जाने से डरती है ।

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न क्लीवा न च मानिनः ।
नच लोकरवाद्भीता नच शश्वत्प्रतीक्षिणः ॥७॥

आलसी धन नहीं पाते हैं, नपुंसक और अभिमानियों को भी धन नहीं मिलता है । लोकापवाद से डरनेवाले और धन की सदा प्रतीक्षा करनेवालों को भी धन नहीं मिलता ।

यःसमुत्पतितं क्रोधं मानं चापि नियच्छति ।
स श्रियो भाजनं पुंसां यश्चापत्सु न मुह्यति ॥८॥

जो उत्पन्न हुए क्रोध को रोक लेते हैं और विपत्तियों के समय में भी नहीं घबराते हैं, वेही लक्ष्मी के पात्र होते हैं ।

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृत दंडं विकारिषु ।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥९॥

जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रक्खा है, जिसने अपनी आत्मा जीत ली है, जो अपने विरोधियों को दंड देना जानता है, जो समझ बूझ काम करता है और जो धीर है लक्ष्मी उसकी सेवा करती है ।

अनागतविधातारमप्रमत्तमकोपनम् ।
चिरारम्भमदीनंच नरं श्रीरुपतिष्ठति ॥१०॥

विपत्तियों के आने के पहिले ही उनके दूर करने के उपाय सोच रखनेवाले, सदा सावधान रहनेवाले, क्रोध न करने

वाले, जल्दी किसी काम को न प्रारम्भ करनेवाले, अपनी दीनता न दिखानेवाले मनुष्य की लक्ष्मी सेवा करती है ।

जीयन्तां दुर्जया देहे रिपवश्चक्षुरादयः ।
जितेषु तेषु लोकोयं ननु कृत्स्नस्त्वया जितः ॥११॥

आँख आदि इन्द्रियाँ शरीर में वर्तमान हैं, वे दुर्जय शत्रु हैं, उनको जीतो । उनके जीतने से तुम समस्त संसार को जीत सकोगे ।

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवाद शस्योभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥१२॥

यदि तुम एक ही काम से समस्त संसार को अपने वश में करना चाहते हो तो दूसरों की निन्दा में लगी हुई अपनी वाणी को रोको । अर्थात् यदि तुम दूसरों की निन्दा करना छोड़ दो तो समस्त संसार तुम्हारे वश हो जाय ।

सुहृदप्यरयस्तस्य यस्यात्मा दुरधिष्ठितः ।
अजीर्णे पथ्यमप्यन्नं व्याधये मरणाय वा ॥१३॥

उस मनुष्य के मित्र भी शत्रु ही हैं, जिसकी आत्मा अव्यवस्थित है । अजीर्ण में पथ्यान्न भी रोग उत्पन्न करता है, या मार डालता है ।

भीरुः पलायमानोपि नान्वेष्टव्यो बलीयसा ।
कदाचिच्छूरतामेति मरणे कृतनिश्चयः ॥१४॥

डरपोक मनुष्य भी यदि सामने से भाग जाय तो बलवान् को चाहिए कि उसका पीछा न करे क्योंकि सम्भव है, वह अपनी मृत्यु निश्चित जान कर बैरी बन जाय ।

तेजस्विनि क्षमेपेते नातिकार्कश्यमाचरेत् ।
अतिनिर्मथनाद्वह्निश्चन्दनादपि जायते ॥१५॥

तेजस्वी मनुष्य यदि अपने ऊपर किये गये अपराधों को क्षमा करता जाय तो उसको अधिक सताना नहीं अच्छा; क्योंकि अधिक रगड़ से शीतल चन्दन में भी आग की लपटें निकलने लगती हैं ।

असहायःसमर्थोंपि तेजस्वी किं करिष्यति ।
निवाते ज्वलितोप्यग्निः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥१६॥

शक्तिमान् तेजस्वी मनुष्य भी यदि सहायहीन हो, तो वह क्या कर सकता है ? धधकती हुई भी आग यदि विना हवा की जगह में रक्खी जाय तो वह आप ही आप बुझ जाती है ।

कृत्वा वलवता बैरमात्मानं यो न रक्षति ।
अपथ्यमिवतद्भुक्तं तस्यानर्थाय केवलम् ॥१७॥

जो मनुष्य बलवान से शत्रुता करके अपनी रक्षा का प्रयत्न नहीं करता, अपथ्य भोजन के समान उसके लिये यह वड़ा अनर्थ करता है ।

कारणात्प्रियतामेति द्वेष्यो भवति कारणात् ।
अर्थार्थी जीवलोकोयं न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥१८॥

कारण से मनुष्य प्रिय होता है और कारण ही से शत्रु भी होता है । यह स्वार्थ का संसार है, यहाँ कोई किसी का प्रिय नहीं ।

नास्ति जात्या रिपुर्नाम मित्रं चापि न विद्यते ।
सामर्थ्ययोगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥१९॥

स्वभाव से कोई किसीका शत्रु नहीं और न कोई किसीका मित्र ही है । समय के अनुसार मित्र और शत्रु हुआ करते हैं ।

अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलु नम्रताम् ।
अनुत्सृज्य सतां मार्गं यत्स्वल्पमपि तद्बहु ॥२०॥

दूसरे को न सता कर, दूसरों के सामने दीन न बनकर, सज्जनों के मार्ग न छोड़कर यदि थोड़ा भी मिले तो उसे बहुत समझना चाहिये ।

अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनम् ।
सुखानि च तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ॥२१॥

जिस प्रकार विना चाहे भी मनुष्यों के पास दुःख आया करते हैं; उसी प्रकार सुख भी आवेगा ऐसा मैं समझता हूँ । फिर दुःख से घवड़ाना और सुख के लिए व्याकुल होना केवल अपनी दीनता दिखाना है ।

यदभावि न तद्भावि यद्भावि न तदन्यथा ।
इति चिन्ता विषघ्नोयमगदः किं पीयते ॥२२॥

जो नहीं होने वाला है वह न होगा, इस कारण क्या औषधि नहीं पी जाती ?

आगमिष्यन्ति ते भावा ये भावा मयि भाविनः ।
अहं तैरनुगन्तव्यो न तेषामन्यतो गतिः ॥२३॥

जो घटनायें मेरे जीवन में होनेवाली हैं वे अवश्य होंगी, वे मेरा अनुसरण करेंगी, क्योंकि उनके लिए दूसरी कोई गति नहीं है ।

धनमस्तीति वाणिज्यं किंचिदस्तीति कर्षणम् ।
सेवा न किंचिदस्तीति नाहमस्मीति साहसम् ॥२४॥

धन हो तो वाणिज्य करना चाहिए, कुछ थोड़ा सामान हो तो खेती, कुछ भी न हो तो नौकरी, और अपनी सत्ता न समझ कर साहस (चोरी आदि) ।

नोदन्वानर्थितामेति नचाम्भोभिर्न पूर्यते ।
आत्मा तु पात्रतां नेयः पात्रमायान्ति संपदः ॥२५॥

समुद्र किसी के यहाँ माँगने नहीं जाता, पर वह जल से पूर्ण रहता है। मनुष्य को स्वयम् योग्य बनना चाहिए, क्योंकि योग्य को ही सम्पत्ति मिलती है।

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।
एतद्विज्ञाय सामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥२६॥

बुद्धि से मन के और दवा से शरीर के दुःखों को दूर करे, इस प्रकार मानसिक और शरीरिक दुःखों को दूर करने की अपनी शक्ति समझे; बालकों की तरह घबड़ा न जाय।

पुत्रैर्मित्रैर्गृहैर्वापि वियुक्तस्य धनेन वा।
मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे पुंसः श्रेयस्करी धृतिः ॥२७॥

पुत्रों से, मित्रों से, घर से, अथवा धन से यदि मनुष्य का वियोग हो या वह किसी बड़ी विपत्ति में फँसे तो उस समय एक धैर्य ही उसका कल्याणकारी होता है।

दुःखी दुःखाधिकान्पश्येत्सुखी पश्येत्सुखाधिकान्।
आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ॥२८॥

दुखी मनुष्य अपने से अधिक दुखी को देखे और सुखी अपने से अधिक सुखी को दुख सुख से शोक व हर्ष करने की जरूरत नहीं। यह दोनों शत्रु हैं; इनके हाथों आत्म-समर्पण करना बुरा है।

सुप्रज्ञमपि चेच्छूरमृद्धिर्मोहयते नरम्।
वर्तमानः सुखे सर्वो नावैतीति मतिर्मम् ॥२९॥

बुद्धिमान और वीर मनुष्य को भी सम्पत्ति मोहित करती है। सुखी भी मनुष्य अपने को सुखी नहीं समझता, ऐसी मेरी समझ है।

येऽर्थाः क्लेशेन देहस्य धर्मस्यातिक्रमेण च ।
अरेर्वा प्रणिपातेन मास्म तेषु मनः कृथाः ॥३०॥

जो धन शरीर के कष्ट से मिले, धर्म के अतिक्रमण करने से मिले, अथवा शत्रु के पैरों पड़ने पर मिले तो उस धन की इच्छा मत करो ।

गुणेषु यत्नः क्रियतां किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥३१॥

गुणों के प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करो, आडम्बरों से लाभ ही क्या ? बिना दूध की गाय घन्टा बाँधने से नहीं बिकती ।

गुणाःखलु गुणा एव न गुणा धनहेतवः ।
अर्थसंचयकर्तृणि भाग्यानि पृथगेव हि ॥३२॥

गुण गुण ही है, गुणों से धन नहीं मिलता । धन संचय करनेवाला भाग्य अलग ही है ।

गुणाःखलु गुणा एव न गुणा फलहेतवः ।
सगुणो निष्फलश्चापो निर्गुणः सामलः शरः ॥३३॥

गुण गुण ही है, उनसे फल का कोई सम्बन्ध नहीं । सगुण (धनुष की डोरी) धनुष निष्फल होता है, और निर्गुण (डोरी रहित) बाण सफल (बाण का अग्रभाग) होता है ।

आत्मायत्ते गुणादाने नैर्गुण्यं वचनीयता ।
दैवायत्तेषु वित्तेषु पुंसः का नाम वाच्यता ॥३४॥

गुणों का अर्जन करना अपने अधीन है, इसलिए गुणों का अर्जन न करना निन्दा की बात है । धनी होना भाग्य के अधीन है, इसलिए धनहीन पुरुष निन्दा का पात्र नहीं है ।

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य संचयम् ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्य्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥३५॥

अञ्जन का क्षय देखकर और वाल्मीक का संचय देखकर मनुष्य को चाहिए कि दान अध्ययन आदि सब कर्म को प्रतिदिन किया करे, क्योंकि प्रतिदिन का थोड़ा थोड़ा भी सत्कर्म वहुत होता है ।

यो यमर्थं प्रार्थयते यमर्थं वटते च यः ।
सोवश्यं तमवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते ॥३६॥

जो जिस बात की प्रार्थना करता है, और जिस बात के लिए प्रयत्न करता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होती है । यदि प्राप्त न हुई तो वह मनुष्य थकित होकर अपने प्रयत्न से निवृत हो जाता है ।

गच्छन्नपिपीलको याति योजनानां शतान्यपि ।
अगच्छन्वैनतेयोपि पदमेकं न गच्छति ॥३७॥

चलता हुआ चींटा भी सैकड़ों योजन चला जाता है, और बैठा हुआ गरुड़ भी एक पैर नहीं जाता ।

चिन्तनीया हि विपदामादावेवप्रतिक्रिया ।
न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ॥३८॥

विपत्ति के आने के पहिले ही उसके प्रतीकार का उपाय निश्चित करना चाहिए । घर में आग लगने पर कुआँ खादने की तय्यारी अच्छी नहीं ।

मित्रस्वजनबन्धूनां बुद्धेर्धैर्य्यस्य चात्मनः ।
विपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम् ॥३९॥

मित्र, स्वजन, बन्धु, बुद्धि और अपनी धीरता की परीक्षा मनुष्य अपनी विपति की कसौटी पर करता है ।

अर्थात् विपत्ति के समय इनका खरापन मनुष्य को मालूम होता है ।

सर्वः पदस्थस्य सुहृद्बन्धुरापदि दुर्लभः ।
ये यान्त्यापदि वन्धुत्वं सुहृदो बन्धवश्च ते ॥४०॥

वने के सब साथी है, विगड़े का कोई नहीं । जो विगड़े का साथी है, वही मित्र बन्धु आदि हैं ।

स सुहृद्यो विपन्नार्थदीनमभ्यवपद्यते ।
न तु दुश्चरितातीतकर्मोपालाम्भपण्डितः ॥४१॥

वही मित्र है जो विपत्ति से दुःखित मनुष्य का साथ दे । वह नहीं, जो बीती हुई वातों के उलहना देने में अपनी विद्वत्ता दिखावे ।

शिरसा विधृता नित्यं स्नेहेन परिपालिताः ।
केशा आपि विरज्यन्ते कोन्ते नायाति विक्रियाम् ॥४२॥

सदा सिर पर रक्खे हुए, और वड़े स्नेह से पालित बाल भी रङ्ग बदल ही देते हैं, एक रङ्ग कोई नहीं रहता । अन्त में सबही रँग पलट देते हैं

मृदोः परिभवो नित्यं वैरं तीक्ष्णस्य नित्यशः
उत्सृज्यैतद्वयं तस्मान्मध्यां वृत्तिं समाश्रयेत् ॥४३॥

कोमल मनुष्य सताये जाते हैं, और कठोरों के शत्रु वढ़ते हैं । इसलिए कोमलता और कठोरता छोड़कर बीच की वृत्ति का ग्रहण करना ही उचित है ।

मृदुनापि हि साध्यन्ते कर्मणा स्वार्थसिद्धयः ।
असृक्पिवतितन्वङ्गो जलौका स्वात्मतृप्तये ॥४४॥

कोमल कर्मों के द्वारा भी अपने स्वार्थ की सिद्धि की जा सकती है। (कोमल) जोंक अपनी तृप्ति के लिए रुधिर पीती है ।

> नहीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
> दानं मैत्री च भूतेषु दया च मधुरा च वाक् ॥४५॥

तीनों लोक में इससे बढ़कर मनुष्य को प्रसन्न करनेवाली और दूसरी बात नहीं है—दान, मित्रता, प्राणियों पर दया और मीठी बोली ।

> जातवैरस्तु बलिना दुःखं स्वपिति सर्वदा ।
> अनिवृत्तै न मनसा ससर्पइव वेश्मनि ॥४६॥

बलवान के साथ विरोध हो जाने पर मनुष्य सुखपूर्वक सो नहीं सकता। उसे बड़े दुख से अपना समय व्यतीत करना होता है। वह हमेशा शंकित बना रहता है, जैसे सर्प वाले घर में रहने वाला मनुष्य ।

> कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा च चतुर्विधम् ।
> प्रसादयति यो लोकं तं लोको न प्रसीदति ॥४७॥

कर्म, मन, बचन और चक्षु के द्वारा जो लोगों को प्रसन्न करना चाहता है, उससे लोग प्रसन्न नहीं होते ।

> संभोजनं संकथनं संप्रश्नोथ समागमः ।
> ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कथंचनः ॥४८॥

अपने जाति भाइयों के साथ भोजन करना, प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके कुशल-प्रश्न पूछना चाहिए। उनके साथ कभी विरोध करना उचित नहीं ।

एतदेवायुषः सारं निसर्गक्षणभङ्गिनः ।
स्निग्धैर्मुग्धैर्विदग्धैश्च यदयन्त्रितमास्यते ॥४९॥

स्वभाव से क्षणभङ्गुर जीवन का यही सार है कि प्रिय कोमल और चतुरों के साथ बेरोक टोक समय बिताया जाय।

दर्शितानि कलत्राणि गृहे भुक्तमशङ्कितम् ।
कथितानि रहस्यानि सौहृदं किमतः परम् ॥५०॥

स्त्रियों को सामने होने दिया, घर में अशङ्कित भोजन करने का अधिकार दिया और अपनी गुप्त बातें सुनाईं, क्या इससे भी बढ़ कर और कोई दूसरी मैत्री हो सकती है ?

शोकारातिभयत्राणप्रीतिविस्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥५१॥

शोक और शत्रुओं से रक्षा करनेवाला, प्रीति और विश्वास का भाजन मित्र इन दो अक्षर—रत्नों की किसने सृष्टि की !

न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न बन्धुषु ।
विस्रम्भस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे निरन्तरे ॥५२॥

वैसा विश्वास माता, स्त्री, बन्धु और सहोदर भाई में भी नहीं होता, जैसा स्वाभाविक मित्र में होता है।

अबन्धुस्वपि बन्धुत्वं स्नेहात्समुपजायते ।
बन्धुष्वपि च बन्धुत्वमलोकज्ञेषु हीयते ॥५३॥

स्नेह के द्वारा अबन्धु भी बन्धु के समान है और लोक व्यौहार न जानने वाले के लिए बन्धु भी अबन्धु के समान है।

सत्कृतं स्वजनेनेह परोऽपि बहुमन्यते ।
स्वजनेन ह्यवज्ञाने परोप्यभिभवेन्नरम् ॥५४॥

अपने स्वजनों द्वारा सत्कृत मनुष्य का आदर दूसरे भी करते हैं, और स्वजनों के द्वारा तिरस्कृत मनुष्य का निरादर दूसरे भी करते हैं।

ज्ञातीनां वक्तुकामानां कटूनि परुषाणि च ।
सकोपं हृदयं वाचा श्लक्ष्णया शमयेद्बुधः ॥५५॥

जो अपने भाई बन्धुओं को कठोर और परुष बोलना चाहें तो बुद्धिमान मनुष्य उनके कुपित हृदय को कोमल वचनों से शान्त करे।

परोपि हितवान्बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः ।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥५६॥

हित करनेवाला शत्रु भी मित्र है, और अहित करने वाला मित्र भी शत्रु है। शरीर से उत्पन्न व्याधि शत्रु होता है, और जङ्गल में उत्पन्न होनेवाली दवा मित्र।

मूषकी गृह जातापि हन्तव्या ह्यपकारिणी ।
घृतप्रदानैर्मार्जारो हितकृत्प्रार्थ्यतेन्यतः ॥५७॥

घर में उत्पन्न हुई चूही मार डाली जाती है, क्योंकि वह नुक़सान पहुँचाती है और हित करनेवाली बिल्ली घी देकर परचाई जाती है।

सौहृदेन परित्यक्तं निःस्नेहं खलमुत्सृजेत् ।
सोदर्यं भ्रातरमपि किमुतान्यं पृथगजनम् ॥५८॥

मैत्रीशून्य (स्नेह रहित) खल का त्याग करना उचित है। ऐसा सहोदर भाई भी हो तो भी उसे त्याग करना उचित है, दूसरों की बात क्या।

पूर्वोपकारी यस्तुस्यादपकारे गरीयसि ।
उपकारेण तत्तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः ॥५९॥

पहिले के उपकारी व्यक्ति द्वारा यदि अपकार होजाय तो उपकार के बदले उसका अपराध क्षमा करना चाहिए ।

अथ चेद्बुद्धिजं कृत्वा ब्रूयुस्तेतदबुद्धिजम् ।
पापान्स्वल्पेति तान्हन्यादपराधे तथानृजून् ॥६०॥

जो मनुष्य जान बूझ कर पाप करे और कहे कि ग़लती से होगया है, तो उसको मार डालना चाहिए और जो अपराध भी करे और अपनी शेखी हाँके उसे भी मार डालना चाहिए ।

अजातमृतमूर्खेभ्यो मृताजातौ वरं सुतौ ।
तौ किंचिच्छोकदौ पित्रोर्मूर्खस्त्वत्यन्त शोकदः ॥६१॥

अजात, मृत और मूर्ख इन तीन प्रकार के पुत्रों में से पहिले के दो अच्छे हैं, अन्तिम नहीं । पुत्र के न उत्पन्न होने से या उत्पन्न होकर मर जाने से एक ही बार दुःख होता है और मूर्ख पुत्र तो जीवन भर तक सताता रहता है ।

अपुत्रत्वं भवेच्छ्रेयो नतुस्याद् द्विगुणः सुतः ।
जीवन्नप्यविनीतोऽसौ मृत एव नःसंशयः ॥६२॥

विना पुत्र का रहना ठीक है, पर निर्गुण पुत्र नहीं अच्छा । वह अशिक्षित पुत्र जीवन् मृत के समान है ।

एकोपि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम् ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति नच तारा सहस्रशः ।।६३।।

गुणी एक भी लड़का बहुत अच्छा है, और निर्गुण सौ भी अच्छे नहीं, एक चन्द्रमा अन्धकार का नाश करता है, हज़ारों तारे नहीं ।

दाने तपसि शौर्ये वा यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥६४॥

दान, तपस्या और शूरता में जिसकी प्रसिद्धि न हुई, वह अपनी माता का पुत्र केवल कहने के लिए है ।

पानीयं वा निरायासं स्वाद्वन्नं वा भयोत्तरम् ।
विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः ॥ ६५ ॥

बिना प्रयत्न के मिला हुआ जल और भयजनक स्वादु भोजन इन दोनों के विषय में जब मैं विचार कर देखता हूँ तब मालूम होता है कि जहाँ तृप्ति है वहीं सुख है ।

दुःखेन श्लिष्यते भिन्नं श्लिष्टं दुःखेन भिद्यते ।
भिन्नश्लिष्टा तु या प्रीतिर्न सा स्नेहेन युज्यते ॥६६॥

दुःख से भिन्न (फटा हुआ) जुड़ जाता है, और दुःख से जुड़ा हुआ फट भी जाता है, पर भेद पाकर जुड़ी हुई प्रीति में स्नेह नहीं होता ।

✓ दैवयोगादुपनताः प्रतिज्ञाहीनसम्पदः ।
अकस्मादेव नश्यन्ति खलानामिव सङ्गतम् ॥६७॥

भाग्य से मिली हुई सम्पत्ति अचानक ही नष्ट हो जाती हैं, जैसे दुर्जनों की मैत्री ।

✓ न दैवमिति संचिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मवान् ।
अनुद्योगेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति ॥६८॥

हमारे प्रयत्नों का फल भाग्याधीन है, इसलिये उद्योगों को छोड़ देना नहीं अच्छा । बिना उद्योग से कोई भी मनुष्य तिल से तैल नहीं पा सकता ।

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः ।
सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति ॥६९॥

जिस दल में बहुत नेता हों, सभी अपने को पण्डित समझनेवाले हों, और सभी बड़ा बनना चाहते हों तो वह दल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत ।
स ह्येषां वृत्तिदातास्यात्सह्यैतान्परि पालयेत् ॥७०॥

पिता के मरने पर बड़ा भाई पिता के समान होता है, वही अपने छोटे भाइयों की देख रेख रखता है और पालन करता है ।

कनिष्ठास्तं नमस्येरन्सर्वे छन्दानुवर्तिनः ।
तमेव चोपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥७१॥

छोटे भाई बड़े भाई का आदर करें, उनके कहने के अनुसार चलें और उन्हीं के अधीन रहें, बड़े भाई के साथ पिता के समान बरताव करें ।

तया गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।
कोर्थः पुत्रेण यातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः ॥७२॥

उस गाय को लेकर क्या होगा जो न दूध देती है, और न बच्चे? उस लड़के से क्या लाभ जो न धार्मिक हो और न विद्वान् ?

किंनु मेस्यादिदं कृत्वा किंनु मे स्यादकुर्वतः ।
इति संचित्य मनसा प्राज्ञः कुर्वीत वा न वा ॥७३॥

इस कार्य के करने से क्या होगा और न करने से क्या होगा ? इस बात का विचार कर लेने पर मनुष्य को चाहिए कि वह काम करे या न करे ।

कार्यमालोचितापायं मतिमद्भिर्विनिश्चितम्।
न केवलं हि सम्पत्तौ विपत्तावपि शोभते ॥७४॥

जिस कार्य की बुराइयां मालूम हो चुकी हैं और जिस कार्य के विषय में बुद्धिमानों ने अपनी सम्मति प्रकाशित करदी है वह कार्य अच्छे समयों में ही नहीं, किन्तु विपत्ति के समय में भी लाभदायक होता है।

✓ षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णस्तु जातुचित्।
द्विकर्णस्य तुमन्त्रस्य ब्रह्माप्यन्तं न गच्छति ॥७५॥

कोई गुप्त बात छः कानों में पहुँचने पर फैल जाती है, चार कानों में पहुँचने पर कभी कभी फैलती है, पर जो सलाह दो कानों में ही रहती हैं उसका पता ब्रह्मा को भी नहीं मिलता।

सुमन्त्रितेसुधिक्रान्ते सुकृतेसुविचारिते।
प्रारम्भे कृतबुद्धीना सिद्धिरव्यभिचारिणी ॥७६॥

उस काम में बुद्धिमानों को अवश्य ही सिद्धि मिलती है जिसी प्रारम्भ करने के पहिले खूब सोच बिचार लिया जाता है, जिसके साधन में तत्परता दिखलाई जाती है जो अच्छी तरह किया जाता है।

अफलानि दुरन्तानि समव्ययफलानिच।
अशक्यानिच वस्तूनि नारंभेत विचक्षणः ॥७७॥

बुद्धिमान उन कामों का प्रारम्भ न करे जिनका कुछ फल न हो, जिनका परिणाम दुखदाई हो जिनमें हानि लाभ बराबर हो और जो अपने किये अशक्य हो।

यत्कार्यं पुरुषेणेह व्यवसायवता सता।
तत्कार्यमविशंकेन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥७८॥

उद्योगी सज्जन पुरुष का जो कर्तव्य है, उसका पालन निर्भय होकर करना चाहिए सिद्धि भाग्याधीन है।

अणुपूर्वं बृहत्यश्चान्नवन्त्यायेंषु संगतम्।
विपरीतमनार्येषु यथेच्छसि तथा कुरु ॥७९॥

सज्जनों की मैत्री पहिले छोटी पीछे बड़ी होती है और दुर्जनों की मैत्री इससे विपरीत होती है।

सद्भिरेव सदासीत सद्भिः कुर्वीत संगतम्।
सद्भिःविवादं मैत्री च असद्भिः किंचिदाचरेत् ॥८०॥

सज्जनों के साथ वैठना चाहिए और उन्हीं का साथ करना चाहिए, यदि विवाद हो तो सज्जनों के साथ और मैत्री हो तो भी उन्हीं के साथ। दुर्जनों से कुछ भी सम्बन्ध न रखना चाहिए।

विरुद्धैरपि वस्तव्यं साधुभिर्धर्मदर्शिभिः।
दोषा अपिहि साधूनामसतां च गुणैः समाः ॥८१॥

अपने से मतभेद रखनेवाले धर्मात्मा सज्जनों के साथ रहना उचित है, क्योंकि धर्मात्मा के दुर्गण भी दुर्जनों के गुणों से बढ़कर होते हैं।

प्रेक्षणीयः प्रयत्नेन स्वभावो नेतरे गुणाः।
अतीत्यहि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि तिष्ठति ॥८२॥

बड़ी तत्परता के साथ अपने स्वभाव की देखरेख रखना चाहिये, दूसरे गुणों की नहीं। क्योंकि स्वभाव सब गुणों पर अपना प्रभाव जमा लेता है।

प्रियं ब्रूयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः।
दाता नापात्रवर्षी स्यात्प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः ॥८३॥

उदारता के साथ प्रिय बोलना चाहिए, शूर होना चाहिए, पर आत्मश्लाघी नहीं। दाता होना चाहिए पर अपात्र को दान देना ठीक नहीं। प्रगल्भ होना अच्छा है, पर क्रूर नहीं।

न विश्वस्वेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ ८५ ॥

अविश्वासी पर विश्वास न करे और विश्वासी पर भी अधिक विश्वास न करे। क्योंकि विश्वासी से जो भय उत्पन्न होता है, वह जड़-मूल से नाश कर देता है।

प्रज्ञाशौर्यविवृद्धेषु भृत्येषु शठवृत्तिषु ।
स्वामी विश्वासनिद्रालुः प्रतारयति तप्यते ॥ ८६ ॥

बुद्धि और वल से बढ़े हुए शठ भृत्य पर जो स्वामी विश्वास करता है वह ठगा जाता है, और दुख उठाता है।

यस्य कार्यमकार्यं वा सममेव भवत्युत ।
कस्तस्य विश्वसेत्प्राज्ञो दुर्मतेरकृतात्मनः ॥ ८७ ॥

जिसके लिए अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य बराबर हैं, उस मूर्ख और कृतघ्नी का विश्वास कौन बुद्धिमान् कर सकता है ?

अपराधो न मेऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम् ।
विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥ ८८ ॥

मेरा अपराध नहीं है, इसी विश्वास से निर्भय नहीं हो जाना चाहिए। क्योंकि क्रूर मनुष्यों द्वारा गुणवान् भी सताये जाते हैं।

केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद् व्याघ्रमुखा मृगाः ।
तत्स्वरूपविपर्यासाद्विश्वासो ह्यापदां पदम् ॥ ८९ ॥

कोई मनुष्य मृगमुख व्याघ्र होते हैं कोई व्याघ्रमुख मृग होते हैं। अर्थात् कोई तो ऊपर से अच्छे दीखते हैं परन्तु भीतर के क्रूर होते हैं, और कोई ऊपर से क्रूर दीखते हैं, और भीतर से अच्छे होते हैं। इस स्वरूप भेद के धोखे में आकर जो अपना विश्वास स्थापित करते हैं, वे विपत्ति में फँसते हैं।

परनिन्दासु पाण्डित्यं स्वषु कार्येष्वनुद्यमः।
प्रद्वेषश्च गुणज्ञेषु पन्थानो ह्यापदां त्रयः॥ ९०॥

दूसरों की निन्दा में अपनी निपुणता दिखाना, अपने कार्यों में उदासीन रहना और गुण के आदर करने वाले से द्वेष रखना, ये तीन आपत्ति के मार्ग हैं।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रासं ग्रस्तं च परिणामि यत्।
हितंच परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता॥ ९१॥

जो ग्रास निगला जा सके, पच सके और जिससे परिणाम में लाभ हो, अपना कल्याण चाहने वाले को उसी वस्तु का सेवन करना चाहिए।

तिष्ठत्येकेन पादेन चलत्येकेन पण्डितः।
नापरीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्॥ ९२॥

बुद्धिमान् मनुष्य एक पैर से चलता है और एक पैर से खड़ा रहता है। दूसरा नया स्थान विना देखे पहिला स्थान नहीं छोड़ना चाहिये।

बहुनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः।
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुस्तया नागोपि बद्ध्यते॥९३॥

बहुत सी दुर्बल वस्तुओं का समूह दुर्जय होता है, तृणों से रस्सी बटी जाती है, जिससे हाथी भी बँध सकता है।

बहुनामप्यमित्राणां य इच्छेत्कर्तुमप्रियम् ।
आत्मातेन गुणैर्योज्यस्तत्तेषां महदप्रियम् ॥ ९४ ॥

जो अपने शत्रु मंडल को दुख पहुँचाना चाहता हो, तो उसे चाहिए कि अपनी आत्मा को गुणवान बनावे । क्योंकि उसके शत्रुओं के लिए इससे बढ़कर अन्य दुखदाई कार्य नहीं है ।

प्रज्ञागुप्तशरीरस्य किं करिष्यन्ति संहताः ।
गृहीतच्छत्रहस्तस्य वारिधारा इवारयः ॥ ९५ ॥

बुद्धि के द्वारा जिसने अपने शरीर को सुरक्षित कर रखा है, उसकी सम्मिलित शत्रुओं के दल द्वारा कोई हानि नहीं हो सकती । जिसने छाता लिया, उसका वृष्टि क्या कर सक्ती है ?

यन्न शक्यं न तच्छक्यं सुशीघ्रमपि धावता ।
मन्दबुद्धिस्तु जानीते मुहूर्तं नास्मि वंचितः ॥ ९६ ॥

जो काम अशक्य है, वह अशक्य ही है, चाहे उसके लिए कितना ही क्यों न प्रयत्न किया जाय । पर मूर्ख मनुष्य समझता है, कि मेरी थोड़ी ग़लती से यह कार्य्य नहीं हुआ ।

अक्षिपक्ष्म कदा लुप्तं छिप्यन्ते हि शिरोरुहाः ।
वर्धमानात्मनामेव भवन्ति हि विपत्तयः ॥९७॥

आँख के बार कभो नहीं काटे जाते, पर माथे के बार हमेशा काटे जाते हैं । बात यह है कि विपत्तियों का सामना उन्हींको करना पड़ता है जिनकी वृद्धि होती है ।

मा तात साहसं कार्षीर्विभवैर्विप्रलम्भितः ।
स्वगात्राण्यपि भाराय भवन्ति हि विपत्तये ॥ ९८ ॥

भाई, धन मद से भूल कर बहुत साहस मत करो, क्योंकि अपने अङ्ग भी भार होजाते हैं और वे विपत्ति के समान मालूम होते हैं ।

मा तात प्रभवामीति बाधिष्ठाः कृपणं जनम् ।
मा त्वां कृपणचक्षु'षि धाक्षुरग्निरिवेन्धनम् ॥ ९९ ॥

भाई ! तुम प्रभावशाली हो, इसलिए दुर्बलों को दुख मत दो । नहीं तो तुम दुर्बलों की आंखों से जल जाओगे; जैसा अग्नि लकड़ी को जलाती है ।

मा तात सम्पदामग्रयमारूढ़ोऽस्मीति विश्वसीः ।
दूरारोहपरिभ्र'शविनिपातो हि दारुणः ॥१००॥

भाई ! तुम सम्पत्तियों के शिखर पर चढ़े हो, इस बात का विश्वास मत करो । क्योंकि अधिक ऊँचे चढ़ने वालों का पतन बड़ा भयानक होता है ।

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति वन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥१०१॥

धूर्त लोग जिसकी प्रशंसा करें, खुशामदी चारण जिसकी प्रश'सा करें और र'डियाँ जिसकी प्रश'सा करें, वह मनुष्य अधिक काल तक नहीं जीता ।

वैरमादौ समुत्पाद्य यः कश्चित्संधिमिच्छति ।
मृण्मयस्येवभग्नस्य संधिस्तस्य न विद्यते ॥१०२॥

जो मनुष्य पहिले शत्रुता करके पुनः संधि करना चाहता है, टूटे हुये मिट्टी के घड़े के समान उसकी संधि नहीं होती ।

कौर्मसंकोचमादाय प्रहारानपि मर्पयेत् ।
काले काले तु मतिमानातिष्ठेत्कृष्णसर्पवत् ॥१०३॥

कछुए के समान नम्रता धारण कर भारों को भी सह लेना चाहिए। पर समय आने पर बुद्धिमान को चाहिए कि वह सर्प के समान उठ खड़ा हो।

बहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
अथैनमागते काले भिन्द्याद्घमिवाश्मनि ॥१०५॥

शत्रु को तब तक कन्धे पर रखना चाहिए जब तक अपना अवसर न आवे। समय आने पर इसको पटक कर फोड़ डाले, जैसे पत्थर पर पटक कर घड़ा फोड़ दिया जाता है।

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतन्तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥१०६॥

भय से तभी तक डरना चाहिये जब तक वह सामने न आये। भय के समीप आने पर निर्भय होकर उसका सामना करना चाहिए।

योरिणा सह संधाय सुखं स्वपिति विश्वसन्।
स वृक्षाग्रे सुप्तइव पतितः प्रतिबुध्यते ॥१०७॥

जो शत्रुओं से संधि करके विश्वासपूर्वक सुख से सोता है, वह पेड़ के अग्रभाग में सोये हुए के समान, अरर धड़ाम हो के चेतता है।

सकृद्दुष्टस्तु यः कश्चित्पुनः संधानमिच्छति।
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा ॥१०८॥

एक बार जिससे विरोध हो गया है, जो मनुष्य पुनः उससे संधि करने की इच्छा करता है, वह अपनी मृत्यु ही को बुलाता है। जिस प्रकार खच्चरी गर्भ धारण करती है।

नात्यन्तसरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वने तरून ।
छिद्यन्तेसरलास्तत्र कुब्जाः सन्ति पदे पदे ॥१०९॥

अत्यन्त सरल नहीं होना चाहिए, यदि अत्यन्त सरलता के दोषों को देखना चाहते हो तो वन में जाकर वृक्षों को देखो। वहां सरल वृक्ष काटे जाते हैं और टेढ़े-मेढ़े फैले हुए हैं।

यस्य चाप्रियमान्विच्छेद्रुव्रूयात्तस्य सदा प्रियम् ।
व्याधा मृगवधं कर्तुं सदा गायन्ति सुस्वरम् ॥११०॥

यदि तुम किसी को अप्रिय करने की इच्छा रखते हो, तो सदा उससे मीठी बातें बोला करो। क्योंकि हिरनों के मारने के लिए व्याध वंशी बजाया करते हैं।

ऋणशेषोऽग्निशेषश्च शत्रुशेषस्तथैव च ।
पुनः पुनः प्रवर्त्तन्ते तस्मान्निःशेषमाचरेत् ॥१११॥

ऋण का शेष, अग्नि का शेष और शत्रु का शेष यह पुनः पुनः बढ़ा करते हैं। अतएव इनका शेष न छोड़े।

नहि कश्चित् कृतेकार्ये कर्त्तारं समवेक्षते ।
तस्मात्सर्वाणि कार्याणि सावशेषाणि कारयेत् ॥११२॥

काम के हो जाने पर कोई भी कर्ता की ओर नहीं देखता। अतएव कार्यों को समाप्त न करना चाहिए, कुछ थोड़ा शेष भी रखना चाहिए।

नोपेक्षितव्यो विद्वद्भिः शत्रुरल्पोप्यवज्ञया ।
वह्निरल्योपि संवृद्धः कुरुतेभस्मसाद्वनम् ॥११३॥

तिरस्कार की दृष्टि से छोटे शत्रु की भी उपेक्षा विद्वानों को नहीं करनी चाहिए। आग की एक चिनगारी भी बढ़कर समूचे जंगल को जला देती है।

आदरात्संगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत्।
पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनेव कण्टकम् ॥११४॥

आदर पूर्वक अपने शत्रु को वश में करके उसके द्वारा दूसरे शत्रु का नाश करना चाहिए। जिस प्रकार पैर में गड़े काँटे को, निकालने के लिये दूसरा काँटा हाथ में लिया जाता है।

केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः।
केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैस्तु नाशिताः ॥११५॥

कुछ लोग अज्ञान से नष्ट हुए और कुछ लोग प्रमाद से, और कुछ लोगों को नष्टों ने नष्ट किया।

पण्डिते न विरुद्धः सन्दूरेस्मीति न विश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतोबाहू याभ्यां दूरे हिनस्ति सः ॥११६॥

पंडितों से विरोध करके इस बात के विश्वास से नहीं भूलना चाहिए कि मैं अपने विरोधी से दूर रहता हूँ, क्योंकि बुद्धिमानों की बाँह लम्बी होती है जिनसे वे दूर से भी मार गिराते हैं।

चतुरः सृजताराजन्नुपायांस्तेन बेधसा।
न सृष्टःपंचमः कोपि गृह्यन्ते येनयोषितः ॥११७॥

महाराज ब्रह्मा ने केवल चारही उपाय बनाये हैं। उसने पाचवाँ कोई उपाय नहीं बनाया जिससे स्त्रियां वश में की जाँय।

✓अपि कुंजरकर्णाग्रादपि पिप्पलपल्लवात्।
अपि विद्युद्विलसिताद्विलोलं ललनामनः ॥११८॥

हाथी के कानों से, पीपल के पत्तों से और बिजली की चमक से भी बढ़ कर स्त्रियों का मन चञ्चल होता है।

✓सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यत्र निर्वृतिः ।
तन्मित्रं यत्रविश्वासः स देशो यत्र जीवति ॥११९॥

भार्या वह है जो प्रिय बोलती है, पुत्र वह है जिसके कार्यों से पिता को सन्तोष हो, मित्र वह है जिस पर विश्वास हो और देश वही है जहाँ जीविका हो ।

✓नित्यं प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्ये च दक्षया ।
सुसंस्कृतोपतेकरया नित्यं चामुक्तहस्तया ॥१२०॥

स्त्रियों को सदा प्रसन्न रहना चाहिए, अपने गृहकार्य में सावधान रहना चाहिए, अपने घर की वस्तुओं को स्वच्छ रखना चाहिए और समझबूझ कर खर्च करना चाहिए ।

✓ स्त्रियः सेवेत नात्यन्तं मिष्टं भुञ्जीत नाहितम् ।
अस्तब्धः पूजयेन्मान्यान्सेवेतामायया गुरून् ॥१२१॥

स्त्रियों का अधिक सङ्ग नहीं करना चाहिए, अधिक मिठाई खाना भी हितकारी नहीं, तत्पर होकर माननीयों की सेवा करे और छल, रहित होकर गुरुओं की सेवा करे ।

✓नचेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या दारारक्ष्याः प्रयत्नतः ।
अनायुष्या भवेदीऽर्ष्या तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥१२२॥

स्त्रियों से ईर्ष्या न रखे, बड़े प्रयत्न से उनकी रक्षा करे। ईर्ष्या से आयु क्षय होता है, इसलिए ईर्ष्या छोड़ देनी चाहिए।

✓ सूक्ष्मेभ्योपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्याहि सर्वदा ।
द्वयोर्हि कुलयोर्दोषमावहेयुररक्षिताः ॥१२२॥

थोड़ी थोड़ी बातों की ओर से भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि बिना रक्षा किये वे दोनों कुलों को कलङ्कित कर देती हैं ।

यदैव भर्ता जानीयान्मन्त्रमूलपरां स्त्रियम् ।
उद्विजेत तदैवास्याः सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥१३३॥

पति को जिस समय यह मालूम होता है कि मेरी स्त्री मेरे वश करने के लिए मन्त्र और औषधियों का प्रयोग करती है, उसी समय वह घवड़ा जाता है, जैसे घर में के साँप से गृहवासी घवड़ा जाते हैं।

नास्ति यज्ञः स्त्रियः कश्चिन्न व्रतं नोपवासकः ।
पतिं शुश्रूषते यत्सा तेन स्वर्गे महीयते ॥१३४॥

स्त्रियों के लिए कोई यज्ञ नहीं, कोई व्रत नहीं और न कोई उपवास ही है। स्त्रियाँ अपने पति की सेवा करती हैं इसलिए उन्हे स्वर्ग मिलता है।

पानमक्षास्तथा नार्यो मृगयागीतवादिते ।
एतानि युक्त्या सेवेत प्रसङ्गो ह्यत्र दोषवान् ॥१३५॥

शराब, जूआ, स्त्रियां, शिकार, गाना, बजाना, बुद्धिपूर्वक इनका उपयोग करे, क्योंकि इनमें अधिक आसक्ति से हानि होती है।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न ते भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥१३६॥

जिसकी प्रसन्नता का कोई फल न हो और जिसका क्रोध भी निरर्थक हो; उसको कोई भी अपना प्रभु नहीं बना सकता। जिस प्रकार स्त्रियां नपुंसक को पति बनाना नहीं चाहतीं।

व्रजत्यधोधो यात्युच्चैर्नरः स्वैरेव कर्मभिः ।
खनित्रेव हि कूपस्य प्रसादस्येव कारकः ॥१३७॥

मनुष्य अपने कर्मों से ऊंचे चढ़ता है और नीचे भी जाता है, कुआँ खोदने वाला नीचे और अटारी बनाने वाला ऊपर जाता है

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपिब्रुवन् ।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च केवलम् ॥१३८॥

बिना अवसर की बात यदि बृहस्पति भी कहे तो लोग उन को मूर्ख समझते हैं और उनका तिरस्कार करते हैं ।

किं करिष्यत्यपात्राणामुपदेष्टा सुवागपि ।
तक्ष्णतीक्ष्णः कुठारोपि दुर्दारुणि विहन्यते ॥ १३९॥

सुन्दर वचन बोलनेवाला भी उपदेशक, अनधिकारियों के सामने क्या कर सकता है ? बहुत तेजभी कुठार ख़राब लकड़ियों को नहीं काट सकता ।

यदश्रुतार्थधर्मा वै प्रमाद्यति न तच्छलम् ।
धर्म एवायमन्धानां यत्स्खलन्ति खलेष्वपि ॥१४०॥

धर्म तत्व न जाननेवाला आदमी यदि गलती करे, तो यह उसका छल नहीं, क्योंकि न देखना ही अंधों का धर्म है ।

शिवस्वामी ।

ये कवि काश्मीरवासी थे । कशमीर के राजा अवन्ति धर्मा के राज्य-समय में ये थे ।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः ।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥

राजा अवन्ति वर्मा के समय में मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन और रत्नाकर ये कवि वर्तमान थे। राजा अवन्ति वर्मा ने ८५५ ई० से ८८४ ई० तक काश्मीर का राज्य किया था। राज-तरङ्गिणी से इसका पता मिलता है। शिव स्वामी का भी वह समय मिलता है।

शिवस्वामी के किसी ग्रन्थ का पता नहीं मिलता, पर इनका कोई ग्रन्थ होगा अवश्य। इनकी कविता बड़ी अच्छी है, उसमें काव्य के गुण वर्तमान हैं। सुभाषित ग्रन्थों से उद्धृत कर शिवस्वामी के कुछ पद्य यहाँ लिखे जाते हैं।

रूक्षं विरौति परिकुप्यति निर्निमित्तं
स्पर्शेन दूषयति वारयति प्रवेशम् ।
लज्जाकरं दशति नैव च तृप्यतीति
कौलेयकस्य च खलस्य च को विशेषः ॥१॥

कुत्ता और खल इनमें क्या भेद है? दोनों की बोली कठोर है, दोनों ही बिना कारण क्रोध करते हैं, दोनों के स्पर्श करने से दोष होता है, दोनों ही रास्ता रोकते हैं, बुरी तरह काटते हैं और तृप्त नहीं होते।

मुक्ताभानि पयांसि भङ्गविलसद्दुग्धा बिसग्रन्थयः
स्फीतास्तामरसासवा विहरणक्रीडासहं सैकतम् ॥
सन्त्येव प्रतिदेशमग विषमे हे हंस पङ्काङ्किते
घृष्टोत्कुष्टबके जरत्सरसि ते कोयं निवासाग्रहः ॥२॥

हे हंस, प्रत्येक दिशा में मुक्ता के समान स्वच्छ जल है, तोड़ने पर दूध के समान कमल नाल हैं, उत्तम कमल का मधु है, विहारक्रीड़ा के लिए रेतीला मैदान है, फिर हंस,

इस पुराने कीचड़वाले तालाब में रहने का तुम्हारा कौन सा हठ है, यहां तो ढोठा वक भी बोलता है ।

चित्रैर्यस्यपवत्रिभिर्दशदिशो भ्रांत्वा समेतैः सुखं
विश्रान्तं शयितं प्रभुक्तमुषितं स्कन्धे फलैः प्रश्रिते ॥
तस्यैवोन्मथितस्य दुष्टकरिणा मार्गद्रुमस्याधुना
कारीषाय कषन्ति शोषपरुषां गोपालवालास्त्वचम् ॥३॥

अनेक प्रकार के पक्षी चारों ओर घूमकर जिस वृक्ष पर सुखपूर्वक विश्राम करते थे, सोते थे, खाते थे, रहते थे; जिस वृक्ष की डालियाँ फलों से लदी रहती थीं, उसी रास्ते के वृक्ष को जङ्गली हाथी ने तोड़ दिया । अब जलाने के लिए उसके सूखे वकले अहीरों के लड़के निकाल रहे हैं ।

या बिम्बौष्ठरुचिनं विद्रुममणिः स्वप्नेपि तां दृष्टवा-
न्हासश्रीः सदृशस्तपोभिरपि किं मुक्ताफलैः प्राप्यते ।
तत्कान्तिः शतशोपि वन्हिपतनै र्हेम्नः कुतः सेत्स्यति
त्यक्त्वा रत्नमयीं प्रयासि दयितां कस्मै धनायाध्वग ॥४॥

बिम्बरूपी अधर की शोभा विद्रुममणि (मूँगा) ने स्वप्न में भी नहीं देखी है, उस सुनयना की हँसी की शोभा तपस्या के द्वारा भी मुक्ताफल को नहीं प्राप्त हो सकता है, सैकड़ों बार आग में गिरने पर भी सुवर्ण को वह कान्ति नहीं मिल सकती । पथिक, ऐसी रत्नमयी दयिता को छोड़ कर किस धन के लिए जा रहे हो ।

गतोऽस्तं धर्मांशुर्व्रज सहचरीनोडमधुना
सुखंः भ्रातः सुप्याः सुजनचरितं वायसकृतम् ।
मयि स्नेहाद्वाष्पस्थगितनयनायामपघृणो
रुदत्यां यो यावस्त्वयि स विलपत्येष्यति कथम् ॥५॥

सूर्य अस्त हो गया, अब तुम भी अपनी सहचरी के पास जाओ । भाई आनन्द पूर्वक सोओ, हे काम, तुमने सज्जन का काम किया । जब मैं रो रही थी स्नेह से मेरी आंखें जब भर आयी थीं, उस समय जो निर्दय चला गया वह तुम्हारे विलाप के समय कैसे आ सकता है ।

उल्लापयन्त्या दयितस्य दूतीं बध्वा विभूषां च निवेशयन्त्याः ॥
प्रसन्नता कापि मुखस्य यज्ञे वेषश्रिया नु प्रिय वार्तया नु ॥६॥

प्रिय की दूती से बातें भी करती थी और अपना शृङ्गार भी कर रही थी, उस समय उसके मुख पर प्रसन्नता दिखायी पड़ी, वह प्रसन्नता शृङ्गार के कारण हुई या प्रिय की बातों के कारण हुई, मालूम नहीं ।

भोक्तुं भङ्क्त्वा भुंक्ते कुटिलबिसलताकोटिमिन्दोर्वितर्का
त्ताराकारांस्तृषार्तो न पिवति पयसः स्थूलविन्दून्दलस्थान् ॥
छायां सध्वान्तसन्ध्येत्पलिकुलशवलां वेत्ति चाम्भोरुहाणां
कान्ता विश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः ॥७॥

टेढ़ी कमलडंडी को खाने के लिए तोड़ता है, पर चन्द्रमा समझ कर उसे छोड़ देता है, यद्यपि प्यासा है तथापि कमल पत्र पर पड़े हुए जल के बड़े बड़े विन्दुओं को तारा समझकर नहीं पीता है, भ्रमर समूह युक्त कमल की छाया को अन्धकारमयो सन्ध्या समझता है, इसी प्रकार कान्ता के वियोग से डरनेवाला चक्रवाक दिन को भी रात समझता है ।

समजनि न तत्प्रेम त्यक्तं यदषदपीर्ष्यया
स्मरसुखसखी नासावीर्ष्या बिना कलहेन या,
नखलु कलहः सोऽन्योन्यं यः प्रसादनवर्जितः
प्रसदनविधिर्नासौ वाला न येन विलिलिपरे ॥८॥

वह प्रेम उत्पन्न ही नहीं हुआ जिसमें थोड़ी भी ईर्ष्या न हो, कामसुख की सहचरी वह ईर्ष्या भी नहीं है, जिसमें परस्पर प्रसन्न करने की रीति न हो, और वह प्रसन्न करना भी नहीं है, जिससे वाला विलम प्राप्त न हो जाय।

वदनशशिनः स्पर्शे शीतादिवागतवेपथुः
स्तनयुगलके भ्रान्त्वा तुङ्गे निलीन इव श्रमात् ॥
ज्वलितमदनाङ्गारे तन्व्यास्ततो जघनस्थले
सपुलकजले पत्युः पाणिर्विलीन इवाभवत् ॥९॥

चन्द्ररूपी मुख के स्पर्श करने से मानों शीत के कारण कम्प उत्पन्न हो जाता है, ऊंचे स्तनों पर घूमने के कारण मानो थककर हाथ निश्चेष्ट हो जाते हैं, जहां कामाग्नि जल रही है, उस जघनस्थल पर जाने पर पति के हाथ रोमाञ्च और स्वेद के कारण मानो गल जाते हैं।

वदननिहिते ताम्बुलांशे श्रिते रतिवीजतां
कुवलयदृशः प्रत्यायज्ञे स रागतरुस्तदा ॥
किसलयरुचो यस्यच्छायामुपाश्रितयो स्तयो–
र्विषमविषमः कात्स्न्येनास्तं गतो विरहक्रमः ॥१०॥

मुख में ताम्बुल का टुकड़ा रखा गया और वह अनुराग का बोज बना। उससे कमलाक्षी के अनुराग वृक्ष की उत्पत्ति हुई, जिसकी पत्तियों की छाया आश्रय करनेवालों की समस्तविरहवेदना नष्ट हो गयी।

शीला भट्टारिका।

ये स्त्री कवि हैं। इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं, इसका पता नहीं। पर इनकी प्रशंसा में राजशेखर ने जो श्लोक कहा है उससे ये कवि थीं, इनकी कविता उत्तम होती थी, यह बात मालूम होती है। राजशेखर ने लिखा है—

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते।
शिला भट्टारिकावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि॥

शब्द और अर्थ दोनों का बराबरी विन्यास करना पाञ्चाली रीति कही जाती है, वह यदि शिला भट्टारिका के बचन में या बाणभट्ट की उक्ति में हो। इस श्लोक से मालूम होता है कि महाकवि राजशेखर इनको किस दृष्टि से देखते थे।

शार्ङ्गधर पद्धति में एक श्लोक इनके और भोजराज के नाम से उद्धृत है, वह श्लोक इस प्रकार है—

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां
यदि ह जरास्वपि मान्मथा विकारा,
यदपि च न कृतं नितम्बिनीनां
स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा।

इस श्लोक के पहले दो चरण शीलाभट्टारिका के हैं और दूसरे दो चरण भोजदेव के इससे ये भोजराज के समय में थीं, यह निश्चित होता है।

इनका नाम केवल शीला है। किसी राजकुल में उत्पन्न होने के कारण या राजोचित सम्मान पाने के कारण भट्टारिका

कही जानें लगीं होंगी ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि राज-कन्याएँ पहले भट्टारिका कही जाती थीं ।

> यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
> स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ा कदम्बानिलाः ।
> सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
> रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥ १ ॥

जो पति है वही अभिमत है, चैत्र की रात्रि भी वही है, वही विकसितमालती का सौरभ है, वही कदम्ब वायु है, मैं भी वही हूं, फिर भी नर्मदा के तीर पर वेतस वृक्ष के नीचे सुरत व्यापार के लिए चित्त उत्कण्ठित होता है ।

> दूती त्वं तरुणी युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः
> संदेशः स रहस्य एव विपिने संकेतकावासकः ।
> भूयो भूयइमे वसन्तमरुतश्चेतो हरन्त्यन्यतो
> गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणे रक्षन्तुते देवताः ।। २ ।।

हे दूती, तुम तरुणी हो, वह युवा भी चञ्चल है, दिशाएँ अन्धकार से काली पड़ गयी हैं । संदेशा भी रहस्य का है, सङ्केत स्थान भी बन है, बारबार यह वसन्त की हवा चित्त हरण कर रही है, हे निपुण दूति, कल्याण पूर्वक मिलने के लिए जाओ, देवता तुम्हारी रक्षा करें । अब कवि का तात्पर्य बहुत छिपा हुआ नहीं है ।

> प्रियाविरहितस्याद्य हृदि चिन्ता समागता ।
> इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते ॥ ३ ॥

मैं प्रिया से विरहित हूं इसलिए मेरे हृदय में चिन्ता आ गयी, इस बात को देखकर निद्रा चली गयी, क्योंकि कृतघ्नों का साथ तो कोई नहीं करता ।

श्वासाः किं त्वरितागतैः पुलकिता कस्मात्प्रसादः कृतः
स्रास्तावेण्यपि पादयोर्निपतनान्नीवी गमादागमात् ।
स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गलितं क्षामा किमन्युक्तिभि-
र्दूति म्लानसरोरुहद्युतिधरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि ॥३॥

तुम्हारी सांस जोर से क्यों चल रही है? जल्दी आने से। रोमाञ्च क्यों है? क्योंकि वह प्रसन्न हुआ है। यह चोटी क्यों बिखरी है? पैरों पर गिरने से। नीवी ढीली क्यों है? आने जाने से। मुँह में पसीना क्यों है? धूप से। तुम दुबली क्यों हो? बहुत बात करने से। अच्छा दूती, यह तो बतलाओ, म्लानकमल के समान इस अपने ओंठ के विषय में क्या कहोगी?

विरहविषमो वामः कामः करोतु तनुं तनुं
दिवसगणनादक्षश्चासौ व्यपेतघृणो यमः ।
त्वमपि वशगो मानव्याधेर्विचिन्तय नाथ हे
किसलयमृदुर्जीवेदेवं कथं प्रमदाजनः ॥४॥

विरह से बिषमबना हुआ यह शत्रु काम चाहे मेरे शरीर को जितना दुबला बनावे, निर्दय यह यमराज भी दिन गिनने में चतुर है, तुम भी मानरूपी रोग के अधीन होगये हो। हे नाथ! अब बतलाओ ये कोमल स्त्रियाँ अब कैसे जीवेंगी।

श्रीहर्ष

इन्होंने नैषधीयचरित नामक एक महाकाव्य लिखा है। इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में इन्होंने अपना श्रीहर्ष नाम लिखा है। इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें कुछ के नाम लिखे जाते हैं।

१ स्थैर्यविचार प्रकरण, २ विनयप्रशस्ति, ३ खण्डन-खण्ड खाद्य, ४ गौडोर्वीशकुल प्रशस्ति, ५ अर्णव, वर्णन ६ छन्दः-प्रशस्ति, ७ शिवशक्तिसिद्धि, ८ नवसाहसांकचरित चम्पू आदि ।

डा० व्यूलरने श्रीहर्ष का समय ११६३ से, ११७४ तक बतलाया है । यह बात ठीक भी माॅलूम पड़ती है, क्योंकि इन्होंने गौडराज विशेषकर विजयसेन की प्रशस्ति लिखी है, इनका भी यही समय है ।

श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्लदेवी था । नैषधीयचरित के अन्त में इन्होंने अपने विषय में "ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्" लिखा है; अर्थात् जो कान्यकुब्जेश्वर से दो बीड़ा पान और आसन पाता था । यह इनकी प्रतिष्ठा की बात थी । राज-शेखर कहते हैं कि श्रीहर्ष जयन्तचन्द्र के समकालीन थे ।

ये बड़े ही बुद्धिमान् और विद्वान् कवि थे । भाषा पर इनका एकच्छत्र अधिकार था । इनका नैषधीयचरित एक मान्य काव्य समझा जाता है, इसका संस्कृतज्ञों में अच्छा आदर है ।

द्विजपतिग्रसनाहितपातकप्रभवकुष्ठसितीकृतविग्रहः ।
विरहिणीवदनेन्दुजिघत्सया स्फुरति राहुरयं न निशाकरः ॥१॥

विरहिणी का प्रलाप । दमयन्ती चन्द्रमा को देखकर कहती है, यह चन्द्रमा नहीं है, यह राहु है । चन्द्रमा का ग्रास करके जो पाप इसने अर्जन किया है, उसीसे इसके समस्त शरीर में कुष्ठ रोग उत्पन्न हो गया है, जिससे इसका शरीर

श्वेत हो गया है। अब यह वियोगिनी स्त्रियों के मुखचन्द्र को ग्रसना चाहता है।

वद विधुन्तुदमालि मदीरितैस्त्यजसि किं द्विजराजभिया रिपुम्।
किमु दिवं पुनरेति यदीदृशः पतित एष निपेव्य हि वारुणीम् ॥२॥

हे सखी, मेरी ओर से जाकर तुम राहु से कहो कि तुम शत्रु को द्विजराज समझ कर क्यों छोड़ते हो? क्या यह पुनः स्वर्ग में जा सकता है? क्योंकि यह वारुणी के सेवन से पतित हो रहा है। वारुणी शराब को कहते हैं और पच्छिम दिशा को। चन्द्रमा पच्छिम दिशा में अस्त होता है, इसी बात को कवि ने वारुणी के साथ से चन्द्रमा का पतित होना बतलाया है। पतित के मारने में डर क्या? दमयन्ती ने इन उक्तियों से चन्द्रमा को मारने के योग्य सिद्ध किया।

स्वरिपुतीक्ष्णसुदर्शनविभ्रमात्किमु विधुं ग्रसते स विधुंतुदः।
निपतितं वदने कथमन्मथा वलिकरम्भनिभं निजमुज्झति ॥३॥

मालूम होता है कि राहु विष्णु के सुदर्शन चक्र के धोखे में आकर चन्द्रमा को नहीं निगलता अतएव। वह अपने मुँह में आये हुए को भी छोड़ देता है।

कुरु करे गुरुमेकमयोघनं वहिरितो मुकरं च कुरुष्व मे।
विशति तत्रय दैव विधुस्तदा सखि सुखादहितं जहि तं द्रुतम् ॥४॥

हे सखि अपने हाथ में हथौड़ा लो और सामने एक शीशा रक्खो। जब उस शीशे में चन्द्रमा घुसे तब उसको खूब मारो, क्योंकि वह शत्रु है।

दहनजा न पृथुर्दवथुर्व्यथा विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम्।
दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः प्रियमपासुमुपासितुमुद्धराः ॥५॥

आग के जलने से उत्पन्न होनेवाले दाह की अपेक्षा, विरहाग्नि का दाह बड़ा है। प्रमाण सुनिये। स्त्रियाँ पति के मरने पर वियोगाग्नि से डरकर, अग्नि में प्रवेश करती हैं, यह इसीलिए न कि अग्नि के ताप से विरहाग्नि का ताप भयंकर है।

> निशि शशिन्भज कैतवभानुतामसति भास्वति तापय पाप माम्।
> अहमहन्यवलोकयितास्मि ते पुनरहर्पतिनिर्धुतदर्पताम् ॥६॥

हे चन्द्रमा, तुम रात्रि में जाली सूर्य्य बन रहो। हे पापिन् मुझे खूब तपाओ, पर दिन में तुम्हें देखूँगी कि सूर्य्य के ताप को लज्जित करने का तुम्हारा यह गर्व रहता है या नहीं।

> त्वमिव कोपि परापकृतौ कृती न ददृशे न च [illegible]थ शुश्रुवे।
> स्वमदहोदहनज्ज्वलतात्मना ज्वलयितुं परिरभ्य [illegible]न्ति यः ॥७॥

हे कामदेव, दूसरों के अपकार करने में तुमसा चतुर न कोई देखा गया और न सुना गया। तुमने स्वयम् अपने शरीर को जलाया और यह दूसरों के शरीर को अपने जलते हुए अंग से आलिङ्गन करके, केवल जलाने की इच्छा से किया।

> असमये मतिरुन्मिषति ध्रुवं करगतैव गता यदियं कुहूः।
> पुनरुपैति निवध्य निधास्यते सखि विधोर्न पुनर्मुखमोक्ष्यते ॥८॥

यह बात बिलकुल सच है कि बिना अवसर के बुद्धि फुरती है। इसीसे कर (हस्त नक्षत्र या हाथ) में आई हुई कुहू—वह अमावस्या जिसमें चन्द्रमा दिखाई नहीं पड़ता-आई और चली गई। सखि, यदि वह पुनः आवे तो उसे बाँध कर रक्खूँगी, जिससे चन्द्रमा का मुहँ दिखाई न पड़े।

कालः किरातः स्फुटपद्मकस्य वधं व्यधाद्यस्य दिनद्विपस्य ।
तस्यैव संध्या रुचिरास्त्रधारा ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि ॥९॥

सन्ध्या वर्णन—काल किरात है, इसने दिन रूपी हाथी का वध किया है, जिसमें पद्म (कमल या हाथी का चिन्ह विशेष) स्फुटित थे, यह संन्ध्या उसी दिनद्विप के रुधिर की धारा है और उसके मस्तक के मौक्तिक तारा हैं।

अदाय दण्डं सकलासु दिक्षु योयं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः ।
अब्धौ निमज्जन्निव तापसोयं संध्याभ्रकाषायमधत्त सायम् ॥१०॥

यह भानु रूपी भिक्षु दंड (किरण-अथवा डंडा) धारण करके सब दिशाओं में घूमता है। समुद्र में डूबकर तपस्वी का रूप धारण करता है, और सायङ्काल में लाल मेघों का काषाय वस्त्र धारण करता है।

किं योगिनीयं रजनी रतीशं याजीजिवत्पद्ममसूमुहच्च ।
योगर्द्धिमस्या महतीमलग्नमिदं वदत्यम्बुरचुम्बि कम्बु ॥११॥

यह रात्रि योगिनी है क्या ? जिसने कामदेव को जीत लिया है और कमलों को मूर्छित किया, बिना सहारे आकाश को चूमनेवाला यह शंख इसकी महती योगसिद्धि को बतलाता है।

प्रबोधकालप्रतिवाधितानि ताराखपुष्पाणि निदर्शयन्ती ।
निशाह शून्याध्वनि योगिनीयं मृषा जगद्‌दृष्टमपि स्फुटाभम् ॥१२॥

जागरण के समय अर्थात् प्रातःकाल के समय आकाश के पुष्प स्वरूप ताराओं को दिखाकर अर्थात् दृष्टान्तरूप से बतलाकर—इस जगत् को—जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है असत्य बतला रही है, इसलिए यह शून्यसिद्धान्त को मानने

वाली सन्यासिनी मालूम होती है। बौद्ध-दर्शन का शून्य-वाद एक सिद्धान्त है।

रामालिरोमावलिदिग्विगाहि ध्वान्तायते वाहनमन्तकस्य ।
यद्वीक्ष्य दूरादिव बिभ्यतःस्वानश्वान्गृ हत्वापसृतो विवस्वान् ॥१३॥

दक्षिण दिशा में फैलनेवाला यह यमराज का वाहन ही अन्धकार बना हुआ मालूम पड़ता है। जिसको दूर से ही देखकर अपने डरनेवाले घोड़ों को लेकर सूर्य चला गया। घोड़ा और भैंसे का विरोध प्रसिद्ध है।

वरुणगृहिणीमाशामासादयन्तममुं रुची-
न्निचयसिचयांशांशभ्रंशक्रमेण निरंशुकम् ।
तुहिनमहसं पश्यन्तीव प्रसादमिषादसौ
निजमुखमतः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषी हरित् ॥१५॥

इन्द्र की महारानी पूर्वदिशा प्रातः काल में निर्मलता के व्याज से हँस रही है। क्योंकि उसने देखा कि सूर्य, वरुण की स्त्री उत्तर दिशा के पास गया है और यह किरणरूपी वस्त्रों के क्रमशः गिरने से वस्त्र हीन हो गया है। परस्त्री के साथ से इसकी बुरी दशा है, यह पूर्व दिशा के हँसने का कारण है।

भूयोऽपि भूपमपरं प्रति भारती तां
त्रस्यच्चमूरुचलचक्षुषमाचचक्षे ।
एतस्य काशिनृपतेस्त्वमवेक्ष्य लक्ष्मी-
मक्ष्णोः सुखं जनय खञ्जनमञ्जुनेत्रे ॥१६॥

स्वंयवर के अवसर पर काशी का वर्णन—डरनेवाले मृग की आंखों के समान जिसकी आंखें चञ्चल हैं उससे पुनः दूसरे से राजा के विषय में कहा, इस काशिराज की शोभा देखकर

अपनी आंखों को प्रसन्न करो, अर्थात् खञ्जन के समान सुन्दर तुम्हारे नेत्रों को ऐसी ही अच्छी चीज़ देखनी चाहिए।

> एतस्य सावनिभुजः कुलराजधानी
> काशी भवोत्तरणधर्मतरिः स्मरारेः ।
> यामागता दुरितपूरितचेतसोऽपि
> पापं निरस्य चिरजं विरजीभवन्ति ॥१७॥

इनकी कुल—राजधानी काशी है, जो महादेव की संसार-तरने के लिए धर्मनौका है, जहां पापपूरित मनुष्य आकर भी पाप-रहित होकर रजोगुण-रहित हो जाता है।

> आलोक्य भाविविधिकर्तृकलोकसृष्टि-
> कष्टानि रोदिति पुरा कृपयैव रुद्रः ।
> नामेच्छयेति विषमागमधत्त यत्तां
> संसारतारणतरीमसृजत्पुरीं सः ॥१८॥

पहले के समय महादेव ने ब्रह्मा की लोकसृष्टि में होनेवाले दुःखों का विचार करके रोदन किया था—रुद्र नाम प्राप्ति की इच्छा से उन्होंने रोदन किया था, यह केवल बहाना है, क्योंकि उन्होंने संसार से तारण करने वाली नौकारूपी पुरी उन्होंने बनायी।

> वाराणसी निविशते न वसुंधरायां
> तत्र स्थितिर्मखभुजां भुवने निवासः ।
> तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एव मुक्तिः
> स्वर्गात्परं पदमुदेतु मुदे तु कीदृक् ॥१९॥

काशी में रहनेवालों का निवास पृथिवी में नहीं, किन्तु देवताओं के लोक में उनका वास है; अतएव वहां शरीर छोड़नेवालों की मुक्ति होती है, यदि स्वर्ग से बढ़कर पद मिलता है, तो इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात क्या होगी।

सायुज्यमृच्छति भवस्य भवाब्धियाद-
स्तां पत्युरेत्य नगरीं नगराजपुत्र्याः
भूताभिधानपटुमद्यतनीमवाप्य
भीमोद्भवे भवति भावमिवास्त्रधातुः ॥२०॥

हे भैमि, संसार समुद्र का जन्तु पार्वती के पति महादेव की नगरी में आकर उनमें मिल जाता है, क्योंकि यह तारक ब्रह्म का उपदेश देती है, जिस प्रकार भूतकाल कहनेवाली विभक्ति में अस्त्र धातु का रूप भव हो जाता है ।

निर्विश्य निर्विशति काशिनिवासिभोगा-
न्निर्माय नर्म च मिथो मिथुनं यथेच्छम् ।
गौरीगिरीशघटनाधिकमेकभावं
शर्मोर्मिकञ्चुकितमञ्चति पञ्चतायाम् ॥२१॥

काशी में रहनेवाला दम्पती परस्पर इच्छापूर्वक भोगों को भोगकर और यथेच्छ क्रीड़ा करके देहान्त के समय गौरी और महादेव के एकीभाव से भी अधिक कल्याण परम्परा से युक्त अभेद भाव का अनुभव करता है ।

न श्रद्दधासि यदि तन्मम मौनमस्तु
कथ्या निजाप्ततमयैव तवानुभूत्या ।
न स्यात्कनीयसितरा यदि नाम काश्या
राजन्वती मुदिरमण्डनधन्वना भूः ॥२२॥

यदि तुम मेरी बातों पर विश्वास नहीं करती हों तो मैं चुप हो जाती हूँ, तुम्हारा अपना अनुभव ही तुम्हें कहे, इन्द्र के द्वारा पालित होनेवाली अमरावती काशी से छोटी है कि नहीं ।

ज्ञानाधिकासि सुकृतान्यधिकाशि कुर्याः
कार्यं किमन्यकथनैरपि यत्र मृत्योः
एकंजनाय सततामयदानमन्न-
च्छन्ये वहत्यमृतसत्रसवारितार्थि ॥ २३ ॥

तुम ज्ञानी हो, तुम्हारा ज्ञान अधिक है, तुम काशी में पुण्य कर्मों को करो। अधिक क्या कहा जाय जहाँ मृत्यु से सदा मनुष्यों के लिए अभयदानरूपी मोक्षसत्र (दानशाला) चलता है, और दूसरा जहां से अर्थी विमुख होकर नहीं लौटते वैसी अमृत जल की गङ्गा वहती है।

सुवन्धु ।

वासवदत्ता नाम की एक आख्यायिका इन्होंने गद्य में लिखी है। संस्कृत में गद्यकाव्य लिखनेवाले कवियों का बड़ा ही अभाव है। दो ही तीन गद्यकाव्य लेखक संस्कृत में पाये जाते हैं, उन्हींमें एक सुवन्धु भी हैं। सुवन्धु वाणभट्ट से पहले के कवि हैं। आश्चर्य होता है इस कवि के साहस पर, क्योंकि सुवन्धु जिस समय थे, उस समय गद्यलेखकों का बिलकुल अभाव ही था। उस समय संस्कृत काव्य बनाये जाते थे, पर पद्य में, गद्य में नहीं। ऐसे समय में गद्य लिखना अवश्य ही साहस की बात है। महाकवि सुवन्धु सरस्वती में बड़े भक्त थे। इनकी समझ थी कि मेरी कविताशक्ति सरस्वती के प्रसाद से उत्पन्न हुई है। यह बात इन्होंने स्वयं अपनी वासवदत्ता की प्रस्तावना में लिखी है—

सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः ।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥

सुजनों के मित्र सुवन्धु ने सरस्वती के दिये हुए वरप्रसाद से एक निबन्ध बनाया जिसका प्रत्येक अक्षर श्लेषमय है। सचमुच सुबन्धु ने अपने निबन्ध के लिए जैसा लिखा है वह वैसाही है। इनके विषय में वाणभट्ट ने अपने हर्षचरित नामक गद्यकाव्य में लिखा है —

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया,
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥१॥

वासवदत्ता से अवश्य ही कवियों का अभिमान नष्ट हो गया, जिस प्रकार शक्ति के कर्ण के अधीन होने पर पाण्डवों का गर्व नष्ट हो गया था। सुवन्धु ने अपनी वासवदत्ता में बौद्धसंगति नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है, इस ग्रन्थ के कर्ता धर्मकीर्ति नामक एक बौद्ध पण्डित थे। ये धर्मकीर्ति ५५० ई० के लगभग हुए थे, इससे इनका समय भी पांचवीं सदीका प्रारम्भ भाग मानना चाहिए। पर इस विषय में मत-भेद है, कुछ लोगों का कहना है कि वासवदत्ता की एक पुस्तक में "वररुचिभागिनेय महाकवि सुवन्धु विरचिता" लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये कवि वररुचि के भांजे थे। ये वररुचि विक्रमादित्य के समकालीन थे। वास-वदत्ता में विक्रमादित्य का उल्लेख भी मिलता है। इनके कुछ श्लोक सुनिये।

भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य ।
वहति विकासितकुमुदो द्विगुणरुचिं हिमकरोद्योतः ॥१॥

जो दूसरों के गुणों को फैलाते हैं, जो खुलकर परगुण कीर्तन करते हैं, वे सुजन हैं, उनकी रमणीयता और भी

अधिक होती है, इस कारण—दूसरों के गुण वर्णन करने के कारण अपनी छोटाई होगी इस प्रकार की शङ्का निर्मूल है। चन्द्रमा की किरणें कमलों (कुमद) को विकसित करती हैं, इससे उनकी शोभा और वढ़ती ही है।

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः परत एव संभवति ।
स्वमहिमदर्शनमक्ष्णोर्मुकुरतले जायते यस्मात् ॥२॥

गुणियों को भी अपने रूप का ज्ञान दूसरों के द्वारा ही होता है। वे स्वयं अपने गुणों को नहीं जान सकते, नेत्र अपने गौरव का अनुभव तब तक नहीं कर सकते, जब तक कि उनके सामने दर्पण न रखा जाय।

विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः ।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी सदा पिशुनः ॥३॥

विद्वानों का यह कहना झूठ नहीं है कि खल सर्प से भी बढ़कर भयानक हैं। क्योंकि सर्प नकुल द्वेषी है (कुलसे न द्वेष करनेवाला, अथवा नेवले से द्वेष करनेवाला है) पर चुगल-खोर कुल द्वेषी है। वह अपने कुल का ही नाश करता है।

अतिमलिने कर्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः ।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ॥४॥

नीचकर्म करने में खलों की बुद्धि वड़ी ही तेज हुआ करती है। देखिए न उल्लुओं की आँखे अंधेरे में ही रूप देखा करती हैं।

विध्वस्तपरगुणानां भवति खलानामतीव मलिनत्वम् ।
अन्तरितशशिरुचामपि सलिलमुचां मलिनिमाभ्यधिकः ॥५॥

खल बड़े ही मलिन होते हैं, वे दूसरों के गुणों पर कालिख पोता करते हैं। मेघ चन्द्रमा को अपने पेट में छिपा लिया करता है, पर इससे उसकी कालिमा घटती नहीं किन्तु बढ़ती ही है।

हस्त इव भूतिमलिनो लंघयति यथा यथा खलः सुजनम्।
दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायम् ॥६॥

दुर्जन मनुष्य सज्जनों को बदनाम करने का — उनको नीचा दिखाने का ज्यों ज्यों प्रयत्न करता है त्यों त्यों वे अधिक उज्ज्वल होते जाते हैं, जिस प्रकार दर्पण पर राख लिपटा हुआ हाथ ज्यों ज्यों फेरा जाय, त्यों त्यों वह अधिक उज्ज्वल हो जाता है।

सुराणां पातासौ स पुनरतिपुण्यैकरसिको,
प्रहस्तस्यास्थाने गुरुरुचितमार्गे स निरतः
करस्तस्यान्त्यन्तं स्पृशतिशतकोटिप्रणयितां
स सर्वस्वं दाता तृणमिव सुरेशं विजयते ॥७॥

वह देवताओं की रक्षा करता है, वह नितान्त पुण्य का प्रेमी है, उसकी सभा में वृहस्पति हैं, वह सदा उचित मार्ग में निरत है, उसके हाथ करोड़ों से प्रेम करनेवाले हैं, वह अपना सर्वस्वदान करता है। इस प्रकार वह इन्द्र को भी जीत लेता है।

सोमदेव भट्ट

इन्होंने "कथासरित्सागर" नाम की एक पुस्तक लिखी है। यह कथासरित्सागर गुणाढ्य की वृहत्कथा के आधार

पर लिखा गया है। गुणाढ्य की बृहत्कथा पैशाची भाषा में लिखी गयी थी और वह सात लक्ष श्लोकों में समाप्त थी। उसका पढ़ना और समझना कठिन था इसलिए सोमदेव ने संस्कृत भाषा में कथासरित्सागर बनाया। अनुष्टुप छन्द में यह ग्रन्थ लिखा गया है, बड़ा है, यह कथा-ग्रन्थ है, काव्य के लक्षण इसमें नहीं मिलते। अतएव संस्कृत के कवियों की श्रेणी में इनका कोई ऊंचा स्थान नहीं है।

ये कश्मीर के निवासी थे और कश्मीर के राजा अनन्त देव के दरबार में रहते थे, अनन्तदेव की रानी का नाम सूर्यवती था और सूर्यवती की प्रसन्नता के लिए ही इन्होंने कथासरित्सागर का निर्माण किया है। राजतरङ्गिणी से मालूम होता है कि ९५५ शक के पश्चात् अनन्तदेव कश्मीर का राजा हुआ अतएव सोमदेव का भी यही समय मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इनके कुछ श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

उन्मुक्तमानकलहा रमध्वं दयितान्विता
इतीव मधुरालापा कोकिला जगदुर्जनान्।

मान कलह को छोड़कर प्रिय के साथ रमण करो, यही बात कोकिल मधुर शब्दों में लोगों से कह रही है।

विधुरप्यर्कति चन्दनमनलति मित्राण्यपि रिपवन्ति।
विधुरे वेधसि खिन्ने चेतसि विपरीतानि भवन्ति॥

भाग्य के विपरीत होने पर, हृदय के खिन्न होने पर चन्द्रमा सूर्य के समान हो जाता है, चन्दन अग्नि के समान हो जाता है और मित्र शत्रु के समान हो जाते हैं।

पूरा नदीनां पुष्पाणि वृक्षाणि शशिनः कलाः
क्षीणानि पुनरायान्ति यौवनानि न देहिनाम्।

नदी की धारा पुनः आती है, वृक्षों में फूल भी लगते ही रहते हैं, चन्द्रमा की कला क्षीण होकर पुनः बढ़ती है, पर शरीर धारियों की गयी जवानी नहीं लौटती ।

यत्कर्म वीजमुप्तं येन पुरा निश्चितं स तद् भुङ्क्ते ।
पूर्वकृतस्य हि शक्यो विधिनापि न कर्तुमन्यथाभावः ।

पूर्व जन्म में जिसने जैसा कर्म किया है अवश्य ही उसको उसका फल भोगना पड़ता है, पूर्व जन्म के कर्मों को ब्रह्मा भी उलट नहीं सकते ।

अतीवकर्कशा स्तब्धाः हिंस्त्रैर्जन्तुभिरावृता
दुराराधाश्च विषमा ईश्वराः पर्वता इव ।

धनी पर्वत के समान होते हैं, दोनों ही बड़े कठिन और स्तब्ध (अचल) होते हैं, दोनों ही हिंस्र प्राणियों (क्रूर मनुष्य या पशु) से युक्त होते हैं और इनकी आराधना भी बड़ी ही कठिन होती है ।

आगच्छन्सूचितो येन येनानीतो गृहं प्रति
प्रथमं सखि कः पूज्यः किं काकः किं क्रमेलकः ।

हे सखि, बतलाओ, पहले किसकी पूजा की जाय, कौए की या ऊंट की, क्योंकि कौए ने पहले बोलकर पति के आने की सूचना दी है, और ऊंट उन्हें ले आया है। अब सूचना देनेवाले की पूजा की जाय या घर पर ले आनेवाले की ।

हर्षदेव

ये राजा थे और कवि थे । नागानन्द, प्रियदर्शिका और रत्नावली ये ग्रन्थ इनके बनाये हुए हैं। बाण मयूर और

मातङ्ग दिवाकर इनके सभा—पण्डित थे यह बात राजशेखर के नीचे लिखे श्लोक से प्रमाणित होती है ।

> अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः
> श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो वाणमयूरयोः ॥

वाग्देवी का प्रभाव विचित्र है, मातङ्ग (चाण्डाल) दिवाकर श्रीहर्ष की सभा का सभ्य हुआ सो भी वाण और मयूर की बरावरी का ।

राजा श्रीहर्षदेव के विषय में कहा जाता है कि ये स्वयं कवि नहीं थे, किन्तु अन्य कवियों से ग्रन्थ बनवाकर इन्होंने अपने नाम से प्रकाशित किया है । इसके प्रमाण के विषय में एक श्लोक उद्धृत किया जाता है ।

> हेम्नोभारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनाम्,
> श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने वाणाय कुलाद्य तत्
> या वाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
> स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाग् मन्ये परिम्लानताम् ।

अर्थात् राजा श्रीहर्ष ने जो वाण को सोने के सौ भार दिये अथवा मतवाले हाथियों का दल दिया वह आज कहां है, पर वाण ने सुन्दर उक्तियों से श्रीहर्ष का कीर्तिगान किया है वह तो प्रलय तक भी म्लान नहीं होगा ।

एक और श्लोक है जो इस बात के प्रमाण में उपस्थित किया जाता है, वह श्लोक यह है ।

> हालेनोत्तमपूजया कविवृषा श्रीपालितो लालितः
> ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना
> श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय बाणीफलम्,
> तद्वत् सत्क्रिययाभिनन्द च मपि श्रीहारवर्षोऽग्रहीत् ।

इस श्लोक में भी गद्यकवि बाण को श्रीहर्ष के द्वारा कविता का फल प्राप्त होने का उल्लेख है। इन श्लोकों के आधार पर श्रीहर्ष पर यह अभियोग लगाया जाता है कि उन्होंने कवियों द्वारा ग्रन्थ बनवाकर उनका प्रचार अपने नाम से किया, पर जिन प्रमाणों के आधार पर यह अभियोग लगाया जाता है, वे प्रमाण इतने पुष्ट नहीं हैं, जिनसे इस अभियोग की पुष्टि हो। ऊपर लिखे श्लोकों में केवल यही बात लिखी गई है कि बाणभट्ट को राजा श्रीहर्षदेव ने अपने कीर्ति-गान के उपलक्ष में पारितोषिक दिये बात ठीक है। बाण-भट्ट ने श्रीहर्षचरित नामक गद्य काव्य बनाया है जिसमें श्रीहर्ष का गुणगान है और उसीके उपलक्ष में उनको पारि-तोषिक भी मिला।

डा० व्युलर ने राजा श्रीहर्षदेव को बाण और मयूर का आश्रयदाता लिखा है। इनकी रत्नावली नाटिका का एक श्लोक—

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवम्
पश्यन् कोपविपाण्डुरद्युति मुखं तस्याः करिष्याम्यहम्।

आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक नामक ग्रन्थ में उद्धृत किया है। इससे ये आनन्दवर्धन से पहले के सिद्ध होते हैं। ६०८ से ६४० के बीच इनका राज्यकाल है। हुएन-संग और यूरोपियन मिशनरी इनसे मिलने आये थे। दक्षिण-प्रान्त की इन्होंने यात्रा की थी और द्वितीय पुलकेशी को जीता था।

कुछ लोग कहते हैं कि धावक नाम के कवि से इन्होंने रत्नावली आदि ग्रन्थ बनवाये थे। पर यह कहना नितान्त अशुद्ध है,क्योंकि धावक कालिदास से भी प्राचीन हैं। कालिदास ने अपने मालाविकाग्निमित्र नाटक में धावक कवि का नाम लिया है। ऐसी दशा में धावक का श्रीहर्ष के लिए ग्रन्थ बनाना कैसे सम्भव हो सकता है?

अशठमलोलमजिह्मं त्यागिनमनुरागिणं विशेषज्ञम् ।
यदि नाश्रयति नरं श्रीः श्रीरेवहि वञ्चिता तत्र ॥१॥

जो शठ नहीं, चञ्चल नहीं, कुटिल नहीं, जो दाता है, अनुरागी है और विशेषज्ञ है, उस मनुष्य का यदि लक्ष्मी आश्रय न करें, तो समझना चाहिए कि यह लक्ष्मी का ही दुर्भाग्य है।

विधायापूर्वपूर्णेन्दुं यस्यामुखमभूद्ध्रुवम् ।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ॥२॥

ब्रह्मा इस नायिका का मुख अपूर्व पूर्णचन्द्र के समान बनाकर बड़ा ही दुःखी हुआ, क्योंकि उसे भय था कि कहीं वह कमल जिस पर मैं बैठा हूँ बन्द न हो जाय। चन्द्रमा के उदय से कमलों का बन्द होना संसार में प्रसिद्ध है।

प्रसीदेतिब्रूयामिदमसति कोपे न घटते
करिष्याम्येवं नो पुनरपि भवेदभ्युपगमः ।
न मे दोषोस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि मृषा
किमेतस्मिन्वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ॥३॥

भामिनी नायिका के प्रति कोई कह रहा है—यदि मैं कहूं कि तुम खुश हो जाओ तो यह अनुचित है क्योंकि तुमने तो कोप नहीं किया है। बिना कोप के वैसा कहना अच्छा नहीं।

यदि मैं कहूँ कि ऐसा कभी न करूँगा, तो यह दोष स्वीकार करना कहा जायगा। यदि मैं कहूँ कि मेरा दोष नहीं, तो तुम इसे झूठ समझोगी। प्रिये, मैं समझ नहीं रहा हूँ कि मुझे इस समय क्या कहना चाहिए।

यातोस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमतीवसरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥४॥

हे कमल नयने! मैं जारहा हूँ मेरी यह प्रतिज्ञा है कि तुम जब सोती रहोगी तभी मैं आऊँगा और तुम को उठाऊँगा। कमलिनी को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए ही सूर्य अपनी किरणों को अस्ताचल पर्वत पर निविष्ट करता है। यह सन्ध्या का वर्णन है।

उदयनगान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्निशानाथम्।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥५॥

यह प्राची दिशा अपने पीले मुख से इस बात की सूचना दे रही है कि चन्द्रमा उदय-पर्वत में छिपा हुआ है। जिस प्रकार स्त्रियां अपने पीले मुख के द्वारा हृदयस्थित प्रिय की सूचना देती हैं।

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा।
अहंत्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्ततरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणकिणकलङ्काङ्किततनुम् ॥६॥

इस चन्द्रमण्डल के मध्य में जो मेघखण्ड के समान मालूम पड़ता है, लोग उसे हरिण बतलाते हैं, पर मैं ऐसा नहीं समझता। मेरी समझ तो यह है कि तुम्हारे शत्रु की

विरहिणी स्त्रियों ने अपने कटाक्षरूपी अंगारों से चन्द्रमा को जलाया है और उसी व्रण का यह चिन्ह है।

अमुष्मै चौराय प्रतिनियतमृत्युप्रतिभिये
प्रभुः प्रीतः प्रादादुपरिनवपादद्वयकृते ।
सुवर्णानां कोटीर्दशदशनकोटिक्षतगिरी
न्करीन्द्रनप्यष्टौ मदमुदितगुञ्जन् मधुलिहः ॥७॥

इस चोर को--जिसके लिए मृत्यदण्ड नियत था—श्लोक के दो चरण बनाने के कारण प्रसन्न होकर महाराज ने दस कोटि सुवर्ण, आठ हाथी दिये। (ये श्लोक भोज प्रवन्ध में भोजदेव और चोर के कथोपकथन में उद्धृत हैं, पर सुभाषितावली में श्रीहर्षदेव और चोर के नाम से लिखे गये हैं)।

मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा तव दृश्यते ।
यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥८॥

मुग्धे, धनुष चलाने की तुम्हारी यह निपुणता अपूर्व है। जिसके गुणों (डोरी, या उत्तम गुण) से ही चित्त विध जाता है, सायकों से नहीं।

मुग्धे न पार्यसे दातुमदत्तं नोपतिष्ठति ।
अस्थास्नु यौवनमिदं कथमेतद्भविष्यति ॥९॥

मुग्धे, तुम देना नहीं चाहती, और बिना दिये प्राप्त नहीं होता। यह यौवन भी चञ्चल है, यह कैसे होगा।

प्रविशामि किमंगेषु भवतीं निगरामि किम ।
चिरेणागतलब्धासि न जाने करवाणि किम् ॥१०॥

क्या तुम्हारे अंगों में मैं प्रविष्ट होजाऊँ या तुमको निगल जाऊँ? बहुत दिनों पर तुम मिली हो, मालूम नहीं पड़ता कि मैं क्या करूँ।

उदयगिरिमूर्धगोयं त्वद्वदनापहृतकान्तिसर्वस्वः ।
फूत्कर्तुमिवोर्ध्वकरः स्थितः पुरस्तान्निशानाथः ॥११॥

तुम्हारे मुखमण्डल से कान्ति चुरा कर यह चन्द्रमा उदय गिरि के मस्तक पर वैठा है और आगे से फूत्कार करने के लिए ही मानो इसने अपने कर (किरणें या हाथ) ऊँचे किये हैं ।

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
घटयति घनं घण्टाश्लेषं न सान्द्रपयोधरा ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो ।
रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥१२॥

शङ्कित होने के कारण प्रेमपूर्वक सामने नहीं देखती, और न दृढ़ आलिङ्गन ही करती है, प्रयत्न पूर्वक विलमायी जाने पर भी वारवार "जाती हूँ, जाती हूँ" कहा करती है, फिर भी सङ्केत स्थान में आयी हुई कामिनी प्रसन्नता ही उत्पन्न करती है ।

दृष्टा दृष्टिमधोददाति कुरुते नाऽऽलापमाभाषिता ।
शय्यायां परिवृत्यतिष्ठति वलाद्‌आलिंगिता वेपते ॥
निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते ।
जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढ़ा वधूः ॥१३॥

देखने पर आंखें नीची कर लेती है वातें करने पर बोलती नहीं, शयन में करवट वदल कर सोती है, बल पूर्वक आलिंगन करने पर कांपने लगती है, जब उसकी सखियां घर से बाहर जाने लगती हैं, तो वह भी उनके साथ बाहर जाना चाहती है, इस प्रकार नयी वधू अपनी प्रतिकूलता से ही मेरी प्रसन्नता बढ़ा रही है ।

कौमुदी-कुञ्ज

(वक्रोक्ति)

कस्त्वं शूली मृगय भिषजं नीलकण्ठः प्रियेहं
केकामेकां वद पशुपतिर्नैव दृश्ये विषाणे।
मुग्धे स्थाणुः स चरति कथं जीवितेशः शिवाया
गच्छाटव्यामिति हतवचाः पातु वश्चन्द्रचूड़ः ॥१॥

शिव और पार्वती की उक्ति प्रत्युक्ति। शिव जी की बातों का विपरीत अर्थ समझ कर पार्वती जी उनको उत्तर देती हैं। पार्वती ने पूछा, तुम कौन हो? शिव ने कहा, मैं शूली हूँ (शूल धारण करनेवाला)। पार्वती ने शूलरोगवाला अर्थ समझ कर के कहा, फिर वैद्य को ढूँढिए। शिव ने कहा, प्रिये मैं नीलकण्ठ हूँ। पार्वती ने नीलकण्ठ का मयूर अर्थ समझकर कहा, एक केका (मोर की बोली) बोलिए। शिव ने कहा, मैं पशुपति हूँ, पार्वती ने पशुपति का बैल अर्थ समझकर कहा, सींग तो दिखायी नहीं पड़ती। शिव ने कहा मैं स्थाणु हूँ। पार्वती ने स्थाणु का अर्थ बिना डालपात का वृक्ष समझकर कहा, वह चलने कब से लगा। शिव ने कहा मैं शिवा (पार्वती) का पति हूँ। पार्वती ने शिवा का सियारिन अर्थ समझकर कहा, फिर जंगल में जाइए। इस उत्तर से शिव जी चुप हो गये। ऐसे शिव आपकी रक्षा करें।

कोयं द्वारि हरिः प्रयाह्युपवनं शाखामृगस्यात्र किं
कृष्णोहं दयिते बिभेमि सुतरां कृष्णादहं वानरात् ।
मुग्धेहं मधुसूदनः पिब लतां तामेव तन्वीमले
इत्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीतो हरिः पातु वः ॥२॥

विष्णु और लक्ष्मी का कथोपकथन। लक्ष्मी ने पूछा, द्वार पर कौन है ? विष्णु ने कहा, हरि। लक्ष्मी ने हरि का बानर अर्थ समझकर कहा, तब जंगल में जाइए, बानर की यहाँ क्या जरूरत है ? विष्णु ने कहा, प्रिये मैं तो कृष्ण हूँ। लक्ष्मी ने कहा, काले बानर से तो मैं बहुत डरती हूँ। विष्णु ने कहा मैं मधुसूदन हूं। लक्ष्मो ने मधुसूदन का अर्थ भ्रमर समझकर कहा, फिर उसी लता का जाकर पान करो। इस प्रकार लक्ष्मो की बातों से वे निरुत्तर और लज्जित होगये। लज्जित विष्णु आपकी रक्षा करें।

शठ वर्णयामि भवतो नारीणामुपरि भूयसी प्रीतिः ।
प्रलपसि किमसंबद्धं कस्यारिषु विद्यते प्रेम ॥३॥

शठ, नारियों के प्रति तुम्हारा बड़ा प्रेम है यह मैं कहता हूँ। शिव ने नारी का अर्थ न, अरि समझ अर्थात् अरियों पर तुम्हारा प्रेम नहीं है यह बात पार्वती कह रही है और यही समझकर उन्होंने कहा, क्या ऊटपटांग बकती हो, अरियों-शत्रुओं पर किसकी प्रीति होती है।

त्यज रुषमवेहि मानिनि मामीश्वरमर्चितं त्रिभुवनस्य ।
त्र्यम्बक यदीश्वरस्त्वं नग्नः किं धूलिधूसरितः ॥४॥

शिव ने कहा, मानिनि, क्रोध का त्याग करो, मेरी ओर देखो, मैं त्रिभुवन का स्वामी हूँ। त्रिभुवन मेरी पूजा करता है। पार्वती ने कहा, त्र्यम्बक, (तीन आँख वाले) यदि यही

बात है यदि तुम ईश्वर हो तो नंगे क्यों रहते हो और धूलि में सने हुए क्यों रहते हो ?

पण्डितवादस्तव यदि लोकेह' त्र्यम्बको विदित एषः ।
अम्बा ह्येकापि न ते प्रजल्पसि त्वं कुतस्तिस्त्रः ॥५॥

यदि तुम पण्डितों के समान बोलती हो, प्रकृति प्रत्यय के विभाग से अर्थ करती हो, तो समझ लो मैं त्र्यम्बक हूँ। पार्वती ने समझा कि त्र्यम्बक का अर्थ है तीन अम्बक (माता) वाला, और यही समझकर उन्होंने कहा, क्या बकते हो, तुम्हारी तो एक भी मा नहीं है, और तुम कहते हो तीन, यह कैसी बात !

किं मे दुरोदरेण प्रयातु यदि गणपतिर्न तेभिमतः ।
कः प्रद्वेष्टि विनायकमहिर्लोकः किं न जानासि ॥६॥

शिव ने कहा, मुझे दुरोदर (जूआ) से कोई मतलब नहीं। पार्वती ने दुरोदर का अर्थ समझा, बुरे पेटवाला अर्थात् गणेश और यही समझकर उन्होंने कहा, गणपति पसन्द न हो, तो यह यहां से चला जाय। शिव ने कहा, अजी, विनायक (गणेश) से कौन द्वेष करता है ? पार्वती ने विनायक का अर्थ समझा गरुड़ और उन्होंने कहा, गरुड़ से द्वेष करनेवाले सर्प हैं, क्या यह भी मालूम नहीं है ?

चन्द्रग्रहणेन विना नास्मि रमे किं प्रवर्तयस्येवम् !
देव्यै यदि रुचितमिदं नन्दिन्नाहूयतां राहुः ॥७॥

शिव और पार्वती जूआ खेल रहे थे। शिवने चन्द्रमा को बाजी पर रखा, पार्वती जीत गयीं। शिवने कहा, फिर खेलो। तब पार्वती ने कहा, बिना चन्द्रमा को लिए मैं न खेलूंगी,

तुम बारबार क्यों कहते हो। शिवने चन्द्रग्रहण का अर्थ समझा चन्द्रमा पर राहु का ग्रहण और उन्होंने कहा, नन्दी, यदि देवीजी की यही इच्छा तो राहु को बुलाओ।

अङ्गुल्या कः कपाटे प्रहरति कुटिलो माधवः किं वसन्तो
नो चक्री किं कुलालो नहि धरणिधरः किं फणीन्द्रो द्विजिह्वः।
मुग्धे घोराहिमाथी किमुत खगपतिर्नो हरिः किं कपीन्द्रः
इत्थं लक्ष्म्या कृतोसौ प्रतिहतवचनः पातु लक्ष्मीधवो.वः ॥८॥

राधाकृष्ण संवाद। राधा ने कहा, कौन कुटिल अंगुलियों से किवाड़ खटखटा रहा है? कृष्ण ने कहा। माधव, राधाने पूछा, क्या वसन्त? कृष्ण ने कहा, नहीं, चक्री (चक्र धारण करनेवाला)। राधा ने कुम्हार अर्थ समझकर पूछा, क्या कुम्हार? कृष्ण ने कहा, नहीं, धरणिधर? राधा ने धरणिधर का अर्थ सर्प समझा और उन्होंने कहा, क्या दो जीभवाला सर्प? कृष्ण ने कहा, नहीं भयानक सर्प को मथन करनेवाला। तो क्या गरुड़ हो? कृष्ण ने कहा नहीं भाई, हरि। राधा ने कहा, बानर? इस उत्तर से कृष्ण चुप हो गये। वे आप लोगों की रक्षा करें।

कविकाव्यप्रशंसा

किं तेन काव्यमधुना प्लाविता रसनिर्झरैः।
जडात्मानोपि नो यस्य भवन्त्यङ्कुरितान्तराः ॥१॥

उस काव्यरूपी मधु से क्या लाभ, जिसके रस प्रवाह से प्लावित होने पर जड़ मनुष्यों के भी हृदय में अङ्कुर उत्पन्न न हो जाय।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ता विभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥२॥

समझदार मनुष्य मत्सर से भरे जाते हैं, वे दूसरे की प्रशंसा सुन नहीं सकते और धनी दर्प से चूर हो रहे हैं, अन्य मनुष्य अज्ञानी हैं, उनकी समझ नहीं है, ऐसी दशा में सुभाषित सूक्तियों को शरीर में ही पच जाना चाहिए, इनके उपयोग का कोई स्थान नहीं है ।

बहूनि नरशीर्षाणि लोमशानि बृहन्ति च ।
ग्रीवासु प्रतिबद्धानि किंचित्तेषु सकर्षणम् ॥३॥

बड़े बड़े और बालवाले अनेक मस्तक लोगों के गले से जड़े हुए हैं। पर उनमें थोड़े ही ऐसे हैं जिनमें आकर्षकता हो ।

ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥४॥

वे वन्दनीय हैं, वे महात्मा हैं और संसार में उन्हींका यश स्थिर है, एक तो वे जिन लोगों ने काव्य बनाये हैं और दूसरे वे जिनका वर्णन काव्यों में किया गया है ।

यास्यति सज्जनहस्तं रमयिष्यति तं भवेच्च निर्दोषा ।
उत्पादितयापि कविस्ताम्यति कथया दुहित्रेव ॥५॥

सज्जनों के हाथ में जायगी, उनको प्रसन्न करेगी, और निर्दोष साबित होगी, इसी प्रकार की चिन्ताओं से कविता करनेवाला कवि कन्या के पिता के समान सदा घुला करता है ।

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमुपयाति ।
दर्शयितव्यं तस्मान्मत्सरिमनसः प्रयत्नेन ॥६॥

दुर्जन अग्नि के समान हैं, उस अग्नि में काव्यरूपी सुवर्ण तपाया जाता है, जिससे वह विशुद्ध हो जाता है, उसकी मलिनता जाती रहती है, अतएव जिनका मन डाह से भरा हुआ है, उनको अपना काव्य अवश्य दिखाना चाहिए।

गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभङ्गं क्षतिं न चार्थस्य ।
रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च ॥७॥

कुकवि और वेश्यापति दोनों समान हैं, दोनों हीं इतने रसिक होते हैं कि कविता तथा कामिनी के अपशब्दों (अशुद्ध शब्द अथवा...) को कुछ नहीं समझते वृत्त (छन्द अथवा चरित्र) का नाश भी उनके सामने कोई वस्तु नहीं है। अर्थ (शब्दार्थ अथवा धन) के क्षय का भी उन्हें ध्यान नहीं रहता ।

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव
वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्त--
माभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ॥८॥

महाकवियों की वाणी में एक अद्भुत विशेषता मालूम होती है, शरीर के अतिरिक्त स्त्रियों में जो एक लावण्य नाम की वस्तु दीख पड़ती है, उसी प्रकार महाकवियों की कविता में भी।

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं
स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम् ।
वदद्भिरङ्गैः कृतरोमविक्रियै--
र्जनस्य तूष्णींभवतोयमञ्जलिः ॥९॥

शब्दों से प्रकट होनेवाला अभिप्राय—जो केवल कोमल पदों में स्फुरित होता है उस अभिप्राय को शरीर के रोमांच के द्वारा जो कहते हैं पर शब्द के द्वारा नहीं, मुंह से एक शब्द तक नहीं निकालते ऐसों को केवल हाथ ही जोड़ना चाहिए।

चेतः प्रसादजननं विबुधोत्तमाना-
मानन्दि सर्वरसयुक्तमतिप्रसन्नम् ।
काव्यं खलस्य न करोति हृदि प्रतिष्ठां
पीयूषपानमिववक्त्रविवर्ति राहोः ॥१०॥

सब रसों से युक्त और प्रसादगुणपूर्ण काव्य उत्तम विद्वानों को प्रसन्न करता है तथा आनन्दित करता है। पर दुर्जनों के हृदय में उस काव्य को स्थान नहीं मिलता, जिस प्रकार अमृत राहु के मुँह ही तक जाता है और मुँह ही में घूमा करता है। शरीर नहीं इसलिए और जाय कहाँ।

हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधं
शुद्धा कीर्तिः स्फुरति भवतां नूनमेतत्प्रसादात् ।
तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सच्चरित्रं
रुष्टैर्नीतस्त्रिभुवनजयी हास्यमार्गं दशास्यः ॥११॥

हे राजागण, कवियों की प्रेमपूर्ण कविता के प्रति आप लोग अपना विरोध छोड़ दें। आप लोगों की यह उज्ज्वल कीर्ति जो फैल रही है, वह कवियों ही की कृपा है। देखिए प्रसन्न होकर कवियों ने एक छोटे रघुकुल के स्वामी का बड़ा भारी चरित्र निर्माण किया और क्रोध करके त्रिभुवन को जीतनेवाले रावण को तुच्छ बना दिया है।

परश्लोकान्स्तोकाननुदिवसमभ्यस्य ननु ये
चतुष्पादीं कुर्युर्बहव इह ते सन्ति कवयः ।
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृदः
सुहृद्या वैशद्यं दधति किल केषांचन गिरः ॥१२॥

दूसरों के कतिपय श्लोकों को कण्ठस्थ करके चार पाद के श्लोक बनानेवाले कवियों की कमी नहीं, वैसे कवि यहाँ बहुत हैं। निरन्तर निकलनेवाली समुद्र की लहरियों के समान हृदय का वश करनेवाली और स्वच्छ वाणी किसी किसी की ही होती है ।

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने वाणाय कुत्राद्य तत् ।
या वाणेन तु तस्य सूक्तिविसरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम् ॥१३॥

राजा श्रीहर्ष ने गुणी वाण कवि को सैकड़ों तोले सुवर्ण, मतवाले हाथियों का समूह दिया था, पर वे सब आज कहाँ हैं, उनका पता नहीं। पर वाणभट्ट ने अपनी वाणी के द्वारा उनकी कीर्तियां गुंफित की हैं वे तो प्रलय होने पर भी मलिन नहीं हो सकती। धनियों को अपने धन दान का गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनका धन कुछ ही दिनों के लिए है और कवियों की कविता चिरस्थायी है ।

वल्मीकप्रभवेण रामनृपतिर्व्यासेन धर्मात्मजो
व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृपः ।
भोजश्चित्तपविल्हणप्रभृतिभिः कर्णोपि विद्यापतेः
ख्यातिं यान्ति नरेश्वराः कविवरैः स्फारैर्न भेरीरवैः ॥१४॥

बाल्मीक कवि ने रामचन्द्र का वर्णन किया है, व्यासदेव ने युधिष्ठिर का वर्णन किया है, कालिदास कवि ने राजा विक्रमदेव का वर्णन किया है चित्तप और बिल्हण आदि कवियों ने भोजदेव का वर्णन किया है, विद्यापति ने राजा कर्णदेव का वर्णन किया है। इस प्रकार राजाओं की प्रसिद्धि कवियों के द्वारा होती है, नगारा पीटने से नहीं।

परिश्रमज्ञं जनमन्तरेण
मौनव्रतं बिभ्रति वाग्मिनोपि ।
वाचंयमाः सन्ति विना वसन्तं
पुंस्कोकिलाः पञ्चमचञ्चवोपि ॥१५॥

परिश्रम समझनेवाला मनुष्य यदि न मिले तो वक्ता भी मौन धारण कर लेते हैं। देखिए पंचमराग गानेवाली कोयल भी जब तक वसन्त नहीं आता तब तक चुप रहती हैं।

सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया ।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः ॥१६॥

सुभाषित से, गान से, स्त्रियों के हावभाव से जिसका मन चंचल नहीं होता, वह योगी है या पशु।

खिन्नं चापि सुभाषितेन रमते स्वीयः मनं सर्वदा
श्रुत्वान्यस्य सुभाषितं खलु मनः श्रोतुं पुनर्वाञ्छति ।
अज्ञाञ्ज्ञानवतोऽप्यनेन हि वशीकर्तुं समर्थो भवे-
त्कर्तव्योहि सुभाषितस्य मनुजैरावश्यकः संग्रहः ॥१७॥

मन दुःखी हो तो भी वह सुभाषित से प्रसन्न हो जाता है। दूसरों का सुभाषित सुन पुनः मन सुनना चाहता है, मूर्ख और पण्डित दोनों इसके द्वारा वश किये जा सकते हैं।

अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चि-
त्सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः ।
नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशो
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः ॥१८॥

शब्दों का अर्थ कुछ छिपा और प्रकाशित होने पर महा-राष्ट्र स्त्रियों के कुच के समान प्रशंसा पाता है । आन्ध्र स्त्रियों के स्तन के समान बिलकुल प्रकाशित रहना भी अच्छा नहीं और न गुर्जरी स्त्रियों के समान नितान्त छिपा ही हुआ ।

मिश्र ।

हेमकार सुधिये नमोस्तु ते
दुस्तरेषु बहुशः परीक्षितुम् ।
काञ्चनाभरणमश्मना समं
यत्त्वयैतदधिरोप्यते तुलाम् ॥१॥

हे स्वर्णकार, सोने के आभूषणों की परीक्षा करना कठिन था, इस कारण आपने उसे पत्थर के साथ तराजू पर रख दिया, आपकी इस बुद्धिमानी के लिए आपको नमस्कार ।

सुवर्णकार श्रवणोचितानि
वस्तूनि विक्रेतुमिहागतोसि ।
अद्यापि नाश्रावि यदत्र पल्ल्यां
पल्लीपतिर्नूनमविद्धकर्णः ॥२॥

हे सुवर्णकार, तुम कानों में पहनने के गहने लेकर यहाँ बेंचने आये हो। मालूम होता है कि तुमने आज तक यह बात नहीं सुनी है कि इस गाँव के ठाकुर के कान अभी तक नहीं छेदे गये हैं।

काकः स्वभावचपलः परिशुद्धवृत्ति-
र्लब्ध्वा बलिं स्वजनमाह्वयते परांश्च ।
चर्मास्थिमांसवति हस्तिकलेवरेपि
श्वा द्वेष्टि हन्ति च परान्कृपणस्वभावः ॥३॥

कौआ स्वभावतः चञ्चल होता है पर उसका स्वभाव अच्छा होता है, वह जब थोड़ी सी वलि पाता है तब अपनी जातिवालों तथा दूसरों को बुलाकर उसमें शामिल कर लेता है। पर कुत्ता यदि हाथि का शरीर भी पावे, जिसमें चमड़ा हड्डियां और काफी मांस हो, तो भी वह अपने भाई बन्धुओं को नहीं बुलाता, यदि वे आजाँय तो उनसे द्वेष करता है उन्हें मारता है। इसका कारण है स्वभाव की कृपणता।

गृहं श्मशानं गजचर्म चाम्बरं
विलेपनं भस्म वृषश्च वाहनम् ।
कुवेर हे वित्तपते न लज्जसे
प्रियस्य ते सख्युरियं दरिद्रता ॥४॥

कुवेर, तुम्हे लज्जित होना चाहिए कि तुम्हारे मित्र शिव जी ऐसी दरिद्रता भोग रहे हैं। श्मशान को उन्होंने अपना घर बनाया है, हाथी के चमड़े का वे वस्त्र धारण करते हैं, शरीर में भस्म लपेटते हैं और बैल की सवारी करते हैं। कितनी दयनीय दरिद्रता है और तुम धनपति कहे जाते हो।

आवद्धकृत्रिमसटाजटिलां सभित्ति-
रारोप्यते मृगपतेः पदवीं यदि श्वा।
मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य
नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥५॥

यदि कुत्ते के गले पर बनावटी सटा बनाकर लगा दिया जाय और वह सिंह के आसन पर बैठा दिया जाय तो मत-वाले हाथियों के मस्तक फाड़नेवाले सिंह के समान गर्जन कैसे कर सकता है ?

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यस्याश्रयेण तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
शाहोटनिम्बकुटजान्यपि चन्दनानि ॥६॥

उन सुवर्ण और चांदी के पर्वतों से क्या लाभ, क्योंकि इनके आश्रय में रहनेवाले वृक्ष, वृक्ष ही बने रहते हैं, उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। हम लोग तो चन्दन वृक्ष को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, जिसके आश्रय में रहनेवाले निम्ब कुटज आदि वृक्ष भी चन्दन हो जाते हैं।

शृङ्गार

या बिम्बौष्ठरुचिर्न विद्रुममणिः स्वप्नेऽपि तां दृष्टवा-
न्हासश्रीः सुदृशस्तयोभिरपि किं मुक्ताफलैः प्राप्यते।
तत्कान्तिः शतशोऽपि वह्निपतनैर्हेम्नः कुतः सेत्स्यति
त्यक्त्वा रत्नमयीं प्रयासि दयितां कस्मै धनायाध्वग ॥१॥

कोई धन के लिए विदेश जा रहा है, उससे कोई पूछता है कि किस धन के लिए तुम विदेश जाते हो। तुम्हारी स्त्री के ओठों की कान्ति, स्वप्न में भी मूगों को नहीं मिल सकती।

उसकी हँसी की शोभा तपस्या करने पर भी मुक्ताफल नहीं पा सकते, सोना चाहे हजारों बार आग में कूदे पर उसे वैसी शरीरकान्ति नहीं मिल सकती, फिर ऐसी रत्नमयी दयिता को घर में छोड़कर तुम किस धन के लिए जा रहे हो।

विरहिणी का प्रलाप

अद्यापि हि नृशंसस्य पितुस्ते दिवसो गतः ।
तमसा पिहितः पन्था एहि पुत्रक शेवहे ॥१॥

विरहिणी पुत्र को संबोधन करके कहती है, आज का भी दिन बीत गया और तुम्हारे निठुर पिता नहीं आये, मार्ग अन्धकार से छिप गये, अब क्या आवेंगे, आते भी होंगे तो कहीं ठहर गये होंगे, बेटा, अब चलो हम लोग सो रहें।

चक्षुः किं स्फुरसे मूढ त्वयि दीनेऽश्रुवाहिनी ।
यो मां त्यक्त्वा गतः सोऽद्य कथमेष्यति सस्फुरे ॥२॥

अरी मूर्ख आँख, तुम क्यों काँप रही है, जिस समय तुम दीन थी, आँसू बरसा रही थी, उस समय जो मुझे छोड़कर चला गया, वह क्या आज तुम्हारे फरकने से चला आवेगा।

स्वयमज्ञात दुःखोयद्दुनोतीति न विस्मयः ।
त्वं पुनः प्राप्तदाहो यद्दहसीति किमुच्यताम् ॥३॥

विरहिणी कामदेव को सम्बोधित करके कहती है—जिसने कभी दुःख नहीं उठाया है, वह यदि दुःख दे तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं होता। पर कामदेव तुम्हारा शरीर तो जलाया जा चुका है, फिर मुझे क्यों जलाते हो।

रथ्यारजोरुषित धूसरिताङ्गयष्टे
कच्चित्पितुः स्मरसि पुत्रक निर्घृणस्य ।

उक्त्वैवमङ्कगतमर्भकमायताक्ष्या
पान्थस्त्रिया प्ररुदितं करुणं दिनान्ते ॥४॥

सन्ध्या का समय था, पति विदेश था. सामने ही धूलि धाकर से लिपटा हुआ उसका पुत्र था, उसने कहा, क्यों बेटा तुम्हें अपने निठुर पिता की याद आती है ? गोदी में बैठे बालक से इस प्रकार कहकर सन्ध्या के समय पथिक की स्त्री फूटकर रो पड़ी ।

सखि स सुभगो मन्दस्नेहो ममेति न मे व्यथा
विधिविरचितं यस्मात्सर्वो जनः सुखमश्नुते ।
मम तु सततं सन्तापोयं जने विमुखेपि य-
त्क्षणमपि हतव्रीडं चेतो न याति विरागताम् ॥५॥

सखि, मेरे प्रिय मुझ पर कम प्रेम करते हैं इसका मुझे तनिक भी कष्ट नहीं है, क्योंकि सभी मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार सुख भोगा करते हैं, मुझे सबसे बड़ा कष्ट यदि कुछ है तो यही कि वे तो मुझसे इतने विमुख रहते हैं, पर मेरा निर्लज्ज मन उनकी ओर से तनिक भी विरक्त नहीं होता ।

तैलाक्तानलकान्कपोलपतितानुत्क्षिप्य कर्णान्तिकं
वस्त्रार्धेन विलम्बिना सरभसं प्रच्छाद्य पीनौ स्तनौ ।
बाला वायसमेवमाह रुदती दास्यामि यत्ते प्रियं
चूतात्केसरपादपं व्रज शनैर्यद्येति मे वल्लभः ॥६॥

तेल से चुपड़े केशों को जो उसके गाल पर आ गये थे - समेट कर कानों के पीछे उसने कर दिया, लटकते हुए आँचर से अपने मोटे स्तनों को उसने शीघ्रता पूर्वक छिपा लिया, फिर वह रोती हुई कौए से बोली, काक, तुमको जो प्रिय है वही तुमको मैं दूँगी, यदि तुम आम के पेड़ से धीरे से केशर के

पेड़ पर चले जाओ और इस प्रकार मेरे पति के आने की मुझे सूचना दो ।

प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैर्वाष्पैरजस्रं गतं
धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः ।
गन्तुं निश्चित चेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रस्थिता
गन्तव्ये सति जीवितप्रियसुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते ॥७॥

पति विदेश जा रहा है, नायिका अपने प्राणों से कह रही है, कंकणों ने प्रस्थान किया। अर्थात् विरहवेदना के कारण हाथ पतले हो गये और इससे कंकण गिर पड़े, प्रिय मित्र आँसू भी चले गये अर्थात् रोते रोते आँखें सूख गयीं। धैर्य ने एक क्षण भी ठहरना उचित नहीं समझा, वह मन के साथ ही चला गया, इस प्रकार जब प्रिय ने प्रस्थान करना निश्चित किया, तब सभी ने साथ ही प्रस्थान किया, प्राण, तुमको भी तो जाना ही है,फिर इनका साथ क्यों छोड़ते हो ।

निश्वासाः वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तं दिनं रुद्यते ।
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयाँस्तदोपेक्षितः
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः॥ ८॥

साँस मुँह को जला रही है, हृदय मानो पक रहा है, नींद नहीं आती, प्रिय का मुख भी कहीं दिखायी नहीं पड़ता, रात दिन रो रही है, शरीर सूख रहे हैं। उस समय प्रिय हमारे पैरों पर पड़ा था और हमने उपेक्षा की थी। सखियो, किस गुण के भरोसे तुम लोगों ने हमें प्रिय पर मान करने के लिए कहा है। अब तो वह आता नहीं, हमारी यह दशा है, अब उपाय ?

यावन्नो सखि गोचरं नयनयोरायाति तावद्द्रुतं
गत्वा ब्रूहि यथाद्य ते दयितया मानः समालम्बितः ।
दृष्टे धूर्त विचेष्टिते तु दयिते तस्मिन्नवश्यं मम
स्वेदाम्भः प्रतिरोधनिर्भरतनोः स्मेरं मुखं जायते ॥९॥

सखी ने नायिका से कहा था कि आज तुम अपने प्रिय के विषय में मान करो। उसी का उत्तर नायिका इस प्रकार देती है। जब तक वे (नायक) मेरी आंखों के सामने न आवें तभी तक जाकर तुम उनसे कहो कि तुम्हारी स्त्री ने आज मान किया है, क्योंकि जब मैं उनको सामने देख लूंगी, जब वे तरह तरह के मज़ाक करने लगेंगे उस समय मेरा समस्त शरीर पसीना पसीना हो जायगा और हँसी आ जायगी।

इदानीं तीव्राभिर्दहन इव भाभिः परिवृतो
ममाश्चर्यं सूर्यः किमु सखि रजन्यामुदयते,
अयं मुग्धे चन्द्रः, किमिति मयि तापं प्रकटय-
त्यनाथानां बाले किमिव विपरीतं न भवति ॥१०॥

सखि, मुझे बड़ा आश्चर्य है कि अग्नि के समान तीखी किरणों से युक्त यह सूर्य रात को उदित होने लगा है। सखी ने कहा, अरे भोली, यह सूर्य नहीं चन्द्रमा है। नायिका ने कहा, फिर यह मुझे तपाता क्यों है। सखी ने कहा बेटी, अनाथों के लिए सभी विपरीत ही होता है।

यात्रामङ्गलसंविधानरचनाव्यग्रे सखीनां जने,
बाष्पाम्भःविहितेक्षणे गुरुजने तद्वत्सुहृन्मण्डले ।
प्राणेशस्य महीक्षणार्पितदृशः कृच्छ्रादपि क्रामतः ।
किं व्रीडाहतया मया भुजलतापाशो न कण्ठेऽर्पितः ॥११॥

जिस समय सखियाँ यात्रा के लिए मङ्गल वस्तुओं को एकत्र कर रही थीं, बड़े लोगों को आँखें आँसू से ढँक गयी थीं, मित्रों की भी वही दशा थी, प्राणेश भी पृथिवी की ओर देख रहे थे, उस समय अभागिन लज्जा के कारण मैंने क्यों नहीं अपनी लतारूपी भुजाओं को उनके गले में डाल दिया।

दूतीप्रेषण ।

जीवामीति वियोगिनी यदि लिखेदत्रैव वृत्ताःकथाः
अद्य श्वोथ मरिष्यतीति मरणे कालात्ययः किंकृतः ।
आगन्तव्यमिहेति सम्प्रति सखे संभावना निष्फला
भ्रातः सम्प्रति याहि नास्ति लिखितं तद्ब्रूहि यत्तोक्षमम् ॥१॥

नायिका अपने विदेशी पति को सन्देश भेज रही है, पर क्या कहना चाहिए यही उसकी समझ में नहीं आता। मैं क्या कहूँ, यदि कहूँ कि मैं अभी तक जीती हूँ तो यह बात वियोगिनी के कहने योग्य नहीं, यदि वियोगिनी ऐसी बात कहे तो समझिए सब बात ही खतम हो चुकी। यदि यह कहूँ कि एक दो दिनों में मर जाऊँगी, तो मुझसे पूछा जा सकता है कि मरने में इतना विलम्ब क्यों किया। यदि कहूँ कि आप यहाँ आवें, तो यह बात झूठी ही होगी, इसकी तो संभावना भी नहीं है। फिर भाई अब आप जायँ, मैं क्या लिखूँ सो कुछ समझ में नहीं आता, जो आप उचित समझें वह कह दीजियेगा।

अपूजितैवास्ति गिरीन्द्रकन्या किं पक्षपातेन मनोभवस्य ।
यद्यस्ति दूती सरसोक्तिदक्षा दासः पतिः पादतले वधूनाम् ॥२॥

पार्वती की पूजा न भी की जाय तो कोई हानि नहीं, कामदेव पर अनुराग करने की भी आवश्यकता नहीं है। यदि दूती मधुर वचन बोलने में निपुण है तो पति स्त्रियों के चरणों के पास दास के समान हो सकता है।

वृथागाथाश्लोकैरलमलमलीकां मम रुजं ।
कदाचिद्ध धूर्तोऽसौ कविवचनमित्याकलयति,
इदं पार्श्वे तस्य प्रहिणु परिलग्नाञ्जनचय–
स्रवद्बाष्पोत्पीडस्थगितलिपि ताटङ्कयुगलम् ॥३॥

स्तुति के श्लोक बना कर भेजने से क्या लाभ? मेरे दुःख की चर्चा से भी कोई लाभ नहीं, सम्भव है वह धूर्त इन सब बातों को कविकल्पना समझे। उसके पास ये ही दोनों कर्णफूल भेज दो, जिस पर के अक्षर अञ्जनयुक्त आंसू से भीगने के कारण मिट गये हैं।

वाच्यं तस्मै सहचरि भवद्भूरिविश्लेषवन्हौ,
स्नेहैरिद्धे मम वपुरिदं कामहोता जुहोति ।
प्राणा तस्मै तदिहमुचितां दक्षिणां दातुमीहे,
तत्रादेशो भवतु भवतां यतत्वमेपामधीशः ॥४॥

सखि, उससे कहना कि आपकी वियोगरूपी अग्नि में उसके शरीर का कामरूपीहोता हवन करता है, वह अग्नि स्नेह के द्वारा खूब बढ़ायी गयी है। अब मैं उस हवन करने वाले को अपने प्राण दक्षिणा में देना चाहती हूँ, कृपा कर आप आज्ञा दें, क्योंकि आप इन सबके स्वामी हैं।

उल्लङ्घ्यापि सखीवचः समुचितामुल्लङ्घ्य लज्जामलं
भित्वाभीतिभरं निरस्य च निजं सौभाग्यगर्वं मनाक् ।
आज्ञां केवलमेव मन्मथगुरोरादाय नूनं मया
त्वं निःशेषविलासिवर्गगणनाचूडामणिः संभृतः ॥५॥

सखियों की बात न मानकर लज्जा का त्याग कर भय छोड़कर अपने सौभाग्य के गर्व को भी हटाकर केवल कामदेवगुरु की आज्ञा को ही मानकर मैंने तुमको सब विलासिनों का चूड़ामणि बनाया है ।

दूति त्वं तरुणी युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः
सन्देशः सरहस्य एव विपिने सङ्केतकावासकः
भूयो भूय इमे वसन्तमरुतश्चेतो हरन्त्यन्यतो
गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणे रक्षन्तु ते देवताः ॥६॥

दूति, तुम युवती हो, जिसके पास जाती हो वह भी युवा और चञ्चल है, दिशाएँ अन्धकार से छिप गयी है, सन्देशा भी गुप्त है, वन में जाना है जो सङ्केत-स्थान के समान है, यह वसन्त की हवा बारबार चित्त को खींच लेती है, अच्छा मङ्गल-समागम के लिए जाओ, तुम स्वयं चतुर हो, देवता तुम्हारी रक्षा करें ।

न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां
करुणां यथा च कुरुते स मयि ।
निपुणं तथैनमभिगम्य वदे-
रभिदूति काचिदिति सन्दिदिशे ॥७॥

किसी नायिका ने दूती से कहा, जिससे मेरी लघुता प्रकट न हो और वह मुझ पर दया भी करे, इस प्रकार चतुरता पूर्वक जाकर उससे कहना ।

विरही का प्रलाप ।

हारोपि नार्पितः कण्ठे संभोगस्पर्शभीरुणा ।
आवयोरन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः ॥

विरही कहता है पहले मैंने गले में एक हार भी नहीं रहने दिया था, क्योंकि उसके और मेरे शरीर के मध्य में थोड़ा भी अन्तर मुझे असह्य था। आज मेरे और उसके बीच में बड़े बड़े पर्वत नदियाँ और वृक्ष हैं, आज हम उससे बहुत दूर हैं।

प्राणानां च प्रियायाश्च मूढाः सादृश्यकारिणः ।
प्रिया कण्ठगता रत्यै प्राणा मरणहेतवः ॥

प्राण और प्रिया इन दोनों में जो समानता करते हैं वे मूर्ख हैं। उनको मालूम नहीं कि प्रिया जब कण्ठ में लगती है तब उससे आनन्द होता है और प्राण जब कण्ठ में आते हैं तब मृत्यु हो जाती है। फिर इनका सादृश्य कैसा ?

दूरस्था यस्य दयिता नवा पीनपयोधरा ।
तस्य संतापशमने न वापी न पयोधरा ॥

नवीन और पीन पयोधर (स्तन) वाली जिसकी दूर है उसके ताप शान्त करने के लिए न तो वापी (तालाब) और न पयोधर मेघ ही समर्थ होते हैं।

नपुंसकमिति ज्ञात्वा त्वां प्रति प्रेषितं मया ।
मनस्तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम् ॥

वैयाकरण पाणिनि ने मन शब्द को नपुंसक बतलाया है, मैंने इसे सच समझा और नपुंसक समझ कर ही मैंने

उसे प्रिया के पास भेज दिया, पर मन तो वहीं रम गया। हाय, पाणिनि ने मुझे धोखा दिया।

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानोलैः शिरोरुहैः।
पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥

वह तो रत्नमयी के समान मालूम पड़ती है, उसका मुँह चन्द्रकान्त है। चन्द्रमा के समान सुन्दर है, केश नीलमणि के समान अर्थात् काले हैं, उसके दोनों हाथ पद्मराग मणि के समान लाल हैं।

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरे।
चक्षुष्पथादतीता तु विषादप्यतिरिच्यते ॥

दयिता तभी तक अमृतमयी रहती है, जब तक आँखों के सामने है, आँखों के ओझल होने पर तो वह विष से भी बढ़कर हो जाती है।

मूढाः संयोगमिच्छन्ति वियोगस्तु मयेष्यते।
एकैव संगमे बाला वियोगे तन्मयं जगत् ॥

जो मूर्ख हैं वे दयिता के साथ संयोग चाहते हैं, मैं तो वियोग चाहता हूँ। क्योंकि संयोग के समय वह केवल एक ही रहती है, पर वियोग के समय समस्त जगत् उसके रूप का हो जाता है।

एकैव सङ्गमे बाला वियोगे तन्मयं जगत्।
कृतोपकार एवायं वियोगः केन निन्द्यते ॥

सङ्गम के समय केवल एक वही दयिता रहती है, पर वियोग के समय समस्त संसार तन्मय हो जाता है। इस प्रकार वियोग उपकार ही करता है, फिर उसकी निन्दा क्यों की जातो है ?

स मे समासमो मासो सा मे मासलमा समा ।
यो यातथा तया याति या यात्यायातया तया ॥

उसके साथ जो मेरा वर्ष बीतता है वह महीने के समान है और उसके बिना जो महीना बीतता है वह वर्ष के समान है।

यदि प्रियावियोगेपि रुद्यते दीनदीनकम् ।
तदिदं दग्धमरणमुपयोगं क यास्यति ॥

यदि प्रिया के वियोग के समय भी दीनतापूर्वक रोया जाय तो इस अभागे मरण का उपयोग कहाँ होगा। प्रिया के वियोग के स्वागत के लिए मृत्यु ही उपयुक्त है।

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे ।
मा सञ्चर मनः पान्थ तत्रास्ति स्मरतस्करः ॥

कामिनी का शरीर एक वन है, वहाँ स्तनरूपी दुर्गम पर्वत हैं। हे पथिक मन, तुम उस वन में विचरण मत करो, क्योंकि वहाँ कामदेव नाम का एक चोर है।

मनः शुक निवर्तस्व कामिनीगण्डदाड़िमात् ।
कामव्याधेन विन्यस्तं तत्रास्त्यलकजालकम् ॥

हे मनरूपी शुक, कामिनी के कपोलरूपी दाड़िम (अनार) से तुम हट जाओ, क्योंकि कामरूपी व्याध ने वहाँ केशों का जाल फैला रखा है।

त्यागोहि सर्वव्यसनानि हन्ती-
त्यलीकमेतद्भुवि संप्रतीतम् ।
जातानि सर्वव्यसनानि तस्या-
स्त्यागेन मे मुग्धविलोचनायाः ॥

लोग कहते हैं कि त्याग करने से सब दुःख दूर हो जाते हैं। पर मुझे मालूम होता है कि यह झूठी बात है। मैंने तो जिस दिन से उस सुन्दर नेत्रवाली का त्याग किया है उसी दिन से सभी दुःख मेरे सिर आपड़े हैं।

निद्रार्धमीलितदृशो मदमन्थरायाः
नाप्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि।
अद्यापि मे मृगदृशो मधुराणि तस्या-
स्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति॥

निद्रा के कारण जिसकी आँख झँपी हुई हैं, जो मद के कारण अलसायी हुई है, उस मृगनयनी के वे मधुर वचन—जिनके न तो कुछ अर्थ ही हैं और न जो निरर्थक ही हैं—आज भी हृदय में गूँज रहे हैं।

हर हर करुणापराङ्मुखोयं
गणयति तान्यपि वासराणि वेधाः।
कुवलयनयनास्तनान्तरेषु
क्षणमपि येषु न शेरते युवानः॥

शिव, शिव, यह ब्रह्मा बड़ा ही निर्दय है जो यह उन दिनों को भी आयु में शामिल करता है जिन दिनों में युवक एक क्षण के लिए भी कमलनेत्रा दयिता के स्तनों के मध्य में नहीं सोते।

केशैः केसरमालिकामपि चिरं या बिभ्रती खिद्यति
या गात्रेषु घनं विलेपनमपि न्यस्तं न सोढुं क्षमा।
दीपस्यापि शिखां न वासभवने शक्नोति या वीक्षितुं
सा तापं विरहानलस्य महतः सोढुं कथं शक्ष्यति॥

जो चोटी में लगायी केशर की माला से भी दुःखी होती है, जो शरीर पर गाढ़े विलेपन को भी धारण नहीं कर सकती, जो घर में दीपक की लौ देख नहीं सकती, वह विरहाग्नि के इस विकट ताप को कैसे सह सकेगी ?

सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः
सा पीनोन्नतिमत्पयोधरभरं धत्ते सखेदा वयम् ।
साक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं
दोषैरन्यसमाश्रयैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम् ॥

वह बाला है, पर हमारा मन कातर हो रहा है; वह स्त्री है पर हम घबड़ाये हुए हैं; वह मोटे और ऊंचे स्तनों का भार धारण करती है, पर हम दुःखी हो रहे हैं; उसके जँघे मोटे मोटे हैं, पर हम चल नहीं सकते। यह आश्चर्य की बात है कि दूसरों के दोषों से हमारी यह दयनीय दशा हो रही है।

जाने कोपपराङ्मुखी प्रियतमा स्वप्नेऽद्य दृष्टा मया
मा मां संस्पृश पाणिनेतिरुदती गन्तुं प्रवृत्ता ततः ।
नो यावत्परिरभ्य चाटुकशतैराश्वासयामि प्रियां
भ्रातस्तावदहं शठेन विधिना निद्रा दरिद्रःकृतः ॥

विरही अपने मित्र से अपने स्वप्न का वृत्तान्त कह रहा है। मालूम पड़ता है कि मैंने आज स्वप्न में अपनी प्रियतमा को देखा, वह मुझसे फिरी हुई थी। नहीं; मुझे न छुओ, ऐसा कहती हुई और रोती हुई वह वहाँ से जाने लगी। आलिङ्गन करके प्रिय वचनों के द्वारा जब तक मैं उसे प्रसन्न करूँ, भाई, तभी तक शठ विधाता ने मुझे निद्रा-दरिद्र कर दिया अर्थात् नींद खुल गयी। इस श्लोक बनाने के कारण इस कवि का नाम निद्रादरिद्र पड़ गया था।

दूतीवाक्य

मौने निषण्णा कृतभूरिरक्षा
खट्वाङ्गलीना दधती जटाश्च ।
सा त्वत्कृते ध्यानपरा वराकी
व्रतं महापाशुपतं प्रपन्ना ॥ १ ॥

दूती नायक से कहती है—उसने (नायिका ने) मौन धारण किया है, अनेक प्रकार से उसकी रक्षा की गयी है अथवा उसने राख लपेटी है, खाट पर उसके अँग पड़े हुए हैं, अथवा खटिया का पावा धारण किया है, उसने जटा धारण की है, सदा ध्यान में मग्न रहती है, इस प्रकार वह-विचारी तुम्हारे लिए पाशुपत व्रत कर रही है ।

खे खेदमन्दां विनिवेश्य दृष्टि-
मालोक्य शोभातिशयं घनानाम् ।
नेदीयसा सा मरणेन किञ्चि-
दाश्वासिता प्राणिति मास्म भैषीः ॥ २ ॥

दुःख से मन्ददृष्टि से आकाश की ओर उसने देखा, मेघों को अलौकिक शोभा उसे दिखायी पड़ी। इस कारण अब शीघ्र ही मरना है, इस आश्वास से वह अभी तक जीवित है, डरो मत।

किं पृष्टेन द्रुततरमितो गम्यतां सा प्रिया ते
दृष्टा भ्रातर्दिवसमखिलं सास्रमेकं मयैव ।
पान्थे पान्थे त्वमिति रभसोद्ग्रीवमालोकयन्ती
दृष्टे दृष्टे न भवति भवानित्यु दस्रं वलन्ती ॥ ३ ॥

पूछने से क्या फल, तुम शीघ्र ही यहाँ से जाओ, तुम्हारी उस प्रिया का समस्त दिन आँसू भरी आँखों से मैंने ही देखा है, प्रत्येक पथिक को वह तुम्हारे भ्रम से देखती थी, पर जब उसे मालूम होता था कि तुम नहीं हो, तब वह अपनी भींगी आँखें उधर से हटा लेती थी ।

भ्रातः पान्थ गृहं व्रज द्रुततरं दृष्टा मया ते प्रिया
त्वद्वार्ताश्रवणोत्सुका प्रतिपथं पान्थं समेत्यादरात् ।
वाष्पव्याकुलकण्ठगद्गदतया वक्तुं न शक्ता सती
सोच्छ्वासं स्फुटिताधरं च वलितग्रीवं चिरं रोदिति ॥ ४ ॥

भाई पथिक, शीघ्र तुम घर जाओ, मैंने तुम्हारी स्त्री को देखा है, वह हर रास्ते पर तुम्हारे समाचार सुनने के लिए प्रत्येक पथिक के पास जाती थी, पर उसकी आँखे भर आती थीं, गला रुक जाता था, वह कुछ बोल नहीं सकती थी, वह मुँह फेरकर बड़ी देर तक रोती रहती थी ।

माल्यं शल्यं गृहकमलिनीकूलमेतत्कुकूलं
वल्ली भल्ली हिमरसमयी वापिका तापिकापि ।
वातः पातः खरशरभरस्योन्मृणाली मृणाली
सारङ्गाक्ष्या रमणविरहे हन्त हारः प्रहारः ॥ ५ ॥

माला काटों के समान है, घर की पुष्करिणी का जल तुषाग्नि के समान है, लताएँ तीखे भाले के समान हैं, बर्फ की वापी भी ताप देनेवाली है, वायु तीखे बाणों के आघात के समान है । पति वियोग के समय नायिका के लिए हार भी प्रहार के समान है ।

तस्या महाविरहवन्हिशिखाकलाप—
तप्तः स्थितोऽपि हृदये सततं प्रियायाः ।

प्रालेयशीकरसमे हृदि सा कृपालो
वाला क्षणं वसति नैव खलु त्वदीये ॥ ६ ॥

तुम प्रिया के उस हृदय में सदा वर्तमान रहते हो, जिसमें विरहाग्नि की ज्वाला सदा धधकती रहती है। पर कृपालो, बर्फ के समान शीतल तुम्हारे हृदय में उस बाला को एक क्षण के लिए भी स्थान नहीं मिलता।

चित्तोत्कीर्णादपि विषधराद्व भीतिभाजो निशायां
किन्तु ब्रूमस्त्वदभिसरणे साहसं नाथ तस्याः ।
ध्वान्ते यान्त्या यदतिनिभृतं वालयात्मप्रकाश–
त्रासात् पाणिं पथि फणिफणारत्नरोधी व्यधायि ॥ ७ ॥

नाथ, जो सर्प की तसवीर देख कर भी डरती है उसीका तुम्हारे लिए अभिसरण करने में जो साहस देखा गया, वह मैं क्या कहूँ। अँधेरे में वह जारही थी, उसने साँप के सिरके रत्न का प्रकाश देखा और डर गयी। पर, शीघ्र ही उसने अपने हाथों से उस प्रकाश को छिपा लिया।

न हारं नाहारं कलयति विहारं विषमिव,
स्मरन्ती सा रामा सुभग भवतश्चागमदिनम् ।
परं क्षीणा दीना परमसुखहीना सुवदना,
कुहूपक्षग्लौवच्चपलनयनाङ्गीकृतगतिः ॥ ८ ॥

हार और आहार कुछ भी नहीं लेती, विहार को विष समझती है, सुभग तुम्हारे आने के दिन का सदा स्मरण किया करती है, इससे वह सुवदना क्षीण दीन और सुखहीन होगयी है। अमावास्या के चंद्रमा के समान उसकी दशा हो गई है।

सखी के प्रति प्रश्न ।

किं त्वं दूति गता गतास्मि सुभगे तस्यान्तिकं कामिनः
किं दृष्टः सुचिरं करोति किमसौ वीणाविनोदक्रियाम् ।

सौभाग्योदयगर्वितः किमवदन्नैवोत्तरं दत्तवा—
न्किं गर्वान्निहि वाष्पगद्गदतया धूर्तस्य मायाहि सा ॥ १ ॥

सखी और नायिका का कथोपकथन। दूति, क्या तुम उनके पास गयी थी? सखी ने कहा हाँ, मैं उस कामी के पास गई थी। नायिका ने पूछा, क्या तुम ने उन्हें देखा। उसने कहा, बड़ी देर तक मैं देखती रही। नायिका ने पूछा, वे क्या करते थे? उसने कहा--वीणा बजा कर मन बहला रहे थे। नायिका ने पूछा, अपने सौभाग्य पर गर्व करनेवाले उन्होंने क्या कहा? दूती ने कहा, नहीं, कुछ भी नहीं। उन्होंने कुछ उत्तर ही न दिया। नायिका ने पूछा--क्या अहङ्कार के कारण उत्तर नहीं दिया? उसने कहा, नहीं, उनका गला भर आया था। नायिका ने कहा यह उस धूर्त की चाल है।

मर्मणि स्पृशति भाषते प्रियं
प्रेम संस्मरति रन्ध्रमीक्षते।
ईदृशस्य बहुचित्रकारिणो
विक्रियापि न शठस्य लक्ष्यते ॥ २ ॥

अवाजे कसता है. और प्रिय बोलता है, प्रेम का स्मरण करता है, पर त्रुटियाँ ढूंढा करता है। इस प्रकार अनेक तरह की माया करनेवाले उस धूर्त का क्रोध भी मालूम नहीं पड़ता।

अलमलमघृणस्य तस्य नाम्ना
पुनरपि सैव कथा गतः स कालः।
कथय कथय वा तथापि दूति
प्रतिवचनं द्विषतोऽपि माननीयम् ॥ ३ ॥

उस पापी का नाम न लो । फिर वही बात, उसका समय बीत गया । अथवा दूति, कहो कहो, शत्रु का भी उत्तर सुन लेना चाहिए ।

कथय निपुणं कस्मिन् दृष्टः कथं स कियच्चिरं
किमपि लपितं किं तेनोक्तं कदा स इहैष्यति ।
इति बहुविधप्रेमालापप्रकल्पितविस्तराः
प्रियतमकथा स्वप्नेऽप्यर्थे प्रयान्ति न नेष्टताम् ॥ ४ ॥

ठीक ठीक कहो, कहाँ और कैसा देखा ? कितनी देर तक देखा ? वे क्या चाहते हैं ? उन्होंने क्या कहा है ? कब वे आवेंगे ? इस प्रकार के प्रियतम सबन्धी विविध प्रेमालप यदि स्वप्न में भी हों तो अच्छे ही हैं, इसमें कोई अनिष्ट नहीं ।

स्त्री

एकान्तसुन्दरविधानजडः क्व धाता
सर्वाङ्गकान्तिचतुरं क्व नु रूपमस्याः ।
मन्ये महेश्वरभयान्मकरध्वजेन
प्राणार्थिना युवतिरूपमिदं गृहीतम् ॥ १ ॥

ब्रह्मा सर्वाङ्ग सुन्दर वस्तुओं के निर्माण में अनभिज्ञ हैं और इसका रूप सर्वाङ्ग सुन्दर है । मालूम होता है, शिव के भय से अपनी रक्षा करने के लिए कामदेव ने ही स्त्री का रूप धारण किया है ।

किं तारुण्यतरोरियं रसभरोद्भिन्ना नवा मञ्जरी
लीलाप्रोच्छलितस्य किं लहरिका लावण्यवारांनिधेः ।

उद्गाढोरुकलिकावतां स्वसमयोपन्यासविस्रम्भिणः
किं साक्षादुपदेशयष्टिरथवा देवस्य शृङ्गारिणः ॥ २ ॥

क्या यह यौवनरूपी वृक्ष की निकली हुई सरस मञ्जरी है ? या लावण्य-समुद्र की लहरी है, अथवा अन्य उत्सुकता रखनेवाले लोगों को अपनी प्रतिज्ञा में विश्वास उत्पन्न करनेवाले कामदेव की उपदेश यष्टि तो नहीं है ।

निर्मातुं कुशलोऽप्यदृष्टविषये रूपे न जातु क्षमो
दृष्ट्वा वस्तु करोति तत्प्रतिकृतिं सन्दर्शनानुक्रमात् ।
तां सृष्ट्वाप्यसमानरूपचरितां नान्या कृता तादृशी,
धात्रा यत्सुकर तदेव न कृतं यद्दुष्करं तत्कृतम् ॥ ३ ॥

निपुण मनुष्य भी बिना देखी हुई वस्तु का चित्र नहीं खींच सकता । पहले मनुष्य कोई वस्तु देखता है फिर उसका चित्र उतारता है । ब्रह्मा ने उस अलौकिक रूप और शील वाली स्त्री का निर्माण किया, पर उसके बाद उन्होने दूसरी वैसी नहीं बनायी, यद्यपि उन्हें बनाने का साधन था । जो आसान था वही ब्रह्मा ने न किया और जो कठिन था वही किया ।

लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महान् स्वीकृतः
स्वच्छन्दस्य सुखं जनस्य वसतश्चिन्तानलो दीपितः ।
एषापि स्वयमेव तुल्यरमणाभावाद्वराकी हता
कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्व्यास्तनुं तन्वता ॥४ ॥

सौन्दर्य द्रव्य के खर्च की ओर ब्रह्मा ने ध्यान न दिया । स्वच्छन्दता पूर्वक सुख से रहनेवाले मनुष्यों के हृदय में चिन्ता की अग्नि उन्होंने जला दी, यह भी अपने योग्य पति के न मिलने के कारण दुःख उठा रही है । फिर ब्रह्मा ने उस स्त्री को बनाने का कौन लाभ सोचा था ?

स्त्री-प्रशंसा।

जये धरित्र्याः पुरमेव सारं
पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः।
तत्रापि शय्या शयने वरस्त्री
रत्नोज्वला राज्यसुखस्य सारम् ॥ १ ॥

पृथिवी जीतने का जो सार है वह नगरों पर अधिकार होना है, नगरों का सार घर और घर का सार वहाँ की थोड़ी सी भूमि है, उस भूमि का सार पलंग है, पलंग का सार उत्तम स्त्री है, जो रत्नों के समान उज्ज्वल हो, वह राज्य-सुख का सार है।

क्रतुं धनानां फलमग्र्यमाहुः
फलं क्रतूनामविवादि पुण्यम्।
पुण्यस्य पूर्णं फलमिन्द्रलोको
द्विरष्टवर्षा स्त्रिय एव नाकः ॥ २ ॥

धन का प्रधान फल यज्ञ है, यज्ञ का फल पुण्य है, पुण्य का फल इन्द्रलोक है और सोलह वर्ष की अवस्थावाली स्त्रियाँ ही इन्द्रलोक हैं।

स्त्री-रूप

केश

स्नेहं परित्यज्य निपीय धूमं
कान्ताकचा मोक्षपथं प्रपन्नाः।
नितम्बसङ्गात् पुनरेव बद्धाः
अहो दुरन्ता विषयेषु सक्तिः ॥ १ ॥

कान्ता के बालों ने स्नेह का त्याग करके और धूम पीकर मोक्ष पथ पाया। अर्थात् वे धोकर साफ़ किये गये, उनकी चिकनाहट दूर की गयी, पुनः उनको धूम्रपान कराया गया, अर्थात् सुगन्धित धूप से वे सुवासित किये गये, सांसारिक स्नेहत्याग तथा धूमपान पूर्वक तपस्या मुक्ति के भी साधन हैं। पर बाल मुक्त होकर नितम्ब पर आये अर्थात् चोटी खोल देने से बाल कमर पर लटकने लगे, तब वे पुनः बाँध दिये गये। कवि कहते हैं कि विषयों में अनुराग का फल अच्छा नहीं होता। यहाँ एक साधारण घटना उक्ति-वैचित्र्य के कारण कितनी सुन्दर हुई है।

अस्या मनोहराकारा कवरीभारतर्जिताः
लज्जयेव वने वासं चक्रुश्चमरबर्हिणः ॥ २ ॥

इसकी मनोहर चोटी से चमरी गौ और मोर लज्जित हो गये, अतएव लज्जा के कारण उन्होंने वन में रहना ही उचित समझा।

मुख

प्रसन्नसम्पादितचारुकान्ति-
जितोऽपि कान्तामुखशोभयाऽयम्,
धृष्टः शशाङ्कः पुनरभ्युदेति
लज्जा कुतोऽन्तर्मलिनाशयानाम् ॥ १ ॥

चन्द्रमा ने उज्ज्वलता के द्वारा अपनी कान्ति बढ़ायी, पर वह कान्ता के मुख की शोभा से हार गया। पर वह ढीठ है, बार बार उदय होता है। जिनका हृदय मलिन है उन्हें लज्जा थोड़े ही होती है।

भयमुज्झ जहासि किं स्वशोभां
दयितावक्त्रमिदं न पद्म चन्द्रः।
अयि नालिक किं दिवापि भाति
स्वयमप्यस्य किमस्ति वा कलङ्कः॥ २॥

कमल, भय छोड़ दो। अपनी शोभा क्यों छोड़ते हो? यह प्रिया का मुख है चन्द्रमा नहीं है। जानते हो क्या दिन में भी चन्द्रमा होता है, अथवा इसमें क्या कलङ्क है।

चित्रं यदेव गुणवृन्दविमर्ददक्षं
पुंसः सखे निखिलदोषवितानधाम,
मौग्ध्यं तदेव दयितावदने नितान्तं
यातं विभूषणमनेकगुणातिशायि॥ ३॥

यह आश्चर्य की बात है कि जो भोलापन सब गुणों को नष्ट भ्रष्ट कर देता है तथा जो अनेक दोषों का स्थान समझा जाता है, पर वही भोलापन नायिका के मुखमण्डल पर भूषण हो गया और वैसा भूषण जिसने अनेक गुणों को छिपा लिया।

वक्त्रं जेष्यामि चन्द्रः प्रतिदिवसमसौ कान्तिमभ्येति गुर्वीं
नेत्रच्छायां हरिष्याम्यहमिति विकसत्युत्पलं दीर्घिकायाम्,
कुर्वाणे ते तथापि श्रियमधिकतरां वीक्ष्य लोलेक्षणायां
वैलक्ष्यात् क्षीण एको विशति तदपरं मत्सरे नास्ति भद्रम्॥ ४॥

चन्द्रमा प्रतिदिन नायिकामुख को जीतने के लिए अधिक अधिक शोभा धारण करता है। नयनों की शोभा हरण करने की इच्छा से कमल प्रतिदिन सरोवर में विकसित होता है। ये ऐसा करके भी जब देखते हैं कि नायिका

के मुख की और नयनों की शोभा हमसे अधिक है, तब उनमें से एक चन्द्रमा तो लज्जा से क्षीण हो जाता है और दूसरा तालाब में डूब जाता है। जो दूसरों की उन्नति देखकर जलते हैं, उनका कल्याण होना कठिन है।

प्रियानेत्रमुखच्छायाहृतलावण्यशोभयोः ।
समानेदुःखयोरैक्यं युक्तं यन्मृगचन्द्रयोः ॥ ५ ॥

प्रिया के नेत्र से मृग पराजित हुआ है और मुख से चन्द्रमा। इस कारण इन दोनों का दुःख समान है, और समान दुःखवालों की मित्रता प्रसिद्ध ही है।

मध्यभाग

अहो प्रमादी भगवान्प्रजापतिः
कृशातिमध्या घटिता मृगेक्षणा ।
यदि प्रमादादनिलेन भज्यते
कथं पुनः शक्ष्यति कर्तुमीदृशम् ॥ १ ॥

ब्रह्मा बड़े प्रमादी हैं, वे बड़े ही असावधान हैं, क्योंकि उन्होंने उस मृगनयिनी नायिका का मध्यभाग बड़ा ही पतला बनाया है। यदि असावधानतावश हवा लगने के कारण वह टूट जाय तो वे पुनः वैसा कैसे बना सकते हैं।

मान

स्फुरसि बाहुलते किमनर्थकं
त्वमपि लोचन वाम भव स्थिरम् ।
तमहमागतमप्यपराधिनं
न परिरब्धुमलं न च वीक्षितुम् ॥ १ ॥

अरे वाहु, क्यों व्यर्थ फरक रहे हो। हे वामलोचन, तुम भी स्थिर होओ, फरकना बन्द करो। क्योंकि वह अपराधी यदि मेरे पास आवे भी, तो न तो मैं उसका आलिङ्गन ही कर सकती हूँ और न उससे बोल ही सकती हूँ।

तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं दृष्टिः कृता चान्यत—
स्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया।
हस्ताभ्यां विनिवारितः सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः
सख्यः किं करवाणि यान्ति शतधा यत्कञ्चुके सन्धयः ॥२॥

मैंने उसके मुँह की ओर से अपना मुंह हटा लिया, आँखें भी दूसरी ओर कर लीं, उसकी बातें सुनने के लिए व्याकुल अपने कानों को भी मैंने बन्द कर लिया, शरीर का रोमांच और कपोलों का पसीना भी मैंने हाथों से छिपा दिया। पर सखियो, बतलाओ मेरी चोली में जो सैकड़ों छेद हो रहे हैं, उनके लिए मैं क्या करूँ।

एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमाद्दूरत—
स्ताम्बूलानयनच्छलेन रभसाश्लेषोऽपि संविघ्नितः।
आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयत्त्यान्तिके
कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थी कृतः ॥३॥

प्रत्युत्थान के व्याज से एक स्थान पर बैठना उसने रोक दिया, पान लाने के बहाने आलिङ्गन में भी उसने विघ्न डाल दिया, नौकरों और दासियों को काम में लगाने के व्याज से उसने बातें भी न की। इस प्रकार उस चतुर ने प्रिय के प्रति आगत-स्वागत के बहाने अपना क्रोध सफल किया।

प्राणेशे सहसा चिरादुपगते रुद्धे मया लोचने
प्रोक्ते वागपि तत्प्रियार्पणपरा रुद्धा बलादाकुला।

मामुलङ्घ्य हठेन बाहुलतया प्रोञ्चिन्नरोमाञ्चया ।
मातः किं करवाण्यहं यदनयाऽभ्यासात् समालिङ्गितः ॥४॥

बहुत दिनों के बाद प्राणेश सहसा एक दिन आये, उस समय मैंने आँखें बन्द कर लीं, उन्होंने कुछ कहा, पर उनकी प्रसन्नता के लिए भी मैंने उत्तर न दिया, अपनी वाणी जबरदस्ती रोक ली। पर माता, मैं क्या करूँ, इन रोमाञ्चित बाहुओं ने पूर्वाभ्यास के कारण उनका आलिङ्गन कर लिया।

उक्तिप्रत्युक्ति ।

बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोस्मासु न मेपराध्यति भवान्सर्वेपराधा मयि ।
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥

नायक और नायिका का संवाद । बाले, नाथ ! मानिनि, क्रोध त्याग करो । क्रोध से मैंने क्या किया ? हमारे विषय में दुःख । नहीं, आपका कोई अपराध नहीं, सभी अपराध मेरे ही हैं । फिर रोती क्यों हो ? किसके आगे रोती हूँ ? क्यों मेरे ही सामने तो रो रही हो । मैं आपकी कौन हूँ ? दयिता । नहीं हूँ इसी से रोती हूँ ।

पुराभूदस्माकं प्रथममविभिन्ना तनुरियं
ततो नु त्वं प्रयानहमपि हताशा प्रियतमा ।
इदानीं त्वं नाथो वयमपि कलत्रं किमपरं
मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥

पहले हम दोनों का यह शरीर एक ही था कोई भेद न था, फिर आप प्रिय हुए और मैं प्रियतमा हुई । इस समय आप गृहपति हैं और मैं गृहिणी, इन वज्र के समान कठिन प्राणों का फल मैंने पाया, मैं जीती हूं इसी कारण यह अपमान सहना पड़ा है ।

> प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं संत्यज रुषं
> प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः ।
> निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
> न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥

मानिनी का प्रसादन । प्रसन्न होओ, क्रोध छोड़ो, मेरा शरीर सूख रहा है तुम अमृत के समान अपने बचनों का सिंचन करो, सब सुखों का मूल अपना मुँह मेरी ओर करो । तुम भोली हो, कालरूपी यह हिरन जब चला जाता है तब वह पुनः लौटकर नहीं आता ।

वसन्त

> अध्वन्यस्य वधूर्वियोगविधुरा भर्तुः स्मरन्ती यदि
> प्राणानुज्झति कस्य तत्खलु महत्संजायते पातकम् ।
> यावन्नो कृतमध्वगेन हृदये तावत्तरोमूर्धनि
> प्रोद्धुष्टं परिपुष्टया तव तवेत्युच्चैर्वचोनेकशः ॥

पथिक की स्त्री वियोग से दुःखी होकर पति का स्मरण करती हुई यदि प्राण त्याग करे तो इसका पाप किसको होगा ? पथिक ने हृदय में ही कहा "नहीं" अर्थात् इसका पाप

मुझपर नहीं होगा, उसी समय पेड़ के शिखर पर बैठी हुई कोयल ने कहा तव, तव, (तुम्हारे, तुम्हारे) ।

वसन्तप्रारम्भे चिरविरहखिन्ना सहचरी
यदि प्राणान्मुञ्चेद्वद तदघभागी भवति कः ।
वयो वा स्नेहो वा कुसुमविशिखो वेति विमृशँ-
स्तुहीति प्रव्यक्तं पिकनिकरझांकारमश्रृणोत् ॥

बहुत दिनों के विरह से खिन्न सहचरी यदि वसन्त के प्रारम्भ में प्राण छोड़ दें तो इस पाप का भागी कौन होगा । अवस्था, स्नेह या कामदेव, वह जब तक ऐसा विचार ही रहा था कि उसने (तुही) ऐसा कोयल का शब्द सुना ।

भोः पान्थाः स्वगृहान्न गच्छत मधौ सेवाक्षणो मुच्यतां
मानं मानिनि मुञ्च वल्लभजने कोपानुबन्धेन किम् ।
आयातः कुसुमाकरः क्षपयति प्राणान्वियोगातुरे-
ष्वित्येवं परपुष्टनादपटहो वक्तीव कामाज्ञया ॥

पथिक गण, इस वसन्त के समय में आप लोग अपने घर से न जायँ, नौकरी का प्रेम छोड़ दें । मानिनियो, तुम लोग भी अपने अपने प्रिय के प्रति मान करना छोड़ दो, क्रोध करने से क्या लाभ ? वसन्त आगया है, यह वियोगियों का शीघ्र ही प्राण संहार करता है, यही बात कामदेव की आज्ञा से कोयल कह रही है ।

असौ मरुच्चुम्बितचारुकेशरः
प्रसन्नताराधिपमण्डलाग्रणीः
वियुक्तरामातुरदृष्टिवीक्षितो
वसन्तकालो हनुमानिवागतः ।

यह वसन्त काल हनुमान् के समान आया, हनुमान् के शरीर के बाल वायु के द्वारा चुम्बित है। वसन्त काल में भी पुष्पों के केशर वायु द्वारा चुम्बित होते हैं। हनुमान प्रसन्न चन्द्र मण्डल के आगे चलते हैं, वसन्त काल में चन्द्रमा अधिक सुन्दर हो जाता है, हनुमान को वियोगिनी सीता ने देखा था, वसन्त काल भी वियोगिनी स्त्रियों के द्वारा देखा जाता है।

> दत्तो जनोऽसौ खलु विद्यमानमविद्यमानं तु न कोऽपि तावत्।
> वियोगिनां पुष्पनमन्नशोकः शोकप्रदोऽभूदति चित्रमेतत् ॥

जो रहता है वही मनुष्य देता है, जो नहीं रहता वह कोई किसी को नहीं देता। पर पुष्पभार से नवा हुआ अशाक वियोगियों के लिए शोकदायी हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है। अशोक के पास तो शोक नहीं था।

> जगौ विवाहावसरे वनस्थली-
> वसन्तयोः कामहुताशसाक्षिणि।
> पिकद्विजः प्रीतमना मनोरमं
> मुहुर्मुहुर्मङ्गलमन्त्रमादरात्।

वनस्थली और वसन्त का विवाह हो रहा था, कामदेव-रूपी अग्नि उसका साक्षी था, इसी उपलक्ष में पिकरूपी ब्राह्मण बड़े आदर से मङ्गल मन्त्र पढ़ता था।

ग्रीष्म

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं
विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः ।
अवाक्फणोऽजिह्मगतिः श्वसन्मुहुः
फणी मयूरस्य तले निषीदति ॥

ऊपर से सूर्य की किरणों से खूब तपाया गया है, मार्ग की गरम धूल से जल रहा है, ऐसी दशा में उसाँसे लेता हुआ सर्प सिर नीचा करके और अपनी टेढ़ी चाल छोड़कर मयूर के नीचे विश्राम करता है।

सर्वाशारुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्गबद्धक्रुधि
क्षामक्ष्मारुहि मन्दमुन्मधुलिहि स्वच्छन्दकुन्दद्रुहि ।
शुष्यन्स्रोतसि भूरितप्तरजसि ज्वालायमानार्णसि
ग्रीष्मे मासि ततार्कतेजसि कथं पान्थ व्रजञ्जीवसि ॥

जिस ग्रीष्मऋतु ने सब दिशाओं को रोक दिया है, पौधों को जला दिया है, मृगयूथ पर जिसने क्रोध किया है, वृक्षों को क्षीण बना दिया है, भ्रमरों के आनन्द को क्षीण बना दिया है, जो स्वच्छन्दता पूर्वक कुन्द पुष्प से द्वेष करता है, जिसने स्रोतों को सुखा दिया है, धूल को गर्म बना दिया है, जल को तप्त कर दिया है और जिसमें सूर्य की किरणें फैल रही हैं उस ऋतु में तुम यात्रा करके कैसे जी सकते हो।

दूरादेव कृतोऽञ्जलिर्न तु पुनः पानीयपानार्थिना
रोमाञ्चोपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्यादपाम् ।
रूपालोकनविस्मितेन चलितो मूर्धा न शान्त्या तृषा-
मक्षुण्णो विधिरध्वगेन घटितो वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥

पथिक ने दूर से ही हाथों की अंजलि वना ली पर यह पानी पीने के लिए नहीं। शरीर में रोमाञ्च भी हुआ पर प्रेम से, जल की शीतलता के कारण नहीं। रूप देखने के ही कारण मस्तक हिल गया, जल पीने की तृप्ति के कारण नहीं। प्याऊ पर जल पिलानेवाली को देखकर पथिक के ये सब आप ही आप हुए।

गन्तुं सत्वरसीहसे यदि गृहं व्यालोलवेणीलतां
द्रष्टुं व स्वकुटुम्बिनीमनुदिनं कान्तां समुत्कण्ठसे ।
तत्तृष्यन्नपि मुग्धमन्थरवलन्नेत्रान्तरुद्धाध्वगा-
मेतां दूरत एव हे परिहर भ्रातः प्रपापालिकाम् ॥

भाई, यदि तुम यहां से जल्दी जाना चाहते हो, यदि तुम विखरी वेणीवाली अपनी कान्ता को देखने के लिए उत्कण्ठित हो तो प्यासे होने पर भी उस प्रपापालिका (प्याऊ पर जल पिलानेवाली) को दूर से ही वचाकर जाना, जो सुन्दर और मन्द मन्द चलनेवाली आँखों के इशारे से पथिकों को रोकती है, उन्हें रास्ते ही में विलमा देती है।

वर्षा

किं गतेन यदि सा न जीवति
प्राणिति प्रियतमा तथापि किम् ।
इत्युदीक्ष्य नवमेघमालिकां
न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥

वर्षा ऋतु में आकाश में मेघमाला को देख पथिक उत्कण्ठित होता है। यदि जाने पर प्रियतमा जीवित न मिले तो

मेरा जाना निरर्थक है, यदि जीवित मिले तौ भी निरर्थक है; क्योंकि इस समय तक मेरे वियोग में उसका जीवित रहना प्रेमाभाव बतलाता है, इसी प्रकार विचार करके पथिक मेघों को देखकर भी घर नहीं जाता ।

हतमित्रवला विशुद्धयो
जगतः पङ्कविधानहेतवः ।
अवलम्बितनीचवृत्तयः
समतामापुरसद्भिरम्बुदाः ॥

मेघों ने दुर्जनों की बराबरी की। ये मित्र (सूर्य) के बल को नष्ट करते हैं, संसार में कीचड़ करते हैं । नीचवृत्ति धारण करते हैं । इस कारण मेघों ने नीचों की बराबरी की । दुर्जन भी मित्र (बन्धु) के बल को नष्ट करने की कोशिश करता है ।

ग्रामेस्मिन्पथिकाय पान्थ वसतिर्नैवंधुना दीयते
रात्रावत्र विहारमण्डपतले पान्थः प्रसुप्तो युवा ।
तेनोद्गगीय खलेन गर्जति घने स्मृत्वा प्रियां तत्कृतं
येनाद्यापि करङ्कदण्डपतनाशङ्की जनस्तिष्ठति ॥

पान्थ, इस गाँव में आजकल पथिकों को रहने का स्थान नहीं दिया जाता; क्योंकि कल रात को यहाँ मठ में एक युवा पथिक सोया हुआ था। पुनः मेघों का गर्जन सुनकर अपनी प्रिया का स्मरण करके उसने गाया और पुनः उसने जो किया उसका स्मरण करके यहां वाले आज भी भय-भीत हैं ।

श्रुत्वा बालमृगीविलोलनयना शब्दं घनानां पुरा
भीत्या वक्षसि संस्थितापि निविडं भूयः समालिङ्गति ।

या वक्रादपहृत्य रोपितवती कण्ठे ममैवाननं
सा द्रक्ष्यत्यधुना कथं नु विरहे बाला पयोदावलीम् ॥

हरिण के बच्चे के समान चञ्चल आँखोंवाली वह पहले मेघों का शब्द सुनकर डर गयी और मेरे वक्षस्थल पर स्थित होने पर भी भय से उसने और दृढ़ आलिङ्गन किया और मेरे गले पर उसने अपना मुख रख दिया, वही आज इस विरह दशा में मेघों की पंक्ति कैसे देखेगी ।

मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः ।
एकां घातयितुं वियोगविधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं
प्रावृट्काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥

मेघों से आकाश भर गया, नये जल से पृथिवी भर गयी, बिजली से दिशाएँ व्याप्त हो गयीं । धारा से गगन, कुटज पुष्प से वन, प्रवाह से नदियाँ व्याप्त हो गयीं । यह सब आड-म्बर केवल एक वियोगिनी दीन बिचारी स्त्री को मारने के लिए अभागे वर्षा-काल ने किया है, पर इन सबकी ज़रूरत क्या थी ।

भद्रास ग्रामके त्वं वससि परिचयस्तेऽस्ति जानासि वार्ता–
मस्मिन्नध्वन्यजाया जलधररसितोत्का न काचिद्विपन्ना ।
इत्थं पान्थः प्रवासावधिदिनविगमापायशङ्की प्रियायाः
पृच्छन्वृत्तान्तमारात्स्थितनिजभवनोऽप्याकुलो न प्रयाति ॥

भद्र, तुम क्या इस गाँव में रहते हो ? तुम इस गाँव की बातें जानते हो ? क्या तुम जानते हो कि इस गाँव में एक पथिक की स्त्री मेघ गर्जन से उत्कण्ठित होकर मर गयी है ? इस प्रकार प्रवास से लौटने की अवधि के समाप्त हो जाने से

वह अपनी प्रिया के अमङ्गल का सन्देह करता था। लोगों से पूछता था और अपने घर के पास ही था पर वह घर नहीं जा सकता था।

> रटतु जलधरः पतन्तु धाराः
> स्फुरतु तडिन्मरुतोपि वान्तु शीताः ।
> इयमुरसि महौषधीव कान्ता
> सकलभयप्रतिघातिनी स्थिता मे ॥

मेघ गर्जे, पानी बरसे, बिजली चमके, शीतल वायु बहे, सब प्रकार के भयों को दूर करनेवाली यह महौषधि के समान कान्ता मेरे वक्षस्थल पर वर्तमान है।

शरद्

> नीतोस्मि येन महतीं सलिलेन वृद्धिं
> संयोजितश्च सततं गुरुणा फलेन ।
> तच्छोष्यते दिनकृतेत्यतिचिन्तयेव
> शोकानतं कलमशालिवनं विपाण्डु ॥

जिस जल ने मुझे बढ़ाया, जिसने बड़े फल से मेरा सबन्ध कराया, उसको ही सूर्य सोख रहा है। मानो इसी चिन्ता के कारण धान पीले पड़ गये और शोक से नव गये।

> अथ प्रसन्नेन्दुमुखी सिताम्बरा,
> समाययावुत्पलपत्र लोचना,
> सपङ्कजश्रीरिव गां निषेवितुं
> सहंसवालव्यजना शरद्वधूः ॥

यह शरद् ऋतुरूपी वधू आयी, इसका मुख प्रसन्न है, वस्त्र श्वेत हैं, कमल इसके नेत्र हैं, हंस पंखे के समान हैं, उन्हींको लेकर यह पृथिवी की सेवा के लिए आयी है ।

क्वचित्सस्यै राढ्या क्वचनविकचैर्नीरजवनैः
क्वचित्स्वच्छैस्तोयैः क्वचिदपि रुतैः सारसकृतैः ।
क्वचिद्व्योमाभोगैः सुभगशशभृद्बिम्बधवलै-
रहो चेतः पुंसां हरति बहुरूपा शरदियम् ॥

कहीं धान लहलहा रहे हैं, कहीं कमल खिले हुए हैं, कहीं स्वच्छ जल है, कहीं सारस बोल रहे हैं, कहीं चन्द्र बिम्ब के समान स्वच्छ आकाश की शोभा दीख पड़ती है, इस प्रकार अनेक रूप धारण करनेवाली यह शरत् पुरुषों का चित्त हरण करती है ।

हेमन्त

नग्नाः सदा शीतसहा जटाधरा
विमुच्य पर्णानि फलानि सांप्रतम् ।
सुखप्रदं माधवमाप्तुमुत्सुका-
स्तपः प्रवृत्ताः किमु सन्ति पादपाः ॥

वृक्ष मानो तपस्या कर रहे हैं, वे नंगे हैं, शीत सहन कर रहे हैं, जटा उन्होंने धारण की है, पत्ते और फलों को उन्होंने इस समय त्याग कर दिया है। मालूम होता है सुखदायी माधव (वसन्त) को पाने के लिए मानो वे तपस्या कर रहे हैं ।

हे हेमन्त स्मरिष्यामि याते त्वयि गुणद्वयम् ।
अयत्नशीतलं वारि निशाश्च सुरतक्षमाः ॥

हे हेमन्त, तुम्हारे चले जाने पर भी तुम्हारे दो गुण सदा स्मरण रहेंगे, एक तो विना प्रयत्न के ही शीतल जल और दूसरी सुरत के योग्य रात्रि ।

लघुनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां
नवयवसपलालस्रस्तरे सोपधाने ।
परिहरति सुगुप्तं हालिकद्वन्द्वमारात्
कुचकलशमहोष्मावद्धरेखस्तुषारः ॥

जौके खेत के कोने में फूसकी छोटी कुटिया है, नये पुआल का विछौना और तकिया है, वहीं किसान और उसकी स्त्री सुरक्षित है, इस जोड़े को शीत का कुछ भय नहीं है ।

हे पान्थ प्रियविप्रयोगहुतभुग्ज्वालानपिज्ञोऽसि किम्
किं वा नास्ति तवप्रिया गतघृणः किं वासि हीनोधिया,
येनास्यिन्नवकुङ्कुमारुणरुचिव्यासङ्गघर्मोचिते
कुन्दानन्दितमत्त षट्पदकुले काले गृहान्निर्गतः ॥

भाई, क्या प्रिया—वियोग की अग्नि की ज्वाला का तुम्हे ज्ञान नहीं है, अथवा तुम्हारे घर में प्रिया नहीं है, अथवा तुम निर्दय हो या बुद्धिहीन हो, जिससे इस समय जब कि सूर्य के घाम सेवन करने का अवसर है, और जिस समय कुन्दपुष्प में भ्रमर मग्न हो रहे हैं, तुम अपने घर से बाहर जा रहे हो ।

शिशिर

करचरणनासमादौ कर्णौ गृह्णाति रक्ततां गमयन् ।
शीतं गुरुकृतपीडं पश्चादङ्गानि कूर्म इव ॥

शीत पहले हाथ पैर नाक और कान को पकड़ता है, इनको लाल करता है, बड़ी पीडा देता है, पुनः समस्त अंग को कच्छप के समान सङ्कुचित करता है ।

केशानकुलयन् दृशौ मुकुलयन् वासो वलादाक्षिप-
न्नातन्वन् पुलकोद्गमं प्रकटयन्नावेगकम्पं गतेः
वारं वारमुदारसीत्कृतरवैर्दन्तच्छदं पीडयन्
प्रायः शैशिर एष सम्प्रति मरुत्कान्तासु कालायते ।

केशों को उलझा देता है, आँखें बन्द कर देता है, वस्त्र ज़बरदस्ती खींचता है, रोमाञ्च कराता है, गति को कम्पित कर देता है, बारबार ज़ोर से सीत्कार कराता है, ओष्ठों को पीड़ित करता है, प्रायः यह शिशिर का वायु स्त्रियों के प्रति काल का सा व्यवहार करता है ।

चन्द्रमा

यतेदच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा ।
अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्त तरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणकिणकलङ्काङ्किततनुम् ॥

चन्द्रमा के मध्य में मेघ के टुकड़े के समान जो दिखायी पड़ता है, उसे लोग शशक कहते हैं, पर मैं इसे ठीक नहीं

समझता। महाराज, इस विषय में मैं तो यह समझता हूँ कि विरहिणी तुम्हारी शत्रु स्त्रियों के जलते हुए कटाक्ष से चन्द्रमा के शरीर में यह घाव हो गया है।

अङ्कं केपि शशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे
सारङ्गं कतिचिच्च संजगदिरे भूमेश्च बिम्बं परे।
इन्दौ यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते
तन्मन्ये रविभीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमालक्ष्यते ॥

चन्द्रमा में जो काला चिन्ह है, उसे कोई चिन्ह समझते हैं, कोई उसे समुद्र का पंक बतलाते हैं, कुछ लोग उसे हरिण बतलाते हैं और कुछ लोगों का कहना है कि यह भूमि की छाया है। यह चन्द्रमा के मध्य में इन्द्रनीलमणि के टुकड़े के समान जो काला दिखायी पड़ता है, मेरी समझ से तो वह सूर्य के भय से छिपा हुआ अन्धकार मालूम पड़ता है।

पश्य चन्द्रमुखि चन्द्रमण्डलं
व्योममार्गसरसीसरोरुहम्।
यामिनीयुवतिकर्णकुण्डलं
मारमार्गणानिघर्षणोपलम् ॥

चन्द्रमुखी, चन्द्रमा को देखो, यह आकाश मार्ग के तालाब का कमल है, रात्रिरूपी युवती के कानों का कुण्डल है अथवा यह कामदेव के वाण तीखा करने के पत्थर का टुकड़ा है।

चाटु

अन्यतो नय मुहूर्तमानन
चन्द्र एष सरले कलामयः ।
स कदाचन कपोलयोर्मलं
संक्रमय्य समतां न नेष्यति ॥

थोड़ी देर तुम अपना मुँह उधर कर लो, नहीं तो कलाधारी यह चन्द्रमा कहीं अपना मल तुम्हारे कपोलों पर लगा कर तुम्हारे मुँह से समता न करने लग जाय।

शिखरिणि क नु नाम कियच्चिरं
किमभिधानमसावकरोत्तपः ।
तरुणि येन तवाधरपाटलं
दशति बिम्बफलं शुकशावकः ॥

इस शुकशावक ने किस पर्वत पर कितने दिनों तक और किस नाम की तपस्या की है, जिस कारण यह तुम्हारे ओष्ठ के समान लाल विम्ब फल चुग रहा है।

विसृज दयिते हासज्योत्स्नां निमीलतु पङ्कजं
विकिर नयने भ्रष्टच्छायं भवत्वसितोत्पलम्,
वद सुवदने लज्जामूका भवत्वपि कोकिला
परपरिभवो मानस्थाने न मानिनि सह्यते।

दयिते, हँसो, जिससे कमल वन्द हो जांय। तुम्हारी हंसी को चन्द्र प्रकाश समझ कर वे मुकुलित हो जाँय। आँखें फेरो, जिससे नीलकमल की शोभा नष्ट हो जाय, बोलो, जिससे कोयल मूक हो जाय, मानिनि, सम्मान के ध्यान से शत्रु का पराजय नहीं सहा जाता।

प्रसीद गतिरुज्झयतां व्रजतु राजहंसी सुखम्,
स्मितं च परिमुच्यतां स्फुरतु कुन्दपुष्पप्रभा ।
निमीलय विलोचने भवतु हारि कर्णोत्पलं
करस्थगितमाननं कुरु विभातु चन्द्रोदयः ॥

प्रसन्न होओ, अपनी गति बन्द करो जिससे राजहंसी, सुख पूर्वक चले, हंसना छोड़ दो जिससे कुन्दपुष्प की शोभा बढ़े। आंखे बन्द कर लो जिससे कान पर के कमल की शोभा दीख पड़े, मुंह हाथों से छिपा लो, जिससे चन्द्रमा प्रकाशित हो।

प्रिय आगमन

आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुद्वीक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां
तन्वङ्ग्या परितोषवाष्पतरलामासज्य दृष्टिं मुखे ।
दत्वा पीलुशमीकरीरकवलं स्वेनाञ्चलेनादरा-
दुन्मृष्टं करभस्य केसरसटा भारावलग्नं रजः ॥

प्रिय आये हैं, मारवाड़ की भूमि से आने की कठिनाई समझ कर सुन्दरी ने प्रसन्नता के आँसू के कारण चञ्चल आँखों से उस ऊँट का मुंह देखा, पीलु शमी करीर आदि की पत्तियों का कवल बना कर उसे दिया और अपने आँचल से उसके कन्धे पर की धूल साफ की।

आयाते दयिते मनोरथशतैर्नीते कथंचिद्दिने
वैदग्ध्यापगमाज्जड़े परिजने दीर्घां कथां कुर्वति ।
दग्धास्मीत्यभिधाय सत्वरपदं व्याधूय चीनांशुकं
तन्वङ्ग्या रतिलालसेन मनसा नीतः प्रदीपः शमम् ॥

प्रिय आये, अनेक प्रकार के मनोरथों से किसी किसी प्रकार दिन विताया, मूर्ख परिवार वालों ने लम्बी बातें छेड़ दीं, उसी समय 'मैं जल गयी" कहती हुई सुन्दरी उठी, उसने अपने कपड़े झाड़े, इस प्रकार प्रिय-समागम की इच्छा से उसने दीपक बुझा दिया ।

प्रभातवर्णन ।

चन्दनं स्तनतटेधरबिम्बे
यावकं घनतरं च सपत्न्याः ।
प्रातरीक्ष्य कुपितापि मृगाक्षी
सागसि प्रियतमे परितुष्टा ॥

सुन्दरी अपने अपराधी पति पर अप्रसन्न थी, क्योंकि वह उसके पास नहीं आया था, पर प्रातःकाल होने पर जब उसने अपनी सौत के स्तनों पर चन्दन, ओठों पर महावर ज्यों के त्यों देखे, तब वह प्रसन्न हो गयी, इससे उसने समझा कि मेरे यहाँ न आया तो सौत के यहाँ भी न गया ।

दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वच-
स्तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतस्तस्यातिमात्रं वधूः ।
कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्च्वाः पुटे
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ॥

रात को स्त्रीपुरुष ने जो बातें की वें घर के शुकने सुन ली थीं। प्रातःकाल होने पर वह सब के सामने वे बातें कहने लगा। स्त्री वहीं थी, वह लज्जित हो गयी, उसने

अपने कान के पद्मराग मणि को उतारा और अनार के बहाने उस शुक के मुख में देकर उसकी बोली बन्द कर दी।

विरलविरलीभूतास्तारा: कलाविव सज्जना
मन इव मुनेः सर्वत्रैव प्रसन्नमभून्नभः।
व्यपसरति च ध्वान्तं चित्तात्सतामिव दुर्जनो
विगलति निशा क्षिप्रं लक्ष्मीर्निरुद्यमिनामिव॥

कलियुग में जिस प्रकार सज्जन थोड़े रह जाते हैं, उसी प्रकार आकाश में तारा थोड़े रह गये, मुनि के मन के समान समस्त आकाश स्वच्छ हो गया, सज्जनों के चित्त से जिस प्रकार दुर्जन हट जाते हैं, उसी प्रकार अन्धकार हट गया है, और निरुद्योगियों की लक्ष्मी के समान रात्रि नष्ट हो गयी,

अभूत्प्राची पिङ्गा रसपतिरिव प्राश्य कनकं
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्य सदसि।
क्षणात्क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा
न दीपा राजन्ते द्रविणरहितानामिव गुणाः॥

पूर्व दिशा पीली हो गयी, जिस प्रकार सोना खाकर पारा पीला हो जाता है, चन्द्रमा की शोभा जाती रही, जिस प्रकार दिहातियों की सभा में पण्डित निष्प्रभ हो जाते हैं। क्षण ही में तारा क्षीण हो गये, जिस प्रकार अनुद्योगी राजा क्षीण हो जाते हैं, दीपक भी अच्छे नहीं लगते, जिस प्रकार दरिद्रों के गुण।

मिश्र

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाता-
ल्लोकेषु सप्तस्वपि तथ्यमेतत् ।
नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्यो
दुःखैकहेतुर्न च कश्चिदन्यः ॥

मैं सच कह रहा हूँ, पक्षपात से नहीं, सातो लोकों में यह बात सच है, स्त्रियों से बढ़कर न तो कोई मनोहर वस्तु है और न उनसे बढ़कर दुःख-हेतु ही कोई दूसरा है ।

एकाकिनी यदबला तरुणी तथाह-
मस्मद्गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशम् ।
कं याचसे तदिह वासमियं वराकी
श्वश्रूर्ममान्धबधिरा ननु मूढ़ पान्थ ॥

मैं अकेली अबला हूँ और युवती हूँ, मेरे घर के मालिक विदेश गये हुए हैं, फिर तुम ठहरने के लिए जगह किससे माँगते हो, जानते नहीं कि मेरी सास विचारी भी तो अन्धी और बहरी है ।

संसारेस्मिन्नसारे कुनृपतिभवनद्वारसेवाकलङ्क-
व्यासङ्गव्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संविदध्युः ।
यद्येताः प्रोद्यदिन्दुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोजनेत्राः
प्रेङ्खत्काञ्चीकलापाः स्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्यः ।

इस असार संसार में सज्जनों का मन बुरे राजाओं के द्वार की सेवा के कलङ्क लगने से अधीर हो जाता, यदि उदित चन्द्रमा के कान्तिसमूह धारण करनेवाली कमल

नयनी स्त्रियां न होतीं, वे स्त्रियाँ जिनकी करधनी हिलडोल रही है और स्तनभार के कारण जिनकी कमर झुकी हुई है।

> सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां
> लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
> भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथजुषो नीलपक्ष्माण एते
> यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति ॥

पुरुष तभी तक सन्मार्ग में रहता है, तभी तक उसका अपनी इन्द्रियों पर अधिकार रहता है, तभी तक वह लज्जा धारण करता है, तभी तक वह विनयी बना रहता है, जब तक लीलावतियों का भ्रू धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा गया नीले पंख वाला और धैर्य को नष्ट कर देने वाला दृष्टिबाण नहीं गिरता।

> अम्बा शेतेत्र वृद्धा परिणतवयसामग्रणीरत्र तातो
> निःशेषागारकर्मश्रमशिथिलतनुः कुम्भदासी तथाहं ।
> अस्मिन्पापा निकेते कतिपयदिवसप्रोषितप्राणनाथा
> पान्थायेत्थं तरुण्या कथितमवसथव्याहृतिव्याजपूर्वम् ॥

बूढ़ी माता यहाँ सोती है, बूढ़ों से भी बूढ़े पिता यहां सोते हैं, घर के सब काम काज करने के कारण शिथिल शरीर दासी यहाँ सोती है, मेरे प्राणनाथ भी कुछ दिनों से विदेश में चले गये हैं, पापिनी मैं ही यहाँ रहती हूँ। इस प्रकार युवती ने व्याज से पथिक को ठहरने का स्थान बतलाया।

> बहवः पङ्गवोपीह नराः शास्त्राण्यधीयते ।
> विरलो रिपुखड्गाग्रधारापातसहिष्णवः ॥

बहुत से लंगड़े भी शस्त्र—विद्या का अध्ययन करते हैं, पर वे विरल हैं जो शत्रुओं की तलवार सहते हैं।

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः ।
तथाप्याजौ रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं
क्रियासिद्धिः सत्वे वसति महतां नोपकरणे ॥

लङ्का जीतनी है, समुद्र को पैरों से पार करना है, रावण से शत्रुता है, युद्ध में सहायक बानर हैं। फिर भी राम ने युद्ध में सब राक्षसों को मारा। महान् मनुष्य अपने बल से कार्य सिद्ध करते हैं, सामग्रियों से नहीं।

घटे जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनं
वने वासः कन्दादिकमशनमेवंविध गुणः ।
अगस्त्यः पाथोधिं यदकृतकराम्भोजकुहरे
क्रियासिद्धिः सत्वे वसति महतां नोपकरणे ॥

घड़े से जन्म हुआ, मृग साथी रहे, भोजपत्र का वस्त्र रहा, वन में रहना पड़ा, कन्द फलमूल आदि का भोजन मिला,ऐसे अगस्त्य ने समुद्र को अंजलि में उठाकर पी लिया। महान् मनुष्य अपने बल से कार्य सिद्ध करते हैं, सामग्रियों से नहीं।

विपक्षः श्रीकण्ठो जड़पतिरमात्यः शशधरो
वसन्तः सामन्तः कुसुममिषवो लक्ष्यमबलाः ।
तथपि त्रैलोक्यं जयति मदनो देहरहितः
क्रियासिद्धिः सत्वे वसति महतां नोपकरणे ॥

महादेव शत्रु हैं, जडपति, 'सर्द या मूर्ख,' चन्द्रमा सलाहकार है, वसन्त अधीन राजा है, पुष्प वाण हैं, स्त्रियाँ लक्ष्य

हैं, फिर भी शरीर-रहित कामदेव समस्त त्रिलोक को जीत लेता है। इससे मालूम पड़ता है कि महान् मनुष्य अपने बल से कार्य सिद्ध करते हैं, सामग्रियों से नहीं।

क्षुद्राः सन्त्रासमेते विजहत हरयो भिन्नशक्रेभकुम्भा
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्तः ।
सौमित्रे तिष्ठ पात्रं त्वमपि नहि रुषां नन्वहं मेघनादः
किञ्चित्संरम्भलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि ॥

मेघनाद कहता है, अरे क्षुद्रो, क्यों तुम लोग डरते हो ? इन्द्र के हाथी के मस्तक तोड़नेवाले हमारे बाण तुम लोगों के शरीर पर गिरते लज्जित होते हैं। लक्ष्मण, तुम भी ठहरो, तुम भी हमारे क्रोध के पात्र नहीं हो, क्योंकि मैं मेघनाद हूँ, मैं उस राम को ढूँढ रहा हूँ जिसने थोड़ा क्रोध करके समुद्र को बाँधा है।

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
चन्द्रं निपीड्य किमुतामृतमाहरामि ।
उच्चण्डचण्डकिरणं किमु वारयामि
कीनाशलोकमथवा ननु चूर्णयामि ॥

हनुमान कहते हैं, पाताल से अमृत ले आऊँ, चन्द्रमा को निचोड़ कर अमृत ले आऊँ, प्रखर किरण सूर्य को रोकूँ अथवा यमराज की नगरी को तोड़ फोड़ दूँ।

काकुत्स्थस्य दशाननो न कृतवान्दारापहारं यदि
क्वाम्भोधिः क्व च सेतुबन्धघटना कीर्त्तिर्यलङ्काजयः ।
पार्थस्यापि पराभवं यदि रिपुर्नाधात्क्व तादृक् तपः
नीयन्ते रिपुभिः समुन्नतिपदं प्रायः परं मानिनः ॥

रामचन्द्र की स्त्री का हरण यदि रावण न करता तो क्या समुद्र के पास वे जाते, या सेतु बाँधते, अथवा समुद्र पार जाकर लंका जीतते ? अर्जुन को भी शत्रु यदि तंग न करता तो क्या वे वैसी तपस्या करते ? बात यह है कि शत्रु ही मानियों का उत्कर्ष बढ़ाते हैं।

वह्निं शीतयितुं हिमं ज्वलयितुं वातं निरोद्धुं पयो
मूर्तं व्योम विधातुमुन्नमयितुं नेतुं नतिं वा महीम् ।
उद्धर्तुं किल भूभृतः स्थलयितुं सिन्धुं च संभाव्यते
शक्तिर्यस्य जनैः स एव नृपतिः शेषाः परंपार्थिवाः ॥

आग को शीतल करने की, वर्फ को जला देने की, हवा को रोकने की, जल को ठोस बनाने की, आकाश को उठाने की, पृथिवी को बनाने की, पर्वतों को उखाड़ने की, समुद्र को समतल और समतल को समुद्र बनाने की जिसमें शक्ति रहती है, उसे ही लोग नृपति कहते है, और लोग तो पार्थिव है अर्थात् मिट्टी के धोंधे हैं।

हास्य

प्रायश्चित्तं मृगयते यः प्रियापादताडितः ।
क्षालनीयं शिरस्तस्य कान्तागण्डूषशीधुभिः ॥१॥

जो मनुष्य प्रिया के पैरों से ताड़ित होकर प्रायश्चित्त ढूँढ़ता है, उसका मस्तक कान्ता के मुँह में की शराब से धो देना चाहिए।

गणयति गगने गणकश्चन्द्र ण समागमं विशाखायाः ।
विविधभुजंगक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति ॥२॥

ज्योतिषी जी आकाशस्थ चन्द्रमा का विशाखा के साथ समागम का समय गणना के द्वारा जानते हैं, पर उनके घर की गृहणी अनेक हुरदंगों के साथ क्रीड़ा करती है, यह उन्हे मालूम नहीं ।

सदा वक्रः सदाक्रूरः सदामानधनापहः ।
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामातादशमो ग्रहः ॥३॥

जामाता (दामाद) दशवाँग्रह है, यह सदा कन्याराशि पर वर्तमान रहता है, यह सदा टेढ़ा, सदा क्रूर और सदा मान धन का अपहरण करने वाला है ।

यमः शरीरगोप्तारं संचितारं वसुन्धरा ।
दुःशोला स्त्री च हसति भर्तारं पुत्रवत्सलम् ॥

शरीर की रक्षा करनेवाले को यमराज हँसता है, धन संचय करनेवाले को पृथिवी हंसती है और व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति को पुत्र पर प्रेम करते देखकर हँसती है ।

परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे मा प्राणेषु दयां कृथाः ।
दुर्लभानि परान्नानि प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥५॥

हे दुर्बुद्धे, यदि दूसरों का अन्न मिले तो प्राणों का मोह छोड़ दो, क्योंकि परान्न का मिलना दुर्लभ है, प्राण तो प्रत्येक जन्म में मिलते हैं ।

निदाघकाले विप्रस्य प्रसुप्तस्य तरोरधः ।
शूना प्रमुत्रितं हस्ते देवस्यत्वेति सोऽब्रवीत् ॥६॥

गर्मी के दिनों में एक ब्राह्मण किसी पेड़ के नीचे सो रहा था, कुत्ते ने उसके हाथ पर मूत दिया, उसने कहा यह देवता का है ।

वैद्यनाथ नमस्तुभ्यं क्षपिताशेषमानव ।
त्वयि सन्यस्तभारोयं कृतान्तः सुखमेधते ॥७॥

समस्त मनुष्यों को नष्ट करनेवाले हे वैद्यराज, आपको नमस्कार । यमराज, आप ही पर अपना प्राणबध का भार सौंपकर निश्चिन्त हो रहा है ।

काकाल्लौल्यं यमात्क्रौर्यं स्थपतेर्नित्यघातिताम् ।
आद्यक्षराणि संगृह्य कायस्थः केन निर्मितः ॥८॥

कौए से लोलता, यमराज से क्रूरता और स्थपति (व्याध) से प्रति दिन हिंसा का काम कायस्थों में विद्यमान है, इन तीनों के पहले अक्षरों को लेकर कायस्थों का निर्माण किसने किया ?

लेखनीकृतकर्णस्य कायस्थस्य न विश्वसेत् ।
विश्वसेत्कृष्णसर्पस्य वने व्याघ्रस्य विश्वसेत् ॥९॥

काले साँप का विश्वास किया जा सकता है, बन में वाघ का भी विश्वास किया जा सकता है, पर कान पर कलम रखनेवाले कायस्थ का विश्वास नहीं किया जा सकता ।

वाचयति नान्यलिखितं लिखितमनेनापि वाचयति नान्यः ।
अयमपरोस्य विशेषः स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति ॥१०॥

ये दूसरों का लिखा नहीं बांच सकते और इनका लिखा दूसरा भी नहीं बांच सकता । ख़ूबी यह कि ये अपना लिखा भी नहीं बाँच सकते ।

खट्वा नितान्तलघुका शिथिलप्रताना
वेश्यापतिः स च निरन्तरखण्डकारी ।
तत्रापि दैवहतिकाः खलु माघरात्र्यो
हासह्यतां कथमयं व्यसनप्रपञ्चः ॥११॥

खाट बड़ी छोटी है उसके बाने ढीले हो गये हैं और वह वेश्या से प्रेम रखनेवाला पति प्रायः ग़ायब रहता है, इस पर भी दैव की मारी माघ की रातें हैं, भला ये कष्ट कैसे सहे जा सकते हैं ?

उच्चैरध्ययनं चिरन्तनकथाः स्त्रीभिः सहालापनं
तासामर्भकलालने रतिरथो तत्पाकमिथ्यास्तुतिः ।
पितृभ्रातृजनाशिषः सुभगतायोग्यत्वसंकीर्तनं
स्वानुष्ठानकथाभिवादनविधिर्भिक्षोर्गुणा द्वादश ॥१२॥

भिक्षुक के बारह गुण हैं । वे ये हैं ज़ोर से पढ़ना, पुरानी बातें कहना, स्त्रियों के साथ बातचीत करना, उनके बच्चों के खेलाने में प्रेम रखना, उनकी बनायी रसोई की झूठी तारीफ़ करना, उनके पिता भाई आदि को आशीर्वाद देना, उनमें पति प्रिय होने की पूरी योग्यता का वर्णन करना, अपने अनुष्ठान कथा अभिवादन आदि की योग्यता बखानना ।

क्षारं राद्धमिदं किमद्य दयिते राध्नोषि किं न स्वय-
माः पापे प्रतिजल्पसे प्रतिदिनं पापस्त्वदीयः पिता
धिक् त्वां क्रोधमुखीमलीकमुखरस्त्वत्तोपि कः क्रोधनो
दम्पत्योरिति नित्यदत्तकलहक्लेशान्तयोः किं सुखम् ॥१३॥

स्त्री पुरुष से वाद—पु०– प्रिये, यह क्या आज कडुआ कडुआ बनाया है ? स्त्री० तो तुम स्वयं क्यों नहीं बना लेते ? पु०—ओह पापिन, तू प्रतिदिन उत्तर दिया करती है, स्त्री०—

तुम्हारा बाप पापी है, पु०—तू तो बड़ी क्रोधिन है, तुझे धिक्कार। स्त्री—तू व्यर्थ का बकता है, तुझसे बढ़कर क्रोधी कौन है ? इस प्रकार प्रति दिन कलह करने वाले स्त्रीपुरुषों को क्या सुख है ?

स्वायत्तमेकान्तहितं विधात्रा
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे
विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥१४॥

ब्रह्मा ने मूर्खता छिपाने के लिए अपने वश का एक उत्तम उपाय बनाया है। वह यह है कि सर्वज्ञ पण्डितों के समाज में मूर्खों का चुप रहना।

नाम ग्रन्थकृतां गृहाण विबुधोपाध्यायचर्चां कुरु
ग्रन्थानां भव सत्परिग्रहकृती स्पर्धस्व साकं बुधैः ।
नानाहस्तविचित्रचालनपरश्चोच्चैः सशब्दं हस—
न्निच्छेश्चेद्बुधतां पुरो जड़धियामत्यन्तमूर्खोऽपि सन् ॥१५॥

अत्यन्त मूर्ख होने पर भी तुम मूर्खों की सभा में पण्डित बनना चाहते हो, तो इन बातो को करो · ग्रन्थकारों का नाम लिया करो। विद्वान् पण्डितों की चर्चा करो, ग्रन्थों का संग्रह करो, विद्वानों की बराबरी करो, खूब जोर से हँसते हुए अनेक प्रकार की हस्तमुद्रा दिखाओ ।

निःशङ्कं यत्तदुच्चैर्वद कुरु विकटं स्वाननं ज्ञानगर्वा--
च्छ्लाघस्वात्मानमन्यान्मपहस सहसा किंचिदश्लीलमुक्त्वा ।
सावर्ग्यं खण्डखाद्यं पठ विवद समुत्कर्षयन्मूर्खं लोकाः--
निच्छेश्चेत्सूरिभावं जड़जनपुरतो मूर्खवृन्दारकोऽपि ॥१६ ॥

मूर्ख शिरोमणि होने पर भी मूर्खों के सामने विद्वान् बनना चाहते हो, तो यह करो। जो मन में आवे, निःशङ्क हो

कर बोलो,अपने ज्ञानी होने का अहंकार मुँह बनाकर दिखाओ। अपनी प्रशंसा करो और दूसरों की निन्दा। कुछ बुरी बातें कह कर हँसो। तपाक के साथ खण्डनखाद्य पढ़ो, मूर्खों को उत्तेजित करते हुए विवाद करो।

व्यासादीन्कविपुङ्गवाननुचितैश्चोद्यैः सलीलंभप--
न्नुच्चैर्जल्प निमील्य लोचनयुगं श्लोकान्सगर्वं पठन्।
काव्यं स्वीकुरु यत्परैर्विरचितं स्पर्धस्व साकं बुधै—
र्यद्यभ्यर्थं से श्रुतेन रहितः पाण्डित्यमाप्तुं बलात ॥१७॥

व्यास आदि कवि श्रेष्ठों की अनुचित शब्दों से निन्दा करो, आँखें मूँद कर जोर जोर से बोलो, अहंकार के साथ श्लोक पढ़ो, दूसरों के बनाये काव्यों को अपना बतलाओ, विद्वानों की बराबरी करो, यदि शास्त्र ज्ञान के बिना विद्वान् बनना चाहते हो तो इन कामों को करो।

नास्माकं जननी तथोज्वलकुला सच्छ्रोत्रियाणां कुला—
दूढ़ा काचन कन्यका खलु मया तेनास्मि ताताधिकः।
अस्मत्स्यालकभागिनेयभगिनी मिथ्याभिशस्ता परै-
स्तत्संबन्धवशान्मया स्वगृहणी प्रेयस्यपि प्रोज्झिता ॥१८॥

मेरी माता उच्च कुल की नहीं है, पर मैंने श्रेष्ठ श्रोत्रियों के कुल की कन्या व्याही है, इससे मैं अपने बाप से बड़ा हूँ। मेरे साले के भांजे की बहिन पर मिथ्या कलङ्क लगा है, उसी संबन्ध का विचार करके मैंने अपनी प्यारी स्त्री का परित्याग कर दिया।

असारे खलुसंसारे सारं श्वसुर मन्दिरम्।
हरो हिमालये शेते विष्णु शेते महोदधौ ॥१९॥

इस असार संसार में श्वसुर का घर ही एक सार है। इसीसे महादेव हिमालय में रहते हैं और विष्णु समुद्र में।

कमले कमला शेते हरःशेते हिमालये ।
क्षाराब्धौ च हरिः शेते मन्ये मत्कुणशङ्कया ॥२०॥

लक्ष्मी कमल में शयन करती हैं, शिव जी हिमालय में शयन करते हैं और विष्णु क्षीर समुद्र में शयन करते हैं, मालूम होता है कि इसका कारण खटमलों का भय ही है।

स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ
दिगम्बरः कथंजीवेदन्नपूर्णा न चेद्गृहे ॥२१॥

दिगम्बर महादेव स्वयं पांच मुखवाले हैं, उनका एक पुत्र गजानन—हाथी का मुखवाला है और दूसरा षडानन—छः मुख वाला है, वे दिगम्बर कैसे जीते, यदि उनके घर अन्नपूर्णा न होतीं।

अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणः
पितामहाद्यै रुपभुक्तयौवनः
अलङ्करिष्यत्यथ पुत्रिपौत्रकान्
मयाधुनाः पुष्पवदेव धार्यते ॥२२॥

यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर को भूषित कर चुका है, यह वस्त्र जब नया था तो मेरे पितामह आदि ने इसका उपभोग किया था, यह हमारे पुत्र और पौत्रों को भी शोभित करेगा, मैं पुष्प के समान ही इसको धारण करता हूँ।

आकुञ्च्य पाणिमशुचिं मम मूर्ध्नि वेश्या
मंत्राम्भसां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे।

तारस्वरं प्रथितथूत्कमदात् प्रहारं
हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णु शर्मा ॥२३॥

मंत्र-जल के छीटों से पवित्र मस्तक पर वेश्या ने अपने अपवित्र हाथ रखे, बड़े जोरों से थूका और मारा, इससे विष्णु शर्मा हाय हाय करके रोता है।

आपाण्डुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले
दन्तावली विगलिता नच मे विषादः
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य
तातेति भाषणपरा इति मे विषादः ॥२४॥

मेरे सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं, गालों पर झुर्रियां पड़ गयी हैं, दाँत गिर गये हैं, पर इनके कारण मुझे कष्ट नहीं है। मुझे सब से बड़ा कष्ट इससे है कि रास्ते में स्त्रियाँ मुझे देख कर बाबा कहती हैं।

अत्तु' वाञ्छति वाहनं गणपतेराखु' क्षुधार्तः फणी
तञ्च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिंहोऽपि नागाननम्
गौरी जन्हुसुतामसूयति कलानाथं कपालानलो
निर्विण्णः सपपौ कुटुम्ब कलहादीशोऽपि हालाहलम् ॥२५॥

भूखा सांप गणेश के चूहों को खाना चाहता है, उस सांप को कार्तिकेय का मयूर खाना चाहता है, पार्वती का सिंह गजानन को खाना चाहता है। पार्वती गङ्गा से द्वेष रखती है और चन्द्रमा से अग्नि द्वेष रखता है, इसी गृहकलह से दुःखी होकर महादेव ने भी विष पी लिया है।

दृष्ट्वा षडाननजनुर्मुदितान्तरेण
पञ्चाननेन महसा चतुराननाय
शार्दूलचर्मभुजगाभरणं सभस्म,
दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु ॥२६॥

षडानन—कार्तिकेय के जन्म से प्रसन्न होकर पंचानन—महादेव ने चतुरानन—ब्रह्मा को अपना व्याघ्रचर्म और सर्प का आभूषण दिया, यह सुन कर पार्वती हँसने लगी।

रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलादपि
शक्ताहं तव चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे
खिन्नाहं तव याचनात् कुरु कृषिं भिक्षाटनं मा कृथा ॥२६॥

पार्वती ने शिव से कहा—तुम्हारा भीख माँगना देखकर मैं बहुत दुःखी हूँ, इस कारण तुम अब खेती करो, भीख माँगना छोड़ दो, परशुराम से पृथिवी ले लो, कुवेर से बीज, बलदेव से हल, यमराज से भैंसे, बैल तुम्हारे पास हैं ही, त्रिशूल का फार बनवा लो, हम तुम्हें अन्न देंगी, कार्तिकेय तुम्हारे पशुओं की रक्षा करेगा। फिर भीख क्यों माँगते हो?

जाति

आयातो भवतः पितेति सहसा मातुर्निशम्योदितं
धूलीधूसरितो विहाय शिशुभिः क्रीड़ारसान्प्रस्तुतान्।
दूरात्स्मेरमुखः प्रसार्य ललितं बाहुद्वयं बालको
नाधन्यस्य पुरः परैति परया प्रीत्या रणन्घर्घरम् ॥१॥

तुम्हारे पिता आये यह माता की बात सुनकर धूल में लिपटा हुआ अपने साथी बालकों के साथ का खेल छोड़कर दूर ही से हंसता हुआ दोनों हाथ फैलाकर कुछ बोलता हुआ बालक बड़े प्रेम से किसी अन्य मनुष्य के सामने नहीं आता।

मातर्धर्मपरे दयां मयि कुरु श्रान्तेऽत्र वैदेशिके
द्वारालिन्दककोणकेऽथ निभृतं यामाहिम सुप्त्वा निशि
इत्युक्त्वा सहसा प्रचण्डगृहिणीवाक्येन निर्भत्सितः
स्कन्धन्यस्तपलालमुष्टिविभवः पान्थः पुनः प्रस्थितः ॥२॥

धर्मी माई, मैं थका विदेशी हूँ मुझ पर दया करो, द्वार के चौकठे के कोने में रातभर सोकर मैं प्रातःकाल चला जाऊँगा। इतना कहने पर वह गृहिणी के द्वारा दुतकारा गया वह पथिक जो कन्धे पर एक मुट्ठी पुआल लिये हुआ था, वह वहाँ से चला गया।

गायति हंसति च नृत्यति हृदयेन धृतां प्रियां विचिन्तयति
समविषमं नच विन्दति गृहगमनसमुत्सुकः पथिकः ॥३॥

पथिक घर जाने के लिए उत्सुक है, उस उत्सुकता में वह गाता है, हँसता है, नाचता है, हृदयस्थित प्रिया का ध्यान करता है और उसे ऊँच नीच का ज्ञान नहीं है।

भद्रं ते सदृशं यदध्वग जनैःकीर्तिस्तवोद्घुष्यते
स्थाने रूपमनुत्तमं सुकृतिना दानेन कर्णो जितः
इत्यालोक्य भृशं दृशा करुणया शीतातुरे च स्मृतः
पान्थेनैक पलाल मुष्टिरुचिना गर्वायते हालिकः ॥४॥

पथिक गण तुम्हारी कीर्ति का वर्णन करते हैं, यह तुम्हारे लिए सर्वथा उचित है, सुन्दर रूप भी तुमने पाया है, दान से तुमने कर्ण को भी जीत लिया है, शीत से ठिठुरा हुए पथिक ने एक मुट्ठी पुआल लेने की इच्छा से किसान की स्तुति की और अपनी स्तुति सुनकर वह अपने को बड़ा समझने लगा।

कलिकाल

प्राप्ते कलौ राजनि चार्थलुब्धे
धनेन किं जीवितमेव रक्ष्यम् ।
किं नैव लाभो यदि सौनिकेन
मुच्येत मेषो हृतसर्वलोमा ॥

कलिकाल आया, राजा धन के लोभी हुए, ऐसे समय में धन की इच्छा कौन करे, प्राणों की ही रक्षा करनी चाहिए, यदि कसाई भेड़ के बाल काट कर उसे छोड़ दे, तो क्या यह उसका लाभ नहीं है।

गच्छ त्रपे विरम धैर्य धियः किमत्र
मिथ्या कदर्थयसि किं पुरुषाभिमान ।
दूरादपास्तगुणसञ्चितदोषसैन्यं
दैन्यं यदादिशति तद्वयमाचरामः ॥

लज्जे, जाओ; धैर्य ठहरो; बुद्धि यहाँ क्यों ? पुरुषार्थाभिमान, तुम व्यर्थ क्यों तंग कर रहे हो ? इस समय हम वही कर रहे हैं जो दीनता कहती है जिस दीनता ने सब गुणों को दूर हटाया है और दोषों की पूजा की है।

क भ्रातश्चलितोऽसि यामि कटकं किं तत्र सेवाशया
कः सेव्यो नृपतिः कथं निजगुणैः के ते गुणा ये सताम् ।
किं तैरद्य कुतो परे व्रज वनं किं वा त्वया न श्रुतम्
पूज्यन्ते शठमत्सरित्सरिप्रस्मृतयः कर्णेजपाः सेवकाः ॥

भाई, कहां चले ? राजधानी जारहा हूं। किस लिए ? सेवा के लिए। वहां किसकी सेवा करोगे ? राजा की। कैसे ? अपने गुणों से। वे कौन गुण हैं ? जो सज्जनों के होते हैं ? इस समय उनसे क्या होगा ? क्या ? अजी, वन में जाओ ; क्या

तुमने नहीं सुना है फिर शठ, मत्सरी और चुगल सेवकों का वहाँ आदर होता है ।

शील' शैलतटान्पतत्वभिजनो निर्दह्यतां वह्निना
मा श्रौषं जगति श्रु तस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम् ।
शौर्ये वैरिणि व्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा
येनैकेन बिना गुणास्तृणबुसप्रायाः समस्ता इमे ॥

पर्वत से शील गिर जाय, कुल आग से जल जाय, उस शास्त्र का नाम भी अब मैं न सुनूँ जिसके लिए व्यर्थ परिश्रम किया है, इस बैरिन शूरता पर शीघ्र ही बज्र गिरे, सिर्फ एक धन होना चाहिए, जिसके बिना ये समस्त गुण घास भूसे के समान है ।

धर्मः प्रव्रजितस्तपश्च चलितं सत्यं च दूरं गतं
पृथ्वी मन्दफला जनाः कपटिनो मौढ्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
राजा दण्डपरो विचाररहितः पुत्राः पितृद्वेषिणो
भार्याभर्तृविरोधिनी कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥

धर्म ने सन्यास ले लिया, तपस्या भी चला गया, सत्य तो बहुत दूर गया, पृथिवी की उपजाऊ शक्ति घट गयी, कपटी होने लगे, ब्राह्मण मूर्ख हो गये, राजा बिना विचार के दण्ड देनेवाले हुए, पुत्र पिता से द्वेष करने लगे, भार्या पति विरोधिनी हुई, इस कलियुग में जो मर गये, वे ही धन्य हैं ।

आपत्तिः

चाण्डालश्च दरिद्रश्च द्वाविमौ पुरुषौ समौ ।
चाण्डालश्च न गृह्णन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति ॥

चाण्डाल और दरिद्र ये दोनों बराबर हैं, चाण्डाल ग्रहण नहीं करता और दरिद्र देता नहीं ।

एहि गच्छ पतोत्तिष्ठ वद मौनं समाचर ।
इत्थमाशाग्रहग्रस्तैः क्रीड़न्ति धनिनोर्थिभिः ॥

आओ, जाओ, गिरो, उठो, बोलो, चुप रहो, इस प्रकार आशा ग्रह से ग्रस्त याचकों से धनी लोग खेलते हैं ।

शीतमध्वा कदन्नं च वयोतीताश्च योषितः
मनसः प्रातिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः ॥

बुढ़ापे के पांच हेतु हैं, ठंढा लगना, बुरा अन्न खाना, अधिक उमर की स्त्री और मन के प्रतिकूल स्थिति का सामना ।

दानं न दत्तं न तपश्च तप्तं
नराधितौ शङ्कर वासुदेवौ ।
अग्नौ रणे [illegible] हुतश्च कायः
शरीर किं प्रार्थयसे सुखानि

दान नहीं दिया, तप नहीं किया, शंकर और वासुदेव की आराधना भी न की, अग्नि में या रण में शरीर का हवन भी नहीं किया । शरीर, फिर तुम सुख की आशा क्यों करते हो ?

भद्रे वाणि कुरुष्व तावदमलां वर्णानुपूर्वीं मुखे
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि याहि गुरुते प्रज्ञे स्थिरत्वं भज ।
लज्जे तिष्ठ पराङ्मुखी क्षणमहो तृष्णे पुरः स्थीयतां
पापो यावदहं ब्रवीमि धनिनं देहीति दीनं वचः ॥

भद्रे वाणि, सुन्दर शब्दों को मुंह में सजा रखो, चित्त स्वस्थ हो जाओ, बड़प्पन तुम जाओ, बुद्धि स्थिर होओ,

लज्जे मुंह फेर कर ठहरो, तृष्णे तुम थोड़ी देर के लिए आगे आ जाओ, जब तक पापी मैं धनियों के सामने "दो" ऐसा दीन बचन कहूं ।

मद्गेहे मशकीव मूषकवधूमूंषीव मार्जारिका
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहणी वाच्यः किमन्यो जनः ।
इत्यापन्नशिशूनसून्विजहतः संप्रेक्ष्य झिल्लीरवै—
र्लूतातन्तुवितानसंवृतमुखी चुल्ली चिरं रोदिति ॥

मेरे घर की चूहिया मच्छर के समान हो गयी है, बिल्ली चूहिया के समान हो गयी है, बिल्ली के समान कुत्ती और कुत्ती के समान गृहिणी हो गयी है, ऐसी दशा में दूसरों के लिए क्या कहा जाय ? इस प्रकार दुःखी लड़कों को प्राण छोड़ते देख कर मकरी के जाले से मुँह छिपा कर झिल्ली के शब्द के द्वारा चूल्ही रो रही है ।

तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च याचकः ।
वायुना किं न नीतो सौ मामयं प्रार्थयेदिति ॥

रुई तृण से भी हल्की है और याचक तृण से भी हल्का है । फिर भी वायु उसे उड़ा कर नहीं ले गया, यह इस डर से कि कहीं यह मुझसे भी माँगने न लग जाय ।

सेवा-पद्धति

द्वयं जहाति सेवकः सुखञ्च मानमेवच ।
यदर्थमर्थमीहते तदेव तस्य हीयते ॥

सेवक सुख और मान को छोड़ता है, जिस सुख के लिए वह धन चाहता है, उसका वही सुख नष्ट होता है ।

एतावज्जन्म साफल्यं यदनायत्तवृत्तिता ।
ये पराधीनजन्मानस्ते चेज्जीवन्ति के मृताः ॥

किसी के अधीन रहना न पड़े, यही जन्म की सफलता है, जिनका जन्म पराधीनता में बीतता है वे यदि जीवित हैं तो मरा कौन है।

सेवकादपरो मूर्खस्त्रैलोक्येऽपि न विद्यते ।
दिने दिने नमन्मोहादुन्नतिं योभिवाञ्छति ॥

सेवक से बढ़कर मूर्ख इस त्रिलोक में दूसरा नहीं है, जो दिन दिन नवता जाता है पर उन्नति चाहता है।

काके शौचं द्यूतकारेषु सत्यं
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता ।
ज्ञाने भ्रान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्ती
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥

कौए में शुद्धता, जुआरी में सचाई, नपुंसक में धीरता, शराबी में विचार, ज्ञान में भ्रम, स्त्रियों में कामशान्ति और राजा का मित्र होना किसने देखा या सुना है।

पहेली

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः ।
अमुखः स्फुटवक्ता च यो जानाति स पण्डितः ॥१॥

पैर नहीं है, पर बहुत दूर तक चला जाता है। साक्षर है पर पण्डित नहीं, मुंह नहीं है, पर साफ़ साफ़ बोलता है, इसको जो जानता है वही पण्डित है। उत्तर—पत्र।

वने जाता वनं त्यक्त्वा वने तिष्ठति नित्यशः ।
पण्यस्त्री न तु सा वेश्या यो जानाति स पण्डितः ॥२॥

बन में उत्पन्न हुई है, वन में ही रहती है, वह बाजार की स्त्री है, पर वेश्या नहीं। इसे जो जानता है वह पण्डित है। उत्तर—नौका ।

गोपालो नैव गोपालः त्रिशूली नैव शंकरः ।
चक्रपाणिः स नो विष्णुर्योजानाति स पण्डितः ॥३॥

गोपाल है पर गोपाल (कृष्ण) नहीं है, त्रिशूली है पर शंकर महादेव नहीं है, चक्रपाणि है, पर विष्णु नहीं है। इसे जो जानता है, वह पण्डित है। उत्तर--साँड ।

उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वमनं शवकर्पटं ।
काकविष्ठा समुत्पन्नः पंचैतेति पवित्रकाः ॥४॥

जूठा, शिव का निर्माल्य, वान्त किया हुआ, मुर्दे का कपड़ा, कौए की बिष्ठा से उत्पन्न ये पांच वस्तु पवित्र हैं। क्रम से उत्तर--दूध, गंगाजल, मधु, रेशम और बट ।

काचिन्मृगाक्षी प्रियवियोगे गन्तुं निशा पारमपारयन्ती ।
उद्गातुमादाय करेणवीणामेणाङ्कमालोक्य शनैरहासीत् ॥५॥

एक स्त्री पति विरह के कारण रात काटने में असमर्थ हो गयी। अतएव गाने के लिए उसने हाथ से वीणा उठायी, पर चन्द्रमा को देखकर उसने वीणा धीरे से रख दी। वीणा रखने का कारण यह है कि मृगाङ्क (चन्द्रमा) के गोद में रहने वाला मृग, यदि मेरा गाना सुनने के लिए चन्द्रमा को छोड़ कर आवे, तो चन्द्रमा निष्कलङ्क हो जायगा और वह मेरे मुख की बराबरी करने लगेगा।

तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः ।
गुरूणां सन्निधानेपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥६॥

तरुणी ने गले में आलिङ्गन किया है, जो नितम्ब (कमर के पीछे का भाग) पर स्थित है, गुरुओं (भारी वस्तु) के समीप भी कौन बारबार बोलता है। उत्तर--आधा भरा घड़ा ।

वृक्षाऽग्रवासी न च पक्षिराजस्त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः ।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्धयोगी जलं च विभ्रन्न घटो न मेघः ॥७॥

वृक्ष के अग्रभाग में रहता है, पर गरुड़ नहीं है, त्रिनेत्र है पर शिव नहीं है, छाल का वस्त्र धारण करता है पर सिद्ध या योगी नहीं है, जल धारण करता है पर न घड़ा है या न मेघ । उत्तर--नारियल ।

एकचक्षुर्नकाकोऽयं बिलमिच्छन्न पन्नगः ।
क्षीयते वर्द्धते चैव न समुद्रो न चन्द्रमाः ॥८॥

उसको एक आँख है पर वह कौवा नहीं है, बिल ढूँढ़ता है, पर सर्प नहीं है, घटता बढ़ता रहता है, पर न समुद्र है और न चन्द्रमा ।

अस्थि नाऽस्ति शिरो नाऽस्ति बाहुरस्ति निरंगुलिः ।
नाऽस्ति पादद्वयं गाढमंगमालिंगति स्वयम् ॥९॥

हड्डियां नहीं हैं, सिर नहीं है, बाहु हैं पर अंगुलि नहीं है, दोनों पैर भी नहीं हैं, पर समस्त अंगों को वह स्वयं आलिङ्गन करती है । अँगरखा ।

नरनारीसमुत्पन्ना साक्षी देहविवर्जिता ।
अमुखी कुरुते शब्दं जातमात्रा विनश्यति ॥१०॥

स्त्री और पुरुषों से वह उत्पन्न होती है, वह स्त्री है पर उसके शरीर नहीं है, उसके मुँह नहीं हैं, पर वह शब्द करती है और उत्पन्न होते हो नष्ट हो जाती है। उत्तर--चुटकी ।

दन्तैर्हीनः शिलाभक्षी निर्जीवो बहुभाषकः ।
गुणस्यूतिसमृद्धोऽपि परपादेन गच्छति ॥११॥

उसके दांत नहीं है, पर वह पत्थर खाता है, उसके प्राण नहीं हैं पर वह बहुत बोलता है, गुण (सूत) से युक्त है, पर दूसरों के पैरों से चलता है। उत्तर--जूता ।

न तस्याऽऽदिर्न तस्यांऽतो मध्ये यस्तस्य तिष्ठति ।
तवाऽप्यस्ति ममाऽप्यस्ति यदि जानासि तद्वद ॥१२॥

न उसकी आदि है और न अन्त, (यः मध्ये तिष्ठति) य मध्य में रहता है। वह तुम्हारे भी है और हमारे भी। यदि जानते हो तो बतलाओ। नयन

अनेकसुषिरं वाद्यं कान्तं च ऋषिसंज्ञितम् ।
चक्रिणा च सदाराध्यं यो जानाति स पण्डितः ॥१३॥

जिसमें अनेक बिल हैं, जिसकी आदि में व है और अन्त में क है और वह ऋषि का नाम है, सांप उसकी आराधना करते हैं, जो इसको जानता है वह पण्डित है। उत्तर—वाल्मीक

वने वसति को वीरो योऽस्थिमांसविवर्जितः ।
असिवत्कुरुते कार्यं कार्यं कृत्वा वनं गतः ॥१४॥

वह कौन वीर वन (जल) में रहता है, जिसके हाड़ मांस नहीं है, जा तलवार के समान काम करता है और काम करकेव न (जल) में चला जाता है। कुंहार का डोरा ।

अपूर्वोऽयं मया दृष्टः कान्तः कमललोचने ।
शोऽन्तरं यो विजानाति स विद्वान्नात्र संशयः ॥१५॥

मैंने यह अपूर्व (अ जिसके पहले हो), कान्त (जिसके अन्त में "क" हो) देखा, जिसके मध्य में "शो" है इसको जो जानता है वह पण्डित है, इसमें सन्देह नहीं । उत्तर—अशोक ।

आद्येन हीनं जलधावदृश्यं मध्येन हीनं भुवि वर्णनीयम् ।
अन्तेन हीनं ध्वनते शरीरं हेमाभिधः स्श्रियमातनोतु ॥१६॥

आद्य अक्षर से हीन होने पर वह समुद्र में अदृश्य होता है, मध्यहीन पृथिवी में रहता है, अन्त से हीन होने पर शरीर का एक अंग होता है वह हेम नाम वाला तुम्हारा कल्याण करे । उत्तर--करज ।

सदारिमध्यापि न वैरियुक्ता नितान्तरक्तापि सितैव नित्यम् ।
यथोक्तवादिन्यपि नैव दूती का नाम कान्तेति निवेदयाशु ॥१७॥

जो सदारिमध्या अर्थात् सदा अरियों के मध्य में है अथवा जिसके मध्य में सदा "रि" है, पर वह वैरियुक्त नहीं है, नितान्त रक्त है पर सिता (श्वेत या स अक्षर से युक्त) है कही बात कहती है, पर दूती नहीं है, कान्ते, शीघ्र बतलाओ वह कौन है । उत्तर—सारिका ।

चक्री त्रिशूली न हरो न विष्णुर्महाबलिष्ठो न च भीमसेनः ।
स्वच्छन्दचारी नृपतिर्न योगी सीतावियोगी न च रामचन्द्रः ॥१८॥

चक्र और त्रिशूल धारण करता है पर न तो विष्णु है और न शिव, बहुत बलवान है पर भीमसेन नहीं है, इच्छा पूर्वक चला करता है, पर न राजा है न योगी, सीता (जानकी या हल) का वियोगी है, पर रामचन्द्र नहीं हैं । उत्तर—सांड़ ।

नवोढा ।

कांची दामनि वेशयन् वितनुते वासः श्लथं सुभ्रु वो-
हारं वक्षसियोजयन् करतलं धत्तो कुचांभोरुहे ।
जल्पन् चाटु वचोधरं धयति यत्प्रेयान् कुतो विस्मयः-
पांशुं चक्षुपि विक्षिपन् यदि धनं गृह्णाति पाटच्चरः ॥१९॥

प्रियतम करधनी ठीक करते हुए नायिका का वस्त्र ढीला कर देता है, हार पहनाते हुए अपने हाथ स्तनों पर रखता है, मीठी मीठी बातें करता हुआ अधरपान करता है, इसमें क्या आश्चर्य है, चोर तो आंखों में धूल डालकर धन उठा ले जाता है।

बलान्नीता पार्श्वं मुखमभिमुखं नैव कुरुते
धुनाना मूर्धनं हरति वहुशश्चुंवनविधिम् ।
हृदिन्यस्तं हस्तं क्षिपति गमनारोपितमना
नवोढ़ा वोढ़ारं सुखयति च संतापयति च ॥२०॥

बलपूर्वक जब वह पास लायी जाती है तब सामने मुँह नहीं करती, मस्तक कंपा कर चुंबन में विघ्न डालती है, हृदय पर हाथ रखते ही वह जाने के लिए तैयार हो जाती है, इस प्रकार नवोढ़ा पति को सुखी भी करती है और सन्तापित भी करती है।

मातः केलि गृहं न यामिशयितुं कस्मात्तु चन्द्रानने
जामाता तव निर्दयो निजभुजापाशेन मां पीड़ति ।
अङ्गानि क्षतते निजैः कररुहैर्दंतैर्दशत्योष्ठके
नीवीबन्धविमोक्षणं च कुरुत निद्रां न लेभे निशि ॥२१॥

मा, अब मैं केलिगृह में सोने न जाऊँगी । उसने पूछा, क्यों ? नवोढ़ा ने कहा, तुम्हारा दामाद बड़ा निर्दयी है, वह मुझे अपने भुजपाश से दबाता है अपने नखों से वह मेरे अंगों को क्षत विक्षत करता है, ओंठ काटता है, वस्त्र भी······मैं रात सो न सकी ।

> धैर्यं धेह सुते हतेनशरते भर्तुर्भयं मा कृथा-
>
> श्चेष्टास्तस्य सहस्व यौवनवतो नानाविधाः कामदाः ।
>
> वाच्यंनैव कदापि कस्य निकटे रीतिस्त्वयं वर्त्तते-
>
> स्त्रीणामीदृशमाकरोत्तवपिता जानीह पूर्वंहि मां ॥४॥

माता ने उत्तर दिया, बेटी धैर्य धारण करो, पति का भय न करो, उस युवक की अनेक प्रकार की चेष्टाओं को सहो, यह बात किसी दूसरी जगह न कहना, स्त्रियों की ऐसी ही रीति चली आयी है, तुम्हारे पिता ने भी पहले मुझसे ऐसा ही किया था ।

> दीपांकुरः स्फुरति पश्यति केलि कीरो
>
> जालेनिवेशत मुखीय सखी च कास्ति ।
>
> इत्थं विचिंत्य वचसानशशांक वाला
>
> नाथं निषेद्धुमनिषेद्धुमपित्रवाभः ॥५॥

दीपक जल रहा है, क्रीड़ा शुक देख रहा है, खिड़की में मुँह लगाये सखी भी खड़ी है, इस प्रकार सोचकर लज्जा के कारण बाला पति को न निषेध ही कर सकी और न अनिषेध ।

प्रोषित भर्तृका

रोलंबो मधुपः पिकः परभृतो रंध्रानुसारी मरुत
कीरोभाषितवाक्यमात्रपठनप्रौढ़ः पयोदो जलः
हंसः संततपक्षपात निरतस्तस्मादवस्थामिमा
मुत्क्वाहं प्रहिणोमिकेन कठिन स्वांताय कांताय मे ॥१॥

भ्रमर मधु पीने वाला है, पिक दूसरों के द्वारा पोषित हुआ है, वायु रन्ध्र (अवसर) ढूँढनेवाला है, शुक कही बात को कहने में हो चतुर है। मेघ जल है, हंस सदा पक्षपात करने में लगा रहता है, फिर मैं अपनी यह अवस्था बतला कर कठिन चित्त प्रियतम के पास किसको भेजूँ ।

मालावालांबुजदलमयी मौक्तिकीहार यष्टिः
कांचीयाते प्रभवति हरौ सुभ्रु वप्रस्थितैव ।
अन्यत् ब्रूमः किमपिधमनी वर्त्तते वानवेत्ति
ज्ञातुं बाहोरहह वलयं पाणिमूलं प्रयाति ॥२॥

कमल दल की बनायी माला और मोतियों का हार दोनों उस की करधनी बन गये हैं, और क्या कहा जाय ? उसकी नाड़ी चल रही है कि नहीं, इस बात को जानने के लिए कलाई का कंकण बाहुमूल में चला गया है। अर्थात् तुम्हारे वियोग से वह बहुत दुबली हो गयी है।

समर्प्य हृदिदारुणां मदन-वेदना भूयसी
स्त्रीमनेन तववर्त्मना प्रचलित समेवल्लभः ।
नवाप्रदिशिशब्दितं किमिति वालयावायस
स्वयासदन सारिके किमिति वा कृत न क्षुतु ॥४॥

मेरे हृदय में दारुण कामवेदना देकर मेरे स्वामी इसी तुम्हारे मार्ग से गये। कौआ, उस समय तुम उनके सामने बोले क्यों नहीं? अरे घर की तोती, तुमने छींका क्यों नहीं!

खंडिता

जातस्तेनिशिजागरोममपुनेनेत्रांबुजेशोणिमा-
निस्पीतं भवता मधु प्रविततव्याघूर्णितं मे मनः।
भ्राम्यद्भृगंघनेनिकुंजभवने लब्धंत्वया श्रीफलं-
पंचेपुः पुनरेपमां बहुतरैः क्रूरैः शरैः कृंतति ॥१॥

स्त्री कहती है, रात को आपने जागरण किया है, और मेरी आखें लाल होगयी हैं, आपने रात को खूब शराब पी है और मेरा मन घूम रहा है। भ्रमर गूँजनेवाले लतागृह में आपने फल पाया है, पर यह कामदेव कठिन शरों से मुझे सता रहा है।

प्रातः प्रातरुपागतोसिजनितानिनिंद्रिता चक्षुषो-
मंदायासम गौरवं व्यपहृतं प्रोत्यादितंलाघवं।
किंतद्यन्न कृतं त्वयारमणभीमुंक्तामयागम्यते
दुःखं तिष्ठति यत्त्वपथ्य मधुनाकर्तास्मितच्छ्रोष्यसि ॥२॥

इस समय बड़े प्रातःकाल आये हो, रात भर तुमने मुझे जगाया, मुझ मूर्ख का तुमने गौरव नष्ट किया, मुझे हल्का बनाया, क्या तुमने नहीं किया? प्यारे, अब मैंने भी भय छोड़ दिया, जाती हूँ और अपने हित की जो बात मैं करूँगी, वह तुम सुनोगे।

भवतुविदितं व्यर्थालापैरलं प्रियगम्यतां
तनुरपिनतेदोषोऽस्माकं विधिस्तु परांङ्मुखः ।
तवपदितथारूढं प्रेमं प्रपन्नमिभाद्दृशा—
प्रकृति तरलेकानः पीड़ागतेहतजीविते ।।३।।

अच्छा, मालूम है, व्यर्थ की बातों से लाभ क्या ? प्रिय, अब आप जाँय; आपका थोड़ा भी दोष नहीं है मेरा ही भाग्य उल्टा है। तुम्हारा वह हद दरजे का प्रेम जब ऐसा हो गया, तब स्वभाव से ही चंचल इस अभागे जीवन के नष्ट हो जाने का मुझे कौन सा कष्ट होगा ।

सत्यमेवगदितं त्वयाविभो जीव एक इतियत्पुरावयोः ।
अन्यदारनिहितानख व्रणास्तावके वपुषि पीड़यति मां ।।४।।

मालिक, आपने पहले कहा था कि हम दोनों का प्राण एक ही है, यह बात बिलकुल सच है। दूसरी स्त्री के नखों से तुम्हारे शरीर में जो घाव हो गये हैं, वे मुझे पीड़ित कर रहे हैं।

सार्धंमनोरथ शतैस्तवधूर्त कांता
सैवस्थितामनसि कृत्रिमभावरम्या ।
अस्माकमस्ति न कथंचिदिहावकाश—
स्तस्मात्कृतं चरणपातविडम्बनाभिः ।।५।।

धूर्त, सैकड़ों मनोरथों से उसी कृत्रिम हाव भाव दिखाने वाली स्त्री को तुमने अपने हृदय में स्थान दिया है। हमारे लिए वहां स्थान नहीं है, इस कारण पैर पर मोहने के तमाशे से क्या लाभ ।

विप्रलब्धा

शून्यं कुंज गृहं निरीक्ष्य कुटिलं विज्ञायचेतोभुवं-
दूतीनापिनिवेदिता सहचरी पृष्टाचिनोवानया ।
शंभो शंकर चंद्रशेखर हर श्रीकंठशूलिन् शिव
त्रायस्वेति परंतु पंकज दृशाभर्गस्य चक्रेस्तुतिः ॥१॥

नायिका कुंजभवन में गयी, पर वह सूना था। नायक वहाँ नहीं आया था, कामदेव कुटिलता करने लगा। उस समय उसने दूती से कुछ नहीं कहा, अपनी सखियों से भी उसने कुछ नहीं पूछा, केवल वह महादेव को रक्षा के लिए पुकारने लगी। पर उसने कहा कि महादेव कमल नेत्रों से मेरी रक्षा कीजिए, अग्नि नेत्र से नहीं, नहीं तो कामदेव जल जायगा।

निःस्नेहनिःकुरुणनिस्त्रयनिर्निमित्त-
मद्वंचकत्वमपि संप्रति वंचितःस्याः ।
इत्यक्षराणिलिखितानि समीक्ष्य कश्चि-
त्संकेतकेतकदले नितरामताम्यत् ॥२॥

"हे स्नेहहीन, निष्करुण, निर्लज्ज, विना कारण मुझे ठगने वाले, तुम भी अब ठगे जाओगे" संकेत-स्थान के केतकी-पत्र पर इन अक्षरों को देखकर कोई बड़ा दुःखी हुआ। नायिका पहले लौट आयी थी और नायक पीछे पहुँचा था।

उत्कण्ठिता

भ्रूभंगेरचितेपिदृष्टिरधिकं सोत्कंठ मुद्वीक्ष्यते
रुद्धायामपिवाचिसस्मितमिदं दग्धाननं जायते ।
कार्कश्यंगमिते पिवेतसितनूरोमांचमालंबते
दृष्टे निर्वहणं भविष्यतिकथं मानस्य तस्मिन्जने ॥१॥

क्रोध प्रकट करने के लिए भौंए टेढ़ी करती हूँ, पर आँखें देखने के लिए विशेष उत्कण्ठित हो जाती हैं। बोलना वन्द करती हूँ, पर इस अभागे मुँह में हंसी आजाती है। हृदय कड़ा करती हूँ, पर शरीर रोमांचित हो जाता है। उस मनुष्य को देखने पर भला मैं मान की रक्षा कैसे कर सकूँगी ?

किंरुद्धः प्रियया कयाचिदथवा सख्या ममोद्वर्जितः ।
किंवाकारणगौरवंकिमपियन्नाद्यागतो वल्लभः ।
इत्यालोच्य मृगीदृशाकरतले विन्यस्यवक्त्रांबुक–
दीर्घं निश्वसितं चिरं च रुदितं क्षिप्ताश्चपुष्पस्रजः ॥२॥

क्या किसी दूसरी प्रियतमा ने उन्हें रोक लिया, या मेरी सखी ने ही उन्हें नाराज कर दिया । अथवा काई बड़ा कारण है जिससे मेरे स्वामी आज नहीं आये । यह विचार कर उस मृगाक्षी ने हाथ पर मुख कमल रख दिया, लम्बी साँस लेने लगी, बड़ी देर तक रोती रही, और फूल की मालाएँ उसने फेंक दीं ।

वासकसज्जा

कृतं वपुषि भूषणं चिकुरधोरणीधूपिता
कृताशयनसंनिधौत्रसुकवीटिका संभृतिः ।
अकारि हरिणी दृशाभवनमेत्यदेहत्विषा
स्फुरत्कनककेतकी कुसुमकांतिभिदुंर्दिनं ॥१॥

शरीर में गहने पहने, वाल भी धूप से सुगन्धित किये. पलंग के पास पान के बोड़े रखे, मृगाक्षी ने अपने घर में जाकर सुवर्ण केतकी के पत्र के समान अपने शरीर की कान्ति से दुर्दिन बना दिया ।

स्वाधीनपतिका

अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं
नो वक्रांगतिरुद्धत न हसित नैवास्तिकश्चिन्मदः ।
किंत्वन्येपिजना वदंतिसुभगोप्यस्याः पतिर्नान्यतो–
दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियतां मन्यामहेदुःखितं ॥१॥

सखि, तुम्हारे कपड़े अच्छे नहीं हैं गले का हार भी सुन्दर नहीं है तुमारी चाल भी ऐंठ की नहीं है हँसी भी रसीली नहीं है और किसी बात का भी अहंकार नहीं है। पर दूसरे भी यह बात कहते हैं कि इसका पति दूसरी ओर नहीं देखता। मैं इसीसे सब की अपेक्षा अपने को भाग्यवान् समझती हूँ।

श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रूभंग वक्रं क्षणा–
त्मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौभ्रूतेन नांदावचः ।
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते
कांतः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखिः ॥२॥

सास मेरी ओर देखती ही नहीं, देखती भी है तो आंखे टेढ़ी करके। ननद प्रतिक्षण हृदय को जलाने वाली बात बोलती है, औरों की बात क्या कहूँ, उनके चरित का स्मरण के ही हृदय काँप जाता है। सखि, मेरा अपराध यही है कि प्रियतम मुझपर प्रेम करते हैं, मुझे प्रेम की दृष्टि से देखते हैं।

अभिसारिका

चित्रोत्कीर्णादपि विषधराद्भीतिभाजो निशायां–
किं तद्ब्रूमस्त्वदभिसरले साहसं नाथ तस्याः ।

ध्वांतेयांन्यायदति निभृतं वालयात्सत्प्रकाश
आसत्पाणिः पथिपथिकणारत्नरोधीन्यधापि ॥१॥

चित्र में लिखे साँप को देखकर भी वह रात में डर जाती है, तुम्हारे लिए अभिसरण करने में उसने जो साहस दिखाया उसके विषय में क्या कहूँ। अंधेरे में छिपकर वह आरही थी रास्ते में सर्पों के फण-मणि के प्रकाश में कोई मुझे देख न न ले, इस भय से कितने ही फण-मणियों को उसने हाथों से छिपाया।

मार्गे पंकचितेघनांधतमसे निःशब्द संचारया–
गंतव्याधभयाप्रियस्य वसतिर्मुग्धेति कृत्वामतिं ।
आजानूच्चतरापुराकरतलेनाच्छन्ननेत्रेभृशं
कृच्छ्रेणात्तपदस्थितिः स्वभवने पंथानमभ्यस्यति ॥२॥

पंकिल मार्ग से अँधेरे में मुझे आग अपने प्रिय के घर जाना है ऐसा जाना है जिसमें कोई जानने न पावे, शब्द न हो इस बात को मन में सोचकर नायिका अपने घर में ही घुंटने तक पैर उठा उठाकर तथा हाथों से आंखें बन्द करके चलती है। इस प्रकार वह मार्ग चलने का अभ्यास करती है।

अधियामिनिगजगामिनिकामिनी सौदामिनी वयं व्रजास।
जलदेनेव न जाने कति कति सुकृतानि तेन विहितानिः ॥३।

इस आधी रात को वह गजगामिनी कामिनी विद्युत के समान जिसके लिए जारही है मेघ के समान न मालूम उसने कितने पुण्य किये हैं ?

किमुत्तीर्णः पंथाः कुपति भुजगी भोगविषमो
विसोढा भूयस्यः किमितिकुलपालीकटुगिरः।

इति स्मारं स्मारं दरदलित शीतद्यु तिरुचौ
सरोजाक्षी शोणं दिशिनयनकोणं विकिरति ॥४॥

क्या वह मार्ग में डांक आयो जो कुपित सर्पिणी के कारण भयानक हो गया है? कुल के नियम पालन करनेवालों के कितने कठोर बचन मैंने न सहे। इन बातों का स्मरण करके कमलाक्षी उस दिशा की ओर लाल आँखों से देखती है जिस दिशा में चन्द्रमा थोड़ा उदित हो रहा है।

सितं वसनमीर्यसंवपुषिनीलचोलभ्रमा–
न्मयामृगमदाशयामलयजद्रवः सेवितः।
करणे परिबोधितः स्वजन शंकया दुर्जनः
परं परम पुण्यतः सखि न लंघितादेहली ॥५॥

नील वस्त्र के भ्रम से मैंने श्वेत वस्त्र पहन लिये, कस्तूरी के भ्रम से मलय चन्दन का उपयोग किया। स्वजन समझ कर दुर्जन को हाथ से जगाया। पर सखि! भाग्य की बात है कि उस समय तक भी मैं देहली के बाहर नहीं गयी थी।

इह जगति रतीशप्रक्रियाकौशलिन्याः
कति कति न निशीथे सुभ्रु वः संचरन्ति।
प्रमतुविधि हताया जायमानस्मितायाः
सहचरि परिपंथीहंतदंताङ्कुरेव ॥६॥

इस जगत् में कामकला में कुशल कितनी स्त्रियाँ रात को नहीं घूमती हैं, पर मैं ऐसी अभागी हूँ कि मुझे हंसी आ जाती है, और मेरे दांतों की प्रभा ही मेरा दुश्मन हो जाती है।

प्रत्यावृत्य यदि व्रजामि भवनं वाचाभवेत्पत्रवः
निर्गच्छामि निकुंजमेव यदि वा को वेदकिंस्यादितः ।
तिष्ठामो यदिवाक्कचिद्वनतटे किंजातमेतावता
मध्येवर्त्म कलानिधेः समुदयो जातः किमातन्यता ॥७॥

यहाँ से लौटकर यदि चली जाऊं तो बात हलकी पड़ जाय, यदि यहाँ से बाहर निकलूँ तो न मालूम क्या हो, यदि यहीं कहीं ठहर जाऊं तो इससे क्या होगा। मार्ग के बीच में ही चन्द्रमा का उदय होगया, अब क्या किया जाय।

रागान्धा तमसो विसारि विरहज्वालाति वृष्टेः स्मरा
विष्टाभूत गणात् पथोऽति विषमाद् भ्रष्टा वधूः सत्पथात् ।
पङ्कार्द्रेण मदेन पङ्किल तनुः शम्पाति सम्पाततः
शम्पाभानु जहौ भुजङ्ग भवनं यान्ती भुजङ्गाद् भयम् ॥८॥

अभिसारिका राग से अन्धी हो गयी थी। इस कारण वह अन्धकार से न डरी, उसके विरह ज्वाला फैल रही है इस कारण वृष्टि से वह न डरी। उसपर कामदेव की चढ़ाई थी इस कारण भूतों से उसको भय न हुआ, बुरे रास्ते से भी वह न डरी, क्योंकि अच्छे रास्ते से लौट चुकी थी। कीचड़ से भी उसको भय न हुआ, क्योंकि कस्तुरी के पंक से उसने अपना शरीर लिप्त किया था, बिजली के गिरने का भी उसको भय न था, क्योंकि वह स्वयं बिजली के समान थी, वह भुजङ्ग (उपपति) के घर जारही थी इस कारण भुजंग (सर्प) का उसे क्या भय हो सकता था ?

सामान्य वनिता

चेत्पौरादपिशंकसेहिमरुचोरप्यर्चिषोलज्जसे—
भोगीन्द्रादपिचेद्बिभेपितिमिरस्तोमाद पित्रस्यसि ।
चेत्कुंजादपिदूयसे जलधर ध्वानादपिक्षुभ्यसि
प्राय: पुत्रिहतास्मिहंत भविता त्वंत: कलंक: कुले ॥१॥

यदि तुम नागरिकों से शङ्कित होती हो, चन्द्रमा की किरणों से भी लज्जित होती हो, सांपों से भी डरती हो, अन्धकार से भी भयभीत होती हो, लताकुंज से भी घबड़ाती हो, मेघ गर्जन से भी क्षुभित होती हो, तब तो बेटी, मैं मारी गयी, तुमने कुल में कलंक लगाया ।

वयं बाल्ये बाला तरुणिमनियूनः परिणता—
नपीछामो वृद्धान्परिणय विधानं स्थितिरिति ।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना
न मे गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सती लांछनमभूत् ॥२॥

हम लोग बाल्यावस्था में बालकों से, यौवन में युवकों प्रौढों और वृद्धों से भी ब्याह करती हैं, यही रीति चली आयी है। पर तुमने इस एक ही पति के साथ जन्म बिताना निश्चय किया है। बेटी ! यह तुमने क्या किया ? हमारे कुल में आज तक सती होने का कलंक नहीं लगा है। हमारे कुल में आजतक कोई भी सती नहीं हुई है।

दिवसे घटिकास्त्रिंशत्त्रिंशद्घटिका: पर रजनौ ।
लक्षंनगर युवानस्तातविधात: किमाचरितं ॥३॥

दिन में तीस घड़ियां होती हैं और रात में तीस; नगर में लाखों युवक हैं। हाय, विधाता ने यह क्या किया ?

शिरसि शिरसिजंद्दशोर्निमेषं विटपिनिपल्लवमालये तृणं वा ।
गणयितुमपि पारयंति केचित्प्रियसखि के कथयंतु जार संख्यां ॥४॥

सिर के बाल, आंखों की पपनियां, पेड़ के पत्ते, घर की घास इनकी संख्या की जा सकती है, पर हमारे जारों की संख्या कौन बतला सकता है ?

नैयायिक-प्रशंसा

मोहं रुणद्धि विमली कुरुते च बुद्धिं
सूते च संस्कृतपदव्यवहारशक्तिं ।
शास्त्रांतराऽभ्यसन योग्यतया युनक्तिं
तर्कश्रमो न तनुते किमिहोपकारं ॥१॥

न्यायशास्त्र में परिश्रम करने से बड़े उपकार होते हैं। मोह दूर होता है बुद्धि, विमल होती है, शुद्ध पदों के व्यवहार की शक्ति होती है, अन्य शास्त्रों के पढ़ने की योग्यता प्राप्त होती है।

प्रायः काव्यैर्गमितवयसः पाणिनीयांबुराशेः
सारज्ञस्याप्यकरिकलितन्यायशास्त्रस्य पुंसः ।
वादारम्भे वदितु मनसो वाक्यमेकंसभायां--
प्रह्वा जिह्वा भवति कियतीं पश्य कष्टामवस्थां ॥२॥

जिन्होंने काव्य पढ़ने में अपना समय गवाँ दिया है, पाणिनोय व्याकरण के वे ज्ञाता भी हों, पर न्याय शास्त्र यदि उन्होंने न पढ़ा हो, तो शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने के समय उनकी जिह्वा विचारी एक शब्द भी नहीं बोल सकती, उनकी बुरी दशा होती है।

अपरीक्षितलक्षणप्रमाणैरपराभृष्ट पदार्थसार्थतत्त्वैः ।
अवशीकृतजैत्रयुक्तिजालैरलमेतैरनधीततर्कविद्यैः ॥३॥

इनसे क्या होनेवाला है ? इन्होंने लक्षण और प्रमाणों की परीक्षा नहीं की है, पदार्थ तत्त्वों का इन्होंने ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, जय की युक्तियों को इन्होंने वश में नहीं किया है ।

ज्ञानाब्धिरक्षि चरणः कणभक्षकश्च
श्री पक्षिलोऽप्युदयनः स च वर्धमानः ।
गंगेश्वरः शशधरो बहवश्च नव्या,
ग्रंथैर्व्यरुंधत इमे हृदयांऽधकारं ॥४॥

ज्ञान-समुद्र गौतम, कणाद, पक्षिल स्वामी, उदयन, वर्धमान, गंगेश्वर, शशधर तथा और भी अनेक नवीन ग्रन्थकार अपने ग्रन्थों से हृदय का अन्धकार दूर करते हैं ।

नैयायिक-निंदा

कर्मब्रह्मविचारणांविजहतोभोगापवर्गप्रदां-
घोषं कंचन कंठशोष फलकं कुर्वन्त्यमीतार्किकाः ।
प्रत्यक्षं न पुनाति नाऽपहरते पापानि पीलुच्छटा-
व्याप्तिर्नाऽवतिनैव पात्यनुमितिर्नो पक्षता रक्षति ॥१

ये नैयायिक कर्म और ब्रह्म के उस विचार का त्याग करते हैं जो भोग और मुक्ति देता है । केवल गला सुखाने वाला गर्जन करते हैं । प्रत्यक्ष पवित्र नहीं बनाता, पीलुवाद पापों को दूर नहीं करता, अनुमति भी रक्षा नहीं करती, पक्षता की भी यही दशा है ।

हेतुः कोऽपि विशिष्टधीरनुमितौ न ज्ञान युग्मं मरु-
द्वाचोनेति च मोघवादमुखरा नैयायिकाश्चेद्बुधाः ।
मेषस्यांडमियत्पलं वलिभुजो दन्ताः कियंतस्तथे-
त्येवं संतत चिन्तनैः श्रमजुषो न स्युः कथं पंडिताः ॥२॥

अनुमान में विशिष्ट बुद्धि हेतु है, दो ज्ञान नहीं, इस प्रकार की व्यर्थ की बातें जो बका करते हैं वे नैयायिक यदि पण्डित समझे जांय तो भेड़े का अंडकोश कितने पल का है, कौए के कितने दांत होते हैं, इस प्रकार की निरर्थक बातें जो करते हैं वे भी क्यों न पण्डित माने जांय ?

न जिघ्रत्याम्नायं स्पृशति न तदंगान्यपि सकृत्-
पुराणं नादत्ते न गणयति किं चस्मृतिगणम् ।
पठन् शुष्कं तर्कं परपरिभवार्थोक्तिभिरसौ
नयत्यायुः सर्वं निहतपरलोकार्थयतनः ॥३॥

नैयायिक वेदों को सूंघते तक नहीं, वेदांगों को छूते भी नहीं, पुराणों को एक बार भी नहीं देखते, स्मृतियों को तो कुछ समझते ही नहीं, वादी को परास्त करने के लिए केवल शुष्क पाठ पढ़ते रहते हैं। इस प्रकार अपनी समस्त आयु नष्ट कर देते हैं, परलोक को भूल जाते हैं।

प्रयत्नैरस्तोकैः परिचितकुतर्कप्रकरणाः
परं वाचोवश्यान्कतिपयपदौघान् विदधतः
सभायां वाचाटाः श्रुतिकटु रटंतो घट पटान्
न लज्जंते मंदाः स्वयमपि तु जिह्रेति विबुधः ॥४॥

बड़े प्रयत्नों से इन्होंने कुतर्क प्रकरण का परिचय प्राप्त किया है, कतिपय शब्द समूहों का ये प्रयोग करते हैं, कान फाड़नेवाले घट पट आदि शब्दों का प्रयोग ये साथ में खूब

करते हैं। पर ये मूर्ख हैं इसलिए लज्जित नहीं होते, क्योंकि लज्जित तो विद्वान् होते हैं।

गणक-प्रशंसा

न दैवं न पित्र्यं च कर्माऽवसिद्ध्येन्न यत्राऽस्ति देशे ननुज्योतिषज्ञः।
न तारा न चारा नवानां ग्रहाणां न तिथ्यादयो वा यतस्तत्र बुद्धाः ॥१॥

जहां ज्योतिष विद्या जानने वाले नहीं हैं वहाँ देवता और पितर सम्बन्धी कोई कार्य सिद्ध नहीं होते। क्योंकि वहाँ वालों को तिथि नक्षत्र आदि का ज्ञान नहीं होता।

भानोः शीतकरस्यवांऽपि भुजगग्रासे पुरो निश्चिते--
तीर्थानामटनं जनस्य घटते तापत्रयोच्चाटनम्।
इष्टे प्रागवधारिते सति धृतेस्तुष्टेश्चलाभो, भवे--
दृष्टे तु व्यसनेऽत्र तत्परि हृतिः कर्तुं जपाद्यैः क्षमा ॥२॥

सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण पहले से मालूम हो जाने पर ही मनुष्य तीर्थयात्रा के लिए जा सकता है, जिससे उसके त्रिताप नष्ट हो जाँय। हमारे अमुक मनोरथ की सिद्धि होने वाली है यह बात पहले से मालूम होने पर मनुष्य को धैर्य होता है और वह प्रसन्न होता है। दुःख आनेवाला है यह बात जब पहले मालूम हो जाय, तभी जप आदि के द्वारा उसका प्रतीकार किया जा सकता है।

वृद्धिह्रासौ कुमुदसुहृदः पुष्पवन्तो परागः
शुक्रादीनामुदयविलयावित्यमी सर्वदृष्टाः।
आविष्कुर्वंस्त्यखिलवचनेष्वत्र कुंभीपुलाक--
न्यायाज्ज्योतिर्नयगतिविदांनिश्चलं मानभावम् ॥३॥

चन्द्रमा की वृद्धि और ह्रास, सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण, शुक्र आदि का उदय और अस्त आदि बातें सभी जानते हैं। इनके द्वारा ज्योतिषियों की अन्य बातों का प्रामाणिक होना सिद्ध होता है, जिस प्रकार हंडिया का एक चावल सब चावलों का पकना बता देता है।

असुखमथ सुखं वा कर्मणां पंक्ति वेला
स्वहह नियतमेते भुंजते देहभाजः ।
तदिह पुरतएव प्राह मौहूर्तिकश्चे--
त्कथय फलमसीपार्श्वंततः किं ततः स्यात् ॥४॥

मनुष्य अपने कर्मों के फल में सुख और दुःख अवश्य भोगता है, यह बात जब पहले ही ज्योतिषी बतला दे तो क्या मनुष्य को वह दुःख भोगना पड़ेगा ? वह उस दुःख को दूर करने का उपाय करेगा।

विदैवज्ञः ग्रामः विबुधविधुरां भूपतिसभा
मुखं श्रुत्याहीनं मनु चपति शून्यं च विषयः ।
अनाचारान् दारानपहरि कथं काव्यमपि च
प्रवक्तृत्वाऽपेतः गुरुमनि सुबुद्धिः परिहरेत् ॥५॥

जिस गांव में ज्योतिषी न हो, जिस राज सभा में विद्वान् न हों, जिस मुंह में श्रुति न हो, जिस देश में राजा न हो, आचार हीन स्त्री हो, भगवान् से हीन काव्य हो और वक्तृत्व हीन गुरु हों तो ऐसी जगहों बुद्धि का नाम नहीं रहता।

एकाऽसनस्था जलवायुभक्षा
मुमुक्षवस्त्यक्तपरिग्रहाश्च
पृच्छंतितेप्यंवर चारि चारं
दैवज्ञ मंये किमुताऽर्थ चित्ताः ॥६॥

एक आसन पर रहने वाले, जलवायु के आहार पर जीवन धारण करने वाले संसार त्यागी मुमुक्षु भी आकाश के ग्रह आदि की बातें पूछा करते हैं, उन्हें भी ज्योतिषी की ज़रूरत रहा करती है, फिर भी ज्योतिषी आपको धन की क्यों चिन्ता है, आपकी आवश्यकता तो सभी को है ।

कुगणक निंदा

गणिका गणकौ समानधर्मौ निज पंचाङ्गनिदर्शकावुभौ ।
जनमानसमोहकारिणौ तौ विधिना वित्तहरौ विनिर्मितौ ॥१॥

गणिका और गणक (वैश्या और ज्योतिषी) दोनों समान हैं । दोनों अपने अपने पंचाङ्ग दिखाते हैं और मनुष्यों को मोहित करते हैं ब्रह्मा ने इन्हें धन हरण करने के लिए बनाया है ।

ज्योतिःशास्त्र महोदधौ बहुतरोत्सर्गाऽपवादात्मभिः-
कल्लौलैर्निबिड़ैकणान् कतिपयान् लब्ध्वा कृतार्था इव ।
दीर्घायुः सुत संपदादि कथनै दैवज्ञपाशा इमे
गेहं गेहमनुप्रविश्य धनिनां मोहं मुहुः कुर्वते ॥२॥

ज्योतिः शास्त्र एक समुद्र है, उसमें सामान्य और विशेष नियमों की बड़ी बड़ी लहरियां उठती हैं, उस समुद्र में से कुछ बिन्दु पाकर ये मूर्ख ज्योतिषी अपने को कृतार्थ समझ लेते हैं, और दीर्घायु पुत्र धन आदि का फ़लादेश धनियों के घर घर जाकर कहते फिरते हैं तथा धनियों को भ्रम में डालते हैं ।

विलिखति सदसद्वा जन्मपत्रं जनानां
फलति यदि तदानीं दर्शयत्यात्मदाक्ष्यं ।
न फलति यदि लग्नं द्रष्टुरेवाऽहमोहं-
हरति धनमिहेवं हंत दैवज्ञपाशः ॥३॥

ये ज्योतिषी मनुष्यों का झूठ सच जन्मपत्र बनाते हैं, यदि फल ठीक उतरा तब ये अपनी विद्वत्ता दिखाते हैं, यदि फल न घटा तो लग्न देखनेवाले का अज्ञान बतलाते हैं, इस प्रकार ये मूर्ख लोगों का धन हरते हैं।

प्रमोदे खेदे वाऽप्युपनमतिपुंसो विधिवशा-
न्मयैवं प्रागेवाऽभिहितमिति मिथ्या कथयति
जनानिष्टाऽनिष्टाऽकलन परिहारैकनिरता-
नसौ मेषादीनां परिगणनयैव भ्रमयति ॥४॥

भाग्यवश मनुष्यों को दुःख सुख होता है। पर ज्योतिषी जी कहते हैं देखो मैंने यह पहले ही बता दिया था, पर उनकी यह बात झूठी होती है। अपने इष्ट अनिष्ट जानकर उसे दूर करने की इच्छा रखनेवालों को ये मेष वृष आदि की गणना से मोह में डाला करते हैं।

वैद्य-प्रशंसा

गुरोरधीताऽखिलवैद्यविद्यः पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु ।
गतःस्पृहो धैर्यधरः कृपालुः शुद्धोधिकारी भिषगीदृशः स्यात् ॥१॥

जिसने गुरु से विद्याध्ययन किया है जो अमृतपाणि है, क्रिया में कुशल है, निस्पृह, धीर, कृपालु, शुद्ध और अधिकारी है, वही वैद्य है। वैद्य में इन गुणों का होना आवश्यक है।

रागादि रोगान् सततानुषक्तानशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहारतिदान्जघान योऽपूर्व वैद्यायनमोऽस्तु तस्मैः ॥२॥

राग आदि रोग सदा लगे रहते हैं, ये समस्त शरीर में फैले हुए हैं। इनसे उत्सुकता, मोह, अरति आदि उत्पन्न होते हैं। इनको जिन पूर्व वैद्यों ने दूर किया है, उनको नमस्कार ।

मस्ते दुःसहवेदनाकवलिते मग्ने स्वरैंतर्गलं–
तप्तायां ज्वरपावकेन च तनौ तांते हृषीकव्रजे ।
दूने बंधुजने कृत प्रलपने धैर्यं विधातुं पुनः
कः शक्तः कलितामयप्रशमनो वैद्यात्परो विद्यते ॥३॥

सिर में भयानक वेदना हो रही हो, स्वर पड़ गया हो, ज्वर से शरीर जल रहा हो, इन्द्रियां शिथिल होगयी हों, बन्धु दुःखी हों और रो रहे हों उस समय वैद्य के अतिरिक्त धैर्य देने वाला दूसरा कौन समर्थ हो सकता है।

मावोधिवैद्यकमथाऽपिमहाऽमयेषु प्राप्तेषु यो भिषगिति प्रथितस्तमेव ।
आकारयत्यखिल एव विशेषदर्शी लोकोऽपि तेन भिषगेष न दूषणोयः ॥४॥

वैद्यक न जानता हो पर वैद्य के नाम से जो प्रसिद्ध हो बीमारी के समय में लोग उसी को बुलाते हैं, सभी बुलाते हैं जिन लोगों को बहुत अनुभव है वे भी बुलाते हैं इसमें उस वैद्यका क्या दोष है। उसे दोष न देना चाहिए।

निर्वृत्ताध्वरकृत्य ऋत्विजमहोतीर्णापगोनाविकं–
युद्धांते सुभटं च सिद्ध विजयो वोढारमाप्तस्थलः ।
वृद्धं वारवधूजनं चकितवो निर्धृष्टतद्यौवनो
ध्वस्ताऽऽतंकचयश्चिकित्सकमपिद्वेष्टि प्रदेयार्थिनम् ॥५॥

यज्ञ समाप्त होने पर ऋत्विज को, नदी पार जाने पर नाविक को, युद्ध समाप्त होने पर सैनिकों को, स्थान पर पहुंच

आने पर ढोने वाले को, वृद्धा वेश्या को, रोग के दूर होने पर वैद्य को और जिसको देना है वैसे अर्थी को, लोग देखते तक नहीं। उनसे दूरही रहते हैं।

भ्रांता वेदांतिनः किं पठथ शठतयाऽद्यापि चाऽद्वैत विद्यां-
पृथ्वीतत्त्वे लुठंतो विमृशथ सततं कर्कशास्तार्किकाः किम्।
वेदैर्नानागमैः किं ग्लपयथ हृदयं श्रोत्रियाः श्रोत्रशूलै-
र्वैद्यं सर्वानवद्यं विचिनुत शरणं प्राणसंप्रीणनाय ॥६॥

भाई वेदान्ती, क्या तुम पागल होगये हो? आज भी अद्वैत विद्या पढ़ रहे हो। नैयायिको, आजभी पृथ्वी तत्वका विचार करते कर्कश तर्कशास्त्र का विचार कर रहे हो? वेदों से क्यों हृदय सुखा रहे हो? सबसे उत्तम वैद्य-विद्या की शरण जाओ। जिससे प्राणों की रक्षा हो।

कुवैद्योपहास

वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराज सहोदर।
यमस्तु हरति प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च ॥१॥

हे यमराज के सहोदर भाई वैद्यराज! आपको नमस्कार यम तो केवल प्राण ही हरता है और वैद्य प्राण तथा धन दोनों हरते हैं।

मिथ्योषधैर्हंत मृषाकषायैरसह्यलेह्यैरयथार्थतैलैः।
वैद्या इमे वंचित रुग्णवर्गाः पिचण्डभाण्डं परिपूरयंति ॥२॥

झूठी दवाइयों से झूठे काढ़ों से असहनीय लेपों और झूठे तेलों से ये वैद्य रोगियों को ठगते हैं और अपनी मुट्ठी गरम करते हैं।

न धातोर्विज्ञानं न च परिचयो वैद्यकनये
न रोगाणां तत्त्वावगतिरपि नो वस्तुगुणधीः ।
तथाऽप्येते वैद्या इति तरलयंतो जड़ जना–
नसून्मृत्योर्भृत्या इव वसु हरंते गदजुपाम् ॥३॥

धातु से परिचय नहीं, वैद्यक का ज्ञान नहीं, रोगों के विषय में कुछ मालूम नहीं, औषधों के गुण का ज्ञान नहीं, फिर भी ये वैद्य मूर्खों को मोहित करते हैं। यमराज (मृत्यु) के समान रोगियों के प्राण हरते हैं और साथ ही धन भी।

कषायैरुपवासैश्च कृतामुल्लाघतां नृणाम् ।
निजौषधकृतां वैद्यो निवेद्य हरते धनं ॥४॥

उपवास आदि के द्वारा मनुष्य नीरोग हो जाता है, वैद्य जी कहते हैं कि मेरी दवाइयों के द्वारा ऐसा हुआ है, और लोगों से धन लेते हैं।

अज्ञातशास्त्रसद्भावान् शास्त्रमात्रपरायणान् ।
त्यजेद्दूराद्भिषक्पाशान्पाशान्वैवस्वतानिव ॥५॥

जिन्होंने शास्त्रीय रहस्यों को नहीं जाना है अथवा जो केवल शास्त्र ही जानते हैं वैसे वैद्यों को दूर ही से नमस्कार करे,, वे यमराज के पाश हैं, उनका दूर ही रहना अच्छा।

वैयाकरण

(प्रशंसा और निन्दा)

वैयाकरणकिरातादपशब्दमृगाः क्व यांति संत्रस्ताः ।
ज्योतिर्नटविटगायकभिषगाननगह्वराणि यदि न स्युः ॥१॥

वैयाकरण रूपी किरात से डरकर ये अशुद्ध शब्दरूपी मृग कहाँ जाते, यदि ज्योतिषी, नट विट, गायक और वैद्यों की मुखरूपी गुफा न होती ।

कुप्वोः कः पौच शेषोध्यसखिससजुषोरुर्विरामोऽवसानं
शश्छोटीत्यादिशब्दैःसदसि यदि शठाः शाब्दिकाः पंडिताःस्युः ।
तेषां को वाऽपराधः कथयत सततं ये पठंतीह थोन्त—
त्ताथय्याथय्यथय्याधिगधिगधिगधिगथय्यथ्थय्येति शब्दान् ॥२॥

कुप्वोः कः पौच, शेषोध्यसखि, ससजुषोरुर्विरामो वसानम्, शश्छोटो आदि कठिन कठिन शब्दों को रटने वाले वैयाकरण यदि पण्डित कहे जांय तो जो लोग ताथैया ताथेया धिग् धिग् आदि शब्द कहते हैं उन लोगों का क्या अपराध है ?

टिड्ढाणं द्वयसच्चुटूङसिङसो स्तिहसृष्फिसिप्थस्थमि-
ब्वसमस्ताहशिचप्टुनाष्टुरतइञ् शश्छोव्यचोंत्यादिटिः
लोपोऽयोर्वलिवृद्धिरेचियचिमंदाधाध्वदाप्छेचटे
रित्यब्दानखिलान्वयंति कतिचिच्छब्दान् पठंतः कटून् ॥३॥

टिड्ढाणञ् ङसिङसो आदि कर्णकटु शब्दों को रटते रटते वैयाकरण अपना जीवन समाप्त कर देते हैं ।

सूत्रैः पाणिनिनिर्मितैर्बहुतरैर्निष्पाद्य शब्दाऽऽवलिं-
वैकुंठस्तवमक्षमा रचयितुं मिथ्याश्रमाः शाब्दिकाः
पक्वान्नं विविधं श्रमेण विविधा पूपाग्र्यसूपाऽन्वितं
मंदाऽग्नीननुरुंधते मितबलानाघ्रातुमप्यक्षमान् ॥४॥

पाणिनि के बनाये सूत्रों से अनेक शुद्ध शब्द बनाकर वैयाकरण भगवान् की स्तुति-पद्य बनाने का व्यर्थ परिश्रम कर रहा है । बहुत परिश्रम से बनाया पक्वान्न क्या मन्दाग्नि वाले मनुष्य के काम का होता है ? वे तो उसे सूंघ तक नहीं सकते ।

कृतदुरितनिराकरणं व्याकरणं चतुरधीरधीयानः।
बुधगणगणनाऽवसरे कनिष्ठिकायां परं जयति ॥५॥

अशुद्धियों को दूर करनेवाले व्याकरण का अध्ययन बुद्धिमान् करते हैं। जब विद्वानों की गणना होती है तब पहले नाम उन्हीं का आता है।

पातंजले विष्णुपदाऽऽपगायाः पातंजले चापि नयेऽवगाहं।
आचक्षते शुद्धिदमा प्रसूतेराचक्षते रागमधोक्षजेच ॥६॥

गंगा के जल में जिसने अवगाहन किया है; और व्याकरण का जिसने अवगाहन किया है उसी का विष्णु में अनुराग समझा जाता है और उसी की शब्द-शुद्धि समझी जाती है।

नृणामनभ्यस्तफणाभृदीशगिरां दुरापा बुधराजगोष्ठी।
अबुद्धचापश्रुतिपद्धतीनांयुद्धक्षमेयोद्धतयोद्धसार्था ॥७॥

जिसने व्याकरण का अध्ययन नहीं किया है उसे पण्डितों की सभा नहीं प्राप्त हो सकती है। जो बाण विद्या नहीं जानता वह क्या युद्ध में योद्धाओं का साथी हो सकता है?

नांऽगीकृतव्याकरणौषधानामपाटवं वाचि सुगाढमास्ते।
कस्मिंश्चिदुक्ते तु पदे कथंचित्स्वैरं वपुः स्विद्यति वेपते च ॥८॥

जिसने व्याकरण का औषध नहीं पाया है उसके बचन में सदा अपटुता रहती है यदि किसी प्रकार कोई शब्द कहा भी जाय तो शरीर पसीना पसीना हो जाता है और काँपने लगता है।

सूत्रं पाणिनिबद्धं कलयन्पुरुषः समुद्वहति सुदृशम्।
वर्णादीनां धर्मान्बुद्ध्वा विधिवत्प्रयुंक्तेऽसौ ॥९॥

पाणिनि के सूत्रों का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्यों को अच्छी आँखे मिल जाती हैं, वे वर्णो के धर्म जान जाते हैं और उनका उचित प्रयोग करते हैं।

शब्दशास्त्रमनधीत्य यः पुमान् वक्तुमिच्छति वचः सभांतरे।
वन्धुमिच्छति वनेमदोत्कटं हस्तिनं कमलनालतंतुना ॥१०॥

जो मनुष्य बिना व्याकरण पढ़े सभा में बोलना चाहता है वह बन में कमल के सूत से मतवाले हाथी को बाँधना चाहता है।

वीर प्रशंसा

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा।
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापाऽर्जितम् ॥
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते-
तस्मिन्नेव हत द्विपेन्द्र रुधिरैस्तृष्णां छिनत्यात्मनः ॥१॥

मनस्व वीर के लिए न कोई अपना देश है और न विदेश। वह जिस देश में जाता है बाहु के प्रताप से अपने अधीन कर लेता है। दांत नख और पूँछ रूपा अस्त्रों को धारण करने वाला सिंह जिस वन में जाता है वहीं हाथियों के रुधिर से अपनी प्यास मिटाता है।

विनाप्यर्थैर्वीरः स्पृशति बहुमानरेन्नतिपदं
समायुक्तोप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः।
स्वभावादुद्भूतां गुण समुदयाऽवाप्ति विषयां
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते ॥२॥

वीर धन के बिना भी ऊँचे पद पाते हैं। कृपण धनवान् होने पर भी तिरष्कृत होते हैं। सोने की माला पहनने वाला कुत्ता क्या सिंह को पा सकता है ?

एकेनोऽपि हि शूरेण पदाऽऽक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करस्येव स्फारस्फुरति तेजसाः ॥३॥

एक वीर भी समस्त पृथिवी तक को अपने वश में कर सकता है। जिस प्रकार एक सूर्य अपनी किरण समस्त संसार में फैला देता है। उसी प्रकार वीर भी अपना प्रताप सब जगह फैला सकता है।

पल्लवतः कल्पतरोरेष विशेषः करस्य ते वीर ।
भूषयति कर्णमेकः परस्तु कर्णं तिरस्कुरुते ॥४॥

वीर, तुम्हारे हाथ और कल्पतरु के पल्लव में थोड़ा भेद है। कल्पतरु का पल्लव कर्ण (कान) को भूषित करता है, और तुम्हारा हाथ कर्ण (इस नाम के राजा) का तिरस्कार करता है।

जिह्वा

हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये ।
भगवन्नामपीयूषं पिबत्वेमनिशं सखे ॥ १ ॥

जिह्वे ! तू रसों को पहचानने वाली हो, तुम्हें मधुर वस्तु प्रिय है, इस कारण भगवान का नामामृत तुम सदा पिया करो।

अंगेषुमुख्या द्विजमध्यसंस्था वाणाऽनुसंधानपराऽसि नित्यं ।
अंधस्थिर प्रेमरसारसज्ञं नरस्तुतिंत्यज कर्णवत्त्वं ॥ २ ॥

जिह्वे, तुम शरीर के अंगों में प्रधान हो, द्विजो (दातों) के बीच में रहती तो, तुम मनुष्यों की स्तुति करना छोड़ दो।

रसने रचितोऽप्यंजलिस्ते परनिंदापरुषैरलं वचोभिः।
नरकाऽपहरंनमः शिवायेत्यमुमादि प्रणवं भजस्व मंत्रं ॥ ३ ॥

जिह्वे, मैं तुमको हाथ जोड़ता हूं, परनिन्दा करना व्यर्थ है, नमः शिवाय, तथा प्रणव आदि मन्त्रों को जपो, इससे नरक का भय छूट जाता है।

द्वात्रिंशद्दशनद्वेषिमध्ये भ्रमसि नित्यशः।
तदिदंशिक्षिता केन जिह्वे संचार कौशलम् ॥ ४ ॥

जिह्वे, बत्तीस दाँतों के बीच में तुम सदा रहती हो, घूमती हो, वे तुम्हारे शत्रु हैं, महान् कुशलता तुमने कहाँ सीखी।

मूर्ख-निन्दा

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ १ ॥

जिसको स्वयं बुद्धि नहीं है, उसके लिए शास्त्र व्यर्थ है। आँखों के अन्धों को दर्पण से लाभ नहीं होता।

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां तथैव यथा जड़े।
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्युपहंति वा ॥ २ ॥

गुरु, बुद्धिमान और निर्बुद्धि दोनों प्रकार के शिष्यों को समान भाव से पढ़ाता है। उनमें एक का ज्ञान बढ़ा देता है और दूसरे का ज्ञान नष्ट कर देता है, ऐसा नहीं करता।

भवति च पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा ।
प्रभवति शुचांविम्बोद्ग्राहेमणिर्न मृदां चयः ।। ३ ।।

पर फल में बड़ा भेद हो जाता है एक विद्वान् हो जाता है और दूसरा मूर्ख का मूर्ख ही रह जाता है ।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतःपीड़य—
न्पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपिपर्यटन्शशविषाण मासादये-
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥

प्रयत्न करने पर बालु से भी तेल निकल सकता है, प्यासे मनुष्य को मृगतृष्णिका में जल मिल सकता है, घूमता घूमता कभी मनुष्य खरहे की सींग भी पा सकता है, पर मूर्ख मनुष्य समझाया नहीं जा सकता ।

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रांकुरा-
त्समुद्रमपिसंतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये-
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ५ ॥

मगर के मुंह से भी बलपूर्वक मणि निकाला जा सकता है, लहरियों वाला समुद्र भी पार किया जा सकता है, क्रुद्ध सांप भी फूल के समान माथे पर रखा जा सकता है, पर मूर्ख मनुष्य समझाया नहीं जा सकता ।

मूर्खो हि जल्पतां पुंसा श्रुत्वावाचः शुभाशुभाः ।
अशुभं वाक्यमादत्ते पुरोषमिव शूकरः ॥ ६ ॥

मूर्ख मनुष्य लोगों की अच्छी बुरी बातें सुनता है, पर अच्छी बातें छोड़ देता है और बुरी बातें ले लेता है, जिस प्रकार सूअर सब चीज़ों को छोड़ कर विष्ठा ही लेता है ।

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शांतये ।
पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनं ॥ ७ ॥

उपदेश से मूर्ख मनुष्य क्रुद्ध होते हैं प्रसन्न नहीं होते । साँप को दूध पिलाने से उसका विषही बढ़ता है ।

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रंजयति ॥ ८ ॥

जो कुछ नहीं जानता, वह समझाया जा सकता है, और जा बहुत कुछ जानता है वह तो आसानी से समझाया जा सकता है, पर जो मनुष्य थोड़ा जानता है उसको ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते ।

व्यालं बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृंभते-
छेत्तुं वज्रमणीञ् शिरीषकुसुम प्रांतेन सन्नह्यते ।
माधुर्यं मधुबिंदुना रचयितुं क्षारांबुधेरीहते-
नेतुं वांछति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यंदिभिः ॥ ९ ॥

वह मनुष्य हाथी को मृणाल सूत्र से बांधने का प्रयत्न करता है, हीरे को शिरीष के फूल से छेदना चाहता है, और मधु के विन्दु डाल कर क्षार समुद्र को मीठा बनाना चाहता है, जो मनुष्य अमृतस्यन्दी वचनों से खलों को सज्जनों के रास्ते में ले जाना चाहता है ।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदांधः समभवं-
तदासर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदव लिप्तं मम मनः ।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं-
तदा मूर्खोऽस्मिति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ १० ॥

जिस समय मैं थोड़ा जानता था उस समय मैंने अपने को सर्वज्ञ समझा और इससे मुझे बड़ा अहंकार हो गया। पर सज्जनों के साथ से जब मुझे थोड़ी थोड़ी समझ हुई, तब मैंने समझा कि मैं मूर्ख हूं और मेरा सब अहंकार दूर हो गया।

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगंधिजुगुप्सितं-
निरुपमरसं प्रीत्याखादन्नराऽस्थिनिर्भयं ।
सुरपतिमपिश्वापार्श्वस्थं विलोक्य न शंकते-
नहि गणयति क्षुद्रोजंतुः परिग्रहः फल्गुतां ॥ ११ ॥

कुत्ता बिना मांस का एक हड्डी का टुकड़ा जब पा लेता है, उसमें कीड़े पड़े रहते हैं लार से सना रहता है बहुत बुरी गन्ध उससे निकलती है वह उस टुकड़े को बड़ा ही सरस और स्वाद समझता है तथा बड़े प्रेम से खाता है उस समय इन्द्र भी उसके पास आ जाय तो वह किसी प्रकार का भय नहीं करता। छोटा आदमी यह बात नहीं समझता कि उस की बात में कितना सार है।

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपति शिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चाऽपि जलधिम् ।
अधोऽधो गंगेयं पदमुपगता स्तोकमधुना-
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ १२ ॥

गङ्गा स्वर्ग से गिर कर शिव के मस्तक पर आयी, शिव के मस्तक से पर्वत पर, पर्वत से पृथिवी पर और पृथिवी से वह समुद्र में गयी, इस प्रकार गङ्गा ऊपर से गिरती गिरती बहुत नीचे चली गयी। विवेक-भ्रष्टों की यही गति होती है।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक्छत्रेण सूर्याऽऽतपो-
नागेंद्रो निशितांकुशेन समदो दंडेन गोगर्दभौ ।

व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्चविविधैर्मंत्रप्रयोगैर्विषं-
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नाऽस्त्यौषधं ॥ १३ ॥

जल के द्वारा अग्नि शान्त किया जा सकता है, छत्ते से सूर्य-ताप से रक्षा की जा सकती है, हाथी तीखे अंकुश से वश में किया जा सकता है, गौ और गधे दण्डे से वश किये जा सकते हैं, रोग अनेक प्रकार की दवाइयों से दूर किया जा सकता है मंत्रों के द्वारा विष भी उतारा जा सकता है, इस प्रकार सब का औषध है पर शास्त्र-हीन मूर्ख का औषध नहीं है ।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य साहित्य-सङ्गीत से हीन है उसे पूंछ और सींग रहित साक्षात् पशु समझना चाहिए । वह तृण बिना खाये भी जीता है, यह पशुओं का भाग्य है ।

वरं पर्वत दुर्गेषु भ्रांतं वनचरैः सह ।
न मूर्खजन संपर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥१५॥

पर्वत और जंगलों में मूर्खों के साथ भ्रमण करना अच्छा है । पर इन्द्र-भवन में भी मूर्ख का साथ होना अच्छा नहीं ।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुविभारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति ॥१६॥

जिन्हें न विद्या है, न तपस्या, न दान, न ज्ञान, न शील, न गुण और न धर्म है, वे पृथिवी के भार हैं और मनुष्य शरीर धारी मृग की तरह वे इस मर्त्य लोक में घूम रहे हैं ।

मूर्खोऽपि मूर्खं दृष्ट्वा च चंदनादपि शीतलः ।
यदि पश्यति विद्वांसं मन्यते पितृघातकम् ॥१७॥

मूर्ख मूर्ख को देख कर बहुत प्रसन्न होता है वह चन्दन से भी अधिक शीतल हो जाता है। पर जब वह विद्वान् को देखता है तब वह उसे अपना पितृघाती समझता है।

गुणिगणगणनाऽऽरंभे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य ।
तेनांऽवा यदि सुतिनी वद वंध्या कीदृशी भवति ॥१८॥

गुणियों को गणना के समय जिसके नाम के लिए आदर से कलम न उठे ऐसे पुत्र को उत्पन्न करने से यदि माता पुत्रवती हो सकती है तो कहो बन्ध्या कैसी होती है।

अंतःसारविहीनस्य सहायः किं करिष्यति ।
मलयेऽपिस्थितो वेणुर्वेणुरेव न चंदनः ॥१९॥

जो स्वयं दुर्बल है, जिसके भीतर कुछ नहीं है उसको सहायक मिलने का क्या फल हो सकता है, मलय—पर्वत पर का बांस बांस ह रहत है वह चन्दन नहीं हो जाता।

मुक्ताफलैः किं मृगपक्षिणां च मिष्टान्नपानं किमु गर्दभानाम् ।
अंधस्य दीपो बधिरस्यगीतं मूर्खस्य किं धर्मकथा संगः ॥२०॥

पशु-पक्षियों को मोतियों से क्या लाभ, गधे के लिए मिठाई निरर्थक है, अंधे के लिए दीपक, बहरे के लिए गीत और मूर्ख के लिए धर्म-कथा ये सब व्यर्थ हैं।

ये संसत्सुविवादिनः परयशःशल्येन शूलाऽऽकुलाः
कुर्वंतिस्वगुणस्तवेन गुणिनां यत्नाद्गुणाच्छादनं ।
तेषां रोषकषायितोदरदृशां कोपोष्णनिःश्वासिनां-
दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्या जनोद्वेजिनी ॥२१॥

जो सभा में बिवाद करते हैं दूसरों के यश से वहुत व्याकुल होते हैं अपना प्रशंसा करते हैं अपने गुणों का वर्णन करते हैं, और दूसरों के गुणों को छिपाते हैं, जिनकी आँखें क्रोध से लाल रहती है आर गर्म स्वांस निकला करती है। वैसे मनुष्यों की विद्या कृष्ण सर्पमणि के समान मनुष्यों को व्यथित करने लगी है।

ग्रीवास्तंभभृतः परोन्नतिकथामात्रे शिरःशूलिनः
सोद्वेगभूमणप्रलापविपुलक्षोभाभिभूतस्थितेः।
अंतर्द्वेषविषप्रवेशविषमक्रोधोष्ण निश्वासिनः-
कष्टा नूनमपंडितस्यविकृतिर्भीमज्वरारंभभूः ॥२२॥

जिनका गला स्तम्भित हो गया है, वह हिलडुल नहीं सकता, अन्य मनुष्यों की उन्नति की वात सुनते ही जिनके सिर में शूल उत्पन्न हो जाता है, वे उद्विग्न होकर भ्रमण करने लगते हैं बकने लगते हैं और वहुत ही क्षुभित होते हैं, द्वेष विष के अन्तः प्रवेश होने के कारण विषम क्रोध से वे सांस लिया करते हैं मूर्खों की बुरी दशा है, उनके ये विकार भयानक ज्वर के कारण हैं।

मूर्खत्वं सुलभं भजस्व कुमते मूर्खस्य चाऽष्टौ गुणा-
निश्चिंतो बहुभोजनोऽतिमुखरो रात्रिंदिवास्वप्नभाक्।
कार्याकार्यविचारणांधवधिरोमानापमाने समः
प्रायेणामयवर्जितो दृढ़वपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥२३॥

मूर्ख होना आसान है इस लिए मूर्ख होने का यत्न करो, उसके आठ गुण होते हैं। निश्चिन्तता, बहु भोजन, अधिक बोलना, रात दिन सोना, कर्तव्य अकर्तव्य के विचार में अन्धा और बधिर होना, मान और अपमान को समान समझना,

प्रायः नीरोग रहना, पुष्ट शरीर होना। इस प्रकार मूर्ख बड़े सुख से जीता है।

मूर्खं चिन्हानि षडितिगर्वो दुर्वचनं मुखे ।
विरोधी विषवादी च कृत्याऽकृत्यं न मन्यते ॥२४॥

मूर्ख के छः चिन्ह हैं, अहंकार, दुर्वचन बोलना, विरोध रखना विष के समान बोलना और कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान न रखना।

अरण्य रुदितं कृतं शवशरीरमुद्वर्त्तितं
स्थलेऽब्जमवरोपितं सुचिरमूषरे वर्षितम् ।
श्वपुच्छमवनामितं बधिरकर्णजापः कृतो
धृतोऽन्धमुखदर्पणो यदबुधोजन सेवितः ॥२५॥

जो मैंने मूर्ख मनुष्य की सेवा की वह निष्फल हुई। वह अरण्यरोदन के समान हुई, मुर्दे के शरीर में उबटन लगाने के समान हुई। ज़मीन में कमल रोपने के समान हुई। ऊषर में वृष्टि के समान निरर्थक हुई, वैसी सेवा करके मैंने कुत्ते की पूँछ सीधी करने का प्रयत्न किया, बहरे से बातें की और अन्धे के सामने दर्पण रखा।

निर्गुण इति मृत इति च द्वावेकार्थाभिधायिनौ विद्धि ।
पश्य धनुर्गुणशून्यं निर्जीवं यदिह शंसंति ॥२६॥

निर्गुण और मृतक इन दोनों शब्दों का अर्थ एकही है। देखो गुणहीन धनुष निर्जीव हो जाता है। धनुष की रस्सी को भी गुण कहते हैं।

पेटीचीवरपट्टवस्त्रपटलश्वेतातपत्रच्छटा-
शाटीहारकघोटकस्फुटघटाटोपाय तुभ्यं नमः ।

येनानक्षरकुक्षयोपिजगतः कुर्वंति सर्वज्ञता.
भ्रांतिं ये न विना तु हार पदवीं संतोपि कष्टं गताः ॥२७॥

पेटी, अच्छे रेशमी वस्त्र, श्वेत छत्र, हार, घोड़ा आदि आडम्बरों को नमस्कार । इनके द्वारा मूर्ख मनुष्य भी संसार में अपने को सर्वज्ञ बना लेता है, और इनके बिना विद्वान् सज्जन भी बुरी दशा भोगते हैं ।

कर्कश तर्कविचार व्यग्रः किं वेत्ति काव्य हृदयानि ।
ग्राम्य इव कृपिविलग्नश्चंचलनयनावचोरहस्यानि ॥२८॥

कठोर तर्कशास्त्र के विचार में जो व्यग्र हैं वे काव्य-रहस्य क्या समझ सकेंगे ? जिस प्रकार खेती करने वाला-ग्रामीण चंचलाक्षी के बचनों का तत्त्व नहीं समझ सकता ।

दरिद्र-निंदा

उत्थाय हृदि लीयंते दरिद्राणां मनोरथाः ।
बालवैधव्यदग्धानां कुलस्त्रीणां कुचाविव ॥ १ ॥

बालविधवा कुलस्त्रियों के स्तनों के समान दरिद्रों के मनोरथ हृदय ही में उठते हैं और वहीं विलीन हो जाते हैं ।

हे दारिद्रय नमस्तुभ्यं सिद्धोहं त्वत्प्रसादतः ।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन् ॥ २ ॥

हे दारिद्र, तुमको नमस्कार, तुम्हारी कृपा से मैं सिद्ध हो गया हूँ । मैं तो समस्त संसार को देखता हूँ पर मुझे कोई नहीं देखता ।

इह लोकेपि धनिनां परोऽपि स्वजनायते।
स्वजनोऽपि दरिद्राणां तत्क्षणाद्दुर्जनायते ॥ ३ ॥

इस लोक में दूसरे भी धनियों के स्वजन बन जाते हैं, और दरिद्रों के स्वजन भी दुर्जन हो जाते हैं।

रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसस्थायी।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोस्य विश्रामः ॥ ४ ॥

रोगी, सदा प्रवास में रहने वाला, दूसरे का अन्न खाने वाला, दूसरे के स्थान में रहने वाला जो जीता है उसका जीवन मरण है और उसका मरण विश्राम है।

परीक्ष्य सत्कुलं विद्या शीलं शौर्यं सुरूपताम्।
विधिर्ददाति निपुणः कन्यामिव दरिद्रताम् ॥ ५ ॥

उत्तम कुल, विद्या, शील, शूरता, सुन्दरता आदि देख कर कन्या के समान ब्रह्मा दरिद्रता प्रदान करता है। अर्थात् गुणवान् दरिद्र होते हैं।

दारिद्र्यानल संतापः शांतः संतोषवारिणा।
याचकाशाविघातांत दाहः केनोपशाम्यति ॥ ६ ॥

दरिद्रता की अग्नि का सन्ताप सन्तोष के जल से शान्त हो गया, पर याचकों को आशा नष्ट करने से जो दाह उत्पन्न हुआ है वह कैसे शान्त होगा।

अर्था न संति न च मुंचति मां दुराशा
दानान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे।
याञ्चा हि लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजतु किं प्रविलंबितेन ॥ ७ ॥

धन नहीं है, पर दुराशा मुझे नहीं छोड़ती, दान करने से भी मेरा दुलारा मन सङ्कुचित नहीं होता, मांगने से

हलकाई होती है आत्महत्या करने से पाप होता है. हे प्राण। अब तुम स्वयं चले जाओ विलम्ब करने से क्या लाभ।.

मा रोदीश्चिरमेहि वस्त्ररहितान् दृष्ट्वाद्य बालानिमा-
नायातस्तं वत्स दास्यति पिता ग्रैवेयकं वाससी ।
श्रुत्वैवं गृहिणीवचांसि निकटे कुड्यस्यनिष्किंचनो-
निःश्वस्याश्रुजलप्लवप्लुतमुखः पांथः पुनः प्रस्थितः ॥८॥

मत रोओ बेटा, कपड़े नहीं हैं इसलिए मत रोओ, तुम्हारे पिता जब आवेंगे और तुम लोगों को नंगा देखेंगे तो वे वस्त्र और गले का हार देंगे। उस स्त्री का पति भी अपनी झोपड़ी के पास आ गया था अपनी स्त्री की ये बातें सुनकर वह बड़ा दुःखी हुआ दुःख की सांसें उसने ली, आँसू से उस का मुंह भींग गया और पुनः वह लौट गया।

कंथाखंडमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वांके गृहाणार्भकं-
रिक्तं भूतलमत्र नाथ भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः ।
दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशियदा चोरः प्रविष्टस्तदा
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः ॥९॥

कंथरी का यह टुकड़ा मुझे दो या बच्चों को तुम्हीं ले लो, यहां की ज़मीन खाली है आप के नीचे पुआल है। रात को स्त्री पुरुष इस तरह की बातें करते थे उसी समय उनके घर में चोर आये। उनकी बातें सुन कर दूसरी जगह से चुरा कर जो वस्त्र वे ले आये थे वह उन पर डाल कर वे चले गये।

वृद्धोऽन्धः पतिरेष मंचकगतः स्थूणावशेषं गृहं
कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो ।

यत्नात्संचिततैलविंदुघटिका भग्नेति पर्याकुला
दृष्ट्वा गर्भभराकुलां निज वधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति ॥१०॥

मेरा पति बूढ़ा है वह खाट पर पड़ा है, छाँन में थून भी नहीं है, बरसात के दिन आगये, बच्चे का कुशल सम्वाद भी न मिला, बड़े प्रयत्न से मिट्टी की कुल्हिया में जो तेल मैंने रखा था, वह कुल्हिया फूट गयी, इससे वह वृद्धा बहुत दुःखी हुई, और अपनी बहू का पूर्ण गर्भ देखकर वह रोने लगी ।

अंबा तुष्यति न मया न स्नुषया सापि नाम्बया न मया ।
अहमपि न तया न तया वद राजन् कस्य दोषोयम् ॥११॥

माता मुझ से प्रसन्न नहीं रहती और अपनी बहू से भी प्रसन्न नहीं रहती, और वह बहू न माता से प्रसन्न रहती है और न मुझ से । मैं भी न माता से और न बहू से प्रसन्न रहता हूँ । महाराज ! कहिए, इसमें दोष किसका है ।

चांडालश्च दरिद्रश्च द्वावेतौ सदृशौ सदा ।
चांडालस्य न गृह्णंति दरिद्रो न प्रयच्छति ॥१२॥

चाण्डाल और दरिद्र दोनों बराबर है। चाण्डाल की कोई वस्तु कोई छूता नहीं और दरिद्र किसी को दे नहीं सकता ।

नो सेवा विहिता गुरोरपि मनाङ्नो वा कृतं पूजनं—
देवानां विधिवन्न वा शिव शिव स्निग्धादयः सेविताः ।
किन्तुत्वच्चरणौ सरस्वति रसादाजन्मनः सेवितौ
तस्मान्मां विजहाति सा भगवती शंके सपत्नी तव ॥१३॥

देवी सरस्वती, मैंने गुरुओं की सेवा न की, विधि पूर्वक देवताओं की पूजा भी न की, अपने स्वजन संबन्धियों की ओर भी न देखा, बड़े प्रेम से आजन्म तुम्हारे ही चरणों

की मैंने सेवा की । मालूम होता है इसी कारण वे देवी मुझ से रुष्ट हो गयी हैं जो तुम्हारी सौत हैं, अर्थात् लक्ष्मी ।

दारिद्र्य शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा ।
विपन्न देहे मयि मन्दभाग्ये ममेति चिंता क्व गमिष्यसि त्वम् ॥१४॥

दारिद्र्य, मैं तुम्हारे ही लिए चिन्तित हूं, आज तक मित्र समझ कर तुमने मेरे यहाँ वास किया, अब मेरे मर जाने पर तुम कहाँ जाओगे ?

दग्धं खांडवमर्जुनेन बलिना दिव्यैर्द्रुमैःसेवितं
दग्धा वायुसुतेन रावणपुरी लंका पुनः स्वर्णभूः ।
दग्धः पंचशरः पिनाकपतिना तेनाऽप्ययुक्तं कृतं-
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनाऽपि दग्धं नहि ॥१५॥

बलवान् अर्जुन ने खाण्डव वन को जला दिया, जिसमें अनेक उत्तम वृक्ष थे, वायुपुत्र हनुमान ने सोने की लंका जला दी, महादेव ने कामदेव को जला दिया, इन सब ने बुरा ही किया । पर जिस दरिद्रता से जनता की हानि होती है उसको किसी ने भी न जलाया ।

द्वाविमावंभसि क्षेप्यौ गाढ़ं बद्ध्वा गले शिलाम् ।
धनिनं चाऽप्रदातारं दरिद्रं चाऽतपस्विनम् ॥१६॥

गले में मजबूत पत्थर बाँध कर इन दोनों को जल में डुबा देना चाहिए, जो धनी दाता न हो और जो दरिद्र तपस्वी न हो ।

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह सखे दारिद्र्य भारं गुरूं
श्रांतस्तावदहं चिरान्मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम् ।
इत्युक्त्वं धनवर्जितेन सहसा गत्वाश्मशाने शवं
दारिद्र्यान्मरणं वरंवरमिति ज्ञात्वैव तूष्णींस्थितम् ॥१७॥

एक दरिद्र ने मुर्दे से जाकर कहा, भाई उठो, एक क्षण के लिए उठो, यह दरिद्रता का भार थोड़ी देर उठाओ, मैं थक गया हूँ । मैं थोड़ी देर मरने का सुख भोगूँ ।

यो गंगामतरत्तथैव यमुनां यो नर्मदां शर्मदां
का वार्ता सरिदंबुलंघनविधैा यश्चार्णवांस्तीर्णवान् ।
सोऽस्माकं चिरमास्थितोऽपि सहसा दारिद्रय नामा सखा
त्वद्दानांऽबुसरित्प्रवाहलहरीमग्नो न संभाव्यते ॥१८॥

जिसने गंगा पार किया, यमुना पार किया, और शर्म (कल्याण) देने वाली नर्मदा पार किया, अन्य नदियों को कौन चलावे, जिसने समुद्र भी पार किये, पर दारिद्रय नाम का हमारा मित्र सदा साथ रहा । अब वह आपके दान-जल के प्रवाह में डूब गया है, दिखायी नहीं पड़ता ।

दारिद्रयान्मरणाद्वा मरणं संरोचते न दारिद्रयम् ।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्रयमनंतकं दुःखम् ॥१९॥

दरिद्रता और मृत्यु इनमें मुझे मृत्यु ही अच्छी लगती है, दरिद्रता नहीं । मृत्यु में थोड़े कष्ट होते हैं और दरिद्रता के कष्टों का ठिकाना नहीं ।

अत्यंत विमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरुषे ।
मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत्कुतः सुखम् ॥२०॥

भाग्य प्रतिकूल हो जाय, सब प्रयत्न और सामर्थ्य निष्फल हो जायं, उस समय मनस्वी दरिद्र के लिए वन के अतिरिक्त और कहां सुख हो सकता है ।

दारिद्रयाद्धियमेति ह्रीपरिगतः सत्वात्परिभ्रश्यते
निःसत्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ।

निर्विण्णः शुचमेति शोकनिहतो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनताः सर्वापदामास्पदम् ॥२१॥

दरिद्रता से लज्जा आती है, लज्जित मनुष्य बलहीन हो जाता है बलहीन का पराजय होता है पराजय से ग्लानि होती है, ग्लानि से शोक होता है, शोक से बुद्धि नष्ट होती जाती है और निर्बुद्धिता से नाश हो जाता है । यह एक दरिद्रता सब विपत्तियों का मूल है ।

भये लाजानुच्चैः पथिवचनमाकर्ण्य गृहिणी
शिशोः कर्णौ यत्नात्सुपिहितवती दीनवदना ।
मयि क्षीणोपाये यदकृत दृशावश्रुशवले
तदन्तःशल्यं मे त्वमिह पुनरुद्धर्तुमुचितः ॥२२॥

रास्ते में किसी ने जोर से "लावा" कहा, गृहिणी ने इस शब्द को सुनकर बड़े यत्न से बच्चे के कान बन्द कर दिये, जिसमें भूखा बच्चा लावा का नाम न सुन सके, नहीं तो वह मांगने लगेगा । मैं निरुपाय था यह जानकर गृहिणी की आंखें भर आयीं, इस समय वह कांटे के समान मेरे हृदय में चुभ रहा है ।

दूयेकांताकरं वीक्ष्य मणिकंकणवर्जितम ।
अतः परं परं दूये मणिकं कणवर्जितम् ॥२३॥

मणि जड़ित कङ्कण से शून्य स्त्री का हाथ देख कर मैं बहुत दुःखी हूं । इससे भी अधिक दुःखी माणीक (मिट्टी का बड़ा वर्तन जिसमें अन्न रख आता है) को खाली देख कर हूं ।

एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतींदोरिति यो बभाषे ।
न तेन दृष्टं कविना समस्तं दारिद्र्यमेकं गुणकोटिहारि ॥२४॥

अनेक गुणों में एक दोष छिप जाता है, जिस प्रकार चन्द्रमा का कलङ्क छिप जाता है ऐसा कहने वाले उस कवि ने यह बात नहीं जानी है कि एक दरिद्रता का दोष सब गुणों को नष्ट कर देता है।

रात्रौ जानुर्दिवा भानुः कृशानुः संध्ययोर्द्वयोः
पश्य शीतं मयानीतं जानुभानुकृशानुभिः ॥ २५ ॥

रात में जानु, दिन में भानु (सूर्य) प्रातः और सायं कृशानु (अग्नि) इस प्रकार जानु भानु और कृशानु से मैंने शीत बिता दिया।

क्षुत्क्षामाः शिशवः शवा इव भृशं मंदाऽशया बांधवा
लिप्ता जर्जर कर्करी जतुलवैर्नो मां तथा बाधते ।
गेहिन्या त्रुटितांऽशुकं घटयितुं कृत्वा सकाकु स्मितं-
कुप्यन्ती प्रतिवेशिलोकगृहिणो सूचीं यथा याचति ॥ २६ ॥

लड़के भूख से व्याकुल होकर मुर्दे के समान हो गये हैं, बांधव निराश हो गये हैं। घड़े के मूंह पर मकड़ी ने जाला बुन दिया है पर इन बातों को देखकर मुझे दुःख नहीं होता। गृहिणी अपना फटा कपड़ा सीने के लिए पड़ोसिन से सूई मांगती है और वह ताने से हँसकर क्रोध करती है यही हमारे दुःख का प्रधान कारण है।

दारिद्र्य भोस्त्वं परमं विवेकि गुणाऽधिके पुंसि सदानुरक्तं ।
विद्याविहीने गुणवर्जिते च मुहूर्तमात्रं न रतिं करोषि ॥ २७ ॥

दारिद्र्य ! तुम बड़े विवेकी हो। गुणवान् मनुष्यों से ही तुम्हारा अधिक प्रेम रहता है, मूर्ख, निर्गुण मनुष्यों से तो तुम एकक्षण के लिए भी प्रेम नहीं करते।

भद्रे वाणि ममाऽऽनने कुरु दयां वर्णाऽनुपूर्व्या चिरं
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि याहि करुणे प्रज्ञे स्थिरत्वं व्रज ।
लज्जे तिष्ठ पराङ्मुखी क्षणमहो तृष्णे पुरः स्थीयतां
पापो यावदहं ब्रवीमि धनिनां देहीति दीनं वचः ॥ २८ ॥

भगवती सरस्वती, कृपा करो, सुन्दर सिलसिलेवार वाक्य के रूप में मेरी जिह्वा पर वास करो। चित्तस्वस्थ्य हो जाओ, करुणे चली जाओ, बुद्धि, तुम अचल हो जाओ, लज्जे मुँह खोलो, तृष्णे, तुम आगे आओ, जब तक मैं पापी, धनियों के सामने "देहि" यह दीन वचन कहूं।

अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणं पितामहाद्यैरुपभुक्तयौवनः ।
अलंकरिष्यत्यथ पुत्र पौत्रकान् मयाऽधुना पुष्पवतेव धार्यते ॥ २९ ॥

यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर का भूषण रहा है, जब यह नया था तब पितामह ने इसका उपयोग किया था, अब यह मेरे पुत्र और पौत्रों को अलंकृत करेगा। मैं इसे पुष्प के समान ही रखता हूं।

उत्तमर्णधनदानशंकया पावकोत्थ शिखयाहृदिस्थया ।
देव दग्धवसना सरस्वती नास्य तोवहिरुपैति लज्जया ॥ ३० ॥

हृदय में महाजन को धन देने की चिन्ता अग्निशिखा के समान जल रही है—महाराज, उसी अग्नि में देवी सरस्वती के वस्त्र जल गये हैं इस कारण वह विचारी मुँह के बाहर नहीं निकलतीं।

दौर्गत्येन समीरिता हृदयतः कंठं समालंबते
कंठात्कष्टतरं कथं कथमपि प्राप्नोति जिह्वांचलं ।
लज्जा कीलक कीलितेव निविडं तस्मान्ननिर्यात्यहो
वाचा प्राण परिक्षयेपि महतां देहीति नास्तीति च ॥ ३१ ॥

दरिद्रता के द्वारा उत्तेजित होकर हृदय से कण्ठ तक वह आयी, कंठ से बड़े बड़े कष्टों से किसी प्रकार वह जिह्वा तक आयी। लज्जारूपी कील से वह जिह्वा में ही जड़ दिया गया। इससे बाहर नहीं निकलता। भले आदमियों के मुंह से प्राण जाने पर भी "दो" और "नहीं" ये दो शब्द नहीं निकलते।

> संगं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते संभाष्यते नादरा-
> त्संप्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते।
> दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया-
> मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम् ॥ ३२ ॥

कोई इसका साथ नहीं करता, आदरपूर्वक कोई बोलता भी नहीं। उत्सव आदि में धनियों के घर जब यह जाता है तो निरादर से देखा जात है। इसके पास थोड़े वस्त्र हैं इस कारण धनियों से यह दूर ही रहता है। मैं समझता हूं कि दरिद्रता छठाँ पाप है।

> किं करोमि क्व गच्छामि कमुपैमि दुरात्मना।
> दुर्भरेणोदरेणाहं प्राणैरपि विडंबितः ॥ ३३ ॥

क्या करूं? कहाँ जाऊं? किसके पास जाऊं? इस न भरने वाले दुरात्मा पेट से प्राणों पर आ बनी है।

> ख्यातो विश्वोद्धरण विधिना नाथ विश्वंभरस्त्वं-
> मन्येमा द्रागजठरपिठरी पूरणे कुंठ शक्तिः।
> शक्तिस्मेरे विबुध सदसि प्रेक्ष्यमा मास्तु लज्जा-
> यद्विश्वेभ्योप्यहमिहवहि भारभंगी करिष्ये ॥ ३४ ॥

नाथ, आप विश्व-संसार-का भरण करते हैं इस कारण आप विश्वम्भर कहे जाते हैं। पर मालूम होता है कि हम

लोगों का पेट भरने में आप की भी शक्ति कुण्ठित है। आप देवताओं की सभा में मुझे देख लज्जित न हों, क्योंकि मैं कह दूंगा कि मैं विश्व से बाहर हूँ ।

राजनीति

राजास्य जगतो वृद्धेहेतुर्वृद्धाभिसंगतः ।
नयनानंदजननः शशांक इव वारिधेः ॥१॥

राजा इस संसार के कल्याण का कारण है, यह बात बूढ़े भी मानते हैं। उसे देख कर प्रजा प्रसन्न होती है, जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर समुद्र प्रसन्न होता है।

धार्मिकं पालनपरं सम्यक्परपुरंजय ।
राजानमभिमन्यंते प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ २ ॥

जो राजा धर्मात्मा है, प्रजा का पालन करने वाला है, शत्रुओं के नगर जीतने वाला है प्रजा उसको प्रजापति के समान मानती है।

पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः ।
विकलेपिहि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ॥ ३ ॥

राजा मेघ के समान प्राणियों का आधार है मेघ पानी बरसा कर प्राणियों को सुखी करता है और राजा पालन पोषण के द्वारा उसे सुखी करता है। मेघ के टूटने पर भी प्राणी जी सकते हैं पर राजा के टूटने पर उसका जीना सम्भव नहीं।

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्धयति पार्थिवं ।
वर्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तन्नाशेऽन्यत्सदप्यसत् ॥ ४ ॥

राजा प्रजा की रक्षा करता है, और प्रजा राजा को बढ़ाती है। बढ़ाने की अपेक्षा रक्षण का अधिक महत्व है, क्योंकि रक्षण के बिना बढ़ाना रहने पर भी नहीं के समान है।

आत्मानं प्रथमं राजा विनये नोपपादयेत्।
ततोमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः पुत्रांस्ततः प्रजाः॥ ५॥

सब से पहले राजा को स्वयं विनयी बनने का प्रयत्न करना चाहिए, तदनन्तर वह अमात्य को, पुनः नौकरों को इसके पश्चात् अपने पुत्रों को फिर प्रजा को वह विनयी बनावे।

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
लोकास्तदनुवर्तंते यथा राजा तथा प्रजाः॥ ६॥

राजा यदि धर्मात्मा हो तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है, राजा पापी हुआ तो प्रजा भी पापी हो जाती है, लोक राजा का ही अनुवर्तन करते हैं। जैसा राजा होता है प्रजा भी वैसी ही होती है।

नृपाणां च नराणां च उभयोस्तुल्यमूर्तिता।
आधिक्यं तु क्षमा धैर्यमाज्ञा दानं पराक्रमः॥ ७॥

राजा भी दूसरे मनुष्यों के समान ही होता है। दोनों के हाथ पैर मुंह आदि समान ही होते हैं। पर क्षमा, धीरता, आज्ञा देने की शक्ति और पराक्रम ये राजा में अधिक होते हैं।

सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः।
बिनीतात्मानरपति भूयिसी श्रियमश्नुते॥ ८॥

जिस राजा में दीवान सेना आदि का प्रेम रहता है, जो सदा प्रजा का पालन करने में तत्पर रहता है, और जो विनयी होता है वह विशाल लक्ष्मी का अधिकारी होता है ।

प्रजां न रञ्जयेद्यस्तु राजा रक्षादिभिर्गुणैः ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकं ॥ ९ ॥

जो राजा रक्षा आदि गुणों के द्वारा प्रजा को प्रसन्न न कर सके उसका राज्य व्यर्थ है । जिस प्रकार बकरी के गले का स्तन निरर्थक होता है ।

अजामिव प्रजां हन्याद्यो मोहात्पृथिवीपतिः ।
तस्यैका जायते तृप्तिर्द्वितीयस्य कथंचन ॥ १० ॥

जो राजा अज्ञान के कारण बकरी के समान अपनी प्रजा को मारता है, इससे केवल उसी की तृप्ति होती है, इससे केवल वही प्रसन्न होता है ।

प्रजापीड़न संतापात्समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः कुलंश्रियं प्राणान्नादग्ध्वाविनिवर्तते ॥ ११ ॥

प्रजापीडन के ताप से जो आग उत्पन्न होती है वह राजा का कुल, लक्ष्मी और प्राणों को जलाकर बुझती है ।

यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिवर्द्धितः ।
फलप्रदो भवेत्काले तद्वल्लोकाः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

जिस प्रकार एक छोटे बीज की यत्नपूर्वक रक्षा की जाय तो वह समय पाकर फलता फूलता है उसी प्रकार प्रजा की रक्षा की जाय तो वह समय पर फल देती है ।

हिरण्यधान्यरत्नानि स्त्रियो वारण वाजिनः ।
तथान्यदपि यत्किंचित्प्रजाभ्यः स्यान्महीपतेः ॥ १३ ॥

सोना, अन्न, रत्न, स्त्री, हाथी घोड़ा तथा और भी सब चीज़ें राजा को प्रजा से मिलती हैं ।

उत्खातान्प्रतिरोपयन्कुसुमितांश्चिन्वंल्लघून्वर्धय
न्नत्युच्चान्नमयन्पृथूंश्च लघयन्विश्लेषयन् संहतान्
क्षुद्रान्कंटकिनो बहिर्नियमयन्स्वारोपितान्पालय-
न्मालाकार इवप्रयोग निपुणो राजा चिरं तिष्ठति ॥ १४ ॥

जो राजा बाग के माली के समान उखड़े हुओं को रोपता है, फूले हुओं से फूल चुनता है, छोटों को बढ़ाता है, बढ़े हुओं को नवाता है, बढ़े हुओं को छोटा बनाता है, मिले हुओं को अलग अलग करता है छोटे छोटे कटीलों (पेड़ या छोटे शत्रु) को बाहर निकालता है अपने रोपे हुओं का पालन करता है, इस प्रकार प्रयोग निपुण राजा बहुत दिनों तक राज्य करता है ।

अकृत्वा निजदेशस्य रक्षां यो विजिगीषते ।
सनृपः परिधानेन वृत्तमौलिः पुमानिव ॥ १५ ॥

जो राजा अपने देश की रक्षा बिना किये ही दूसरे देशों पर चढ़ाई करता है वह उस मनुष्य के समान है जो धोती को माथे पर लपेट लिये हो । अर्थात् धोती न पहन कर धोती का साफा बांध ले ।

विजिगीषुररिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोथ मध्यमः ।
उदासीनोन्तरांतर्धि रित्येषा नृपतेः स्थितिः ॥ १६ ॥

राजा का शत्रु, उसके मित्र, सीमा पर के राजा, अपने और शत्रु के बीच का राजा उदासीन—दूर का राजा, यही राजा की स्थिति है, इन्हीं से उसका सम्बन्ध है ।

निर्विषोपि यथा सर्पो फणाटोपैर्भयंकरः ।
तथाडंबरवान् राजा न परैरभिभूयते ।। १७ ।।

जिस प्रकार विषहीन सर्प फण फैलाकर भयंकर बनता है, लोगों को भयभीत करता है, उसी प्रकार आडंबर रखने वाला राजा शत्रु से पराजित नहीं होता ।

पुष्पैरपिनयोद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ।
जये भवति संदेहः प्रधान पुरुपक्षयः ।। १८ ।।

फूलों के द्वारा युद्ध करना बुरा है, तीखे बाणों के द्वारा युद्ध की तो बात ही अलग है क्योंकि युद्ध में जय का निश्चय नहीं और अच्छे अच्छे वीरों के नाश का भय बना रहता है ।

भूमिर्मित्रं हिरण्यंवा विग्रहस्य फलत्रयं ।
नास्त्येकमपि यद्येषां न तु कुर्यात्कथंचन ।। १९ ।।

भूमि, मित्रता और सोना (धन) ये तीन युद्ध के फल है । जिस युद्ध में इन तीनों में का एक भी न हो, वैसा युद्ध कभी न करे ।

साम्नैवहिप्रयोक्तव्यमादौकार्यं विजानता ।
साम्ना सिद्धानिकार्याणि विक्रियां यांति न क्वचित् ।। २० ।।

साम के द्वारा ही कार्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि साम के द्वारा जो कार्य सिद्ध होते हैं वे नष्ट नहीं होते ।

नविश्वसेदमित्रस्य मित्रस्यापि न विश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृंतति ।। २१ ।।

शत्रुओं पर विश्वास न करे और मित्रों पर भी विश्वास न करे। क्योंकि विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है वह जड़ मूल से नाश कर देता है।

शपथैः संधितस्यापि न विश्वासं व्रजेद्रिपोः।
राज्यलोभाधतो वृत्रः शक्रेण शपथैर्हतः ॥ २२ ॥

शत्रु शपथ करे तो भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि राज के लोभ से शपथ के कारण ही इन्द्र ने वृत्र को मारा था।

उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत्।
पादलग्नं करस्थेन कंटकेनैव कंटकम् ॥ २३ ॥

किसी शत्रु को उपकार के द्वारा अपने पक्ष में करले, पुनः उसके द्वारा अपने दूसरे शत्रु का नाश करे। जिस प्रकार पैर में लगा एक कांटा हाथ में लिये हुये दूसरे कांटे के द्वारा निकाला जाता है।

नोपेक्षितव्यो विद्वद्भिरामयोरिरवज्ञया।
वन्हिरल्पोपि संवृद्धः कुरुते भस्मसाद्वनम् ॥ २४ ॥

विद्वान् को चाहिए कि वह तिरस्कार की दृष्टि से शत्रु और रोग की उपेक्षा न करे। आग का छोटा टुकड़ा भी बढ़ कर समूचे बन का नाश कर देता है।

कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत्।
काले काले च मतिमानुत्तिष्ठेत्कृष्णसर्पवत् ॥२५॥

समय प्रतिकूल होने पर कछुए के समान अपने अङ्गों को छिपाकर राजा शत्रु की मार भी सहले। पुनः समय आने पर बुद्धिमानी के साथ कृष्ण सर्प के समान उठ खड़ा हो।

तस्माद्भयाद्धि भेतव्यं यावद्भयमनागतं।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥२६॥

भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक भय सामने न आवे। जब भय सामने आ जाय तो निर्भय हो कर प्रहार करना चाहिये ।

परोपि हितवान्बंधुर्बंधुरप्यहितः परः ।
अहितो देहजोव्याधि हितमारण्यमौषधं ॥२७॥

दूसरा भी यदि हितकारी हो तो वह मित्र है, और मित्र भी यदि अहितकारी है तो वह शत्रु है। शरीर में उत्पन्न रोग अहित है और जङ्गल में उत्पन्न दवा हित है ।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रासं ग्रस्तं परिणमेच्चयत् ।
हितं च परिणामेस्यात्तदधं भूतिमिच्छता ॥२८॥

अपना कल्याण चाहने वालों को चाहिए कि वह वही ग्रास उठावे जो निगल जा सके, निगलने पर पच जाय और जो अन्त में हितकारी हो। राजा को वही काम हाथ में लेना चाहिए जो वे करसकें तथा जिसका अन्न उनके लिए कल्याण कारी हो।

मा तात साहसं कार्षीर्विभवैर्गर्वमागतः ।
स्वगात्राण्यपि भाराय भवंति हि विपर्यये ॥२९॥

भैया, इस समय तुम्हारे पास धन हुआ है इस कारण साहस मत करो, क्योंकि धन के चले जाने पर अपना शरीर भी भारी हो जाता है, अर्थात् उस समय तुम्हें दूसरों की ज़रूरत होगी ।

मा त्वं तात बलेस्थित्वा बाधिष्ठा दुर्बलं जनं ।
नहि दुर्बलदग्धानां कुले किंचित्प्ररोहति ॥३०॥

भैया, तुम बलवान् होकर दुर्बलों को दुःख मत दो, क्योंकि दुर्बलों के द्वारा जलाये हुओं के कुल में कुछ भी नहीं होता।

यानि मिथ्याभिभूतानां पतंत्यश्रूणि रोदतां।
तानि संतापकान्घ्नंति सपुत्रपशुबांधवान् ॥३१॥

बिना कारण सताये हुओं के रोने से जो आंसू गिरते हैं वे आँसू सताने वाले को पुत्र पशु तथा बन्धुओं के समेत मार डालते हैं।

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
वृंतादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्रं पतंति ते ॥३२॥

धृतराष्ट्र, जो ब्राह्मणों के संबन्ध में वीरता दिखाते हैं, स्त्रियों, अपनी जाति वालों तथा गौओं के प्रति जो वीरता दिखाते हैं, वे पके फल के समान अपने गुच्छे से गिर जाते हैं।

देव ब्रह्मस्व पुष्टानि सैन्यानि पृथिवीपतेः।
युद्धकाले विशीर्यंते सैकते सेतवो यथा ॥३३॥

जो सेना देवता और ब्राह्मण के बल से एकत्रित की जाती है अथवा जो स्वयं एकत्र होती है वह युद्ध के समय फिसल जाती है, जिस प्रकार बालू पर का बांध फिसल जाता है।

प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत्।
एवं विद्वानविद्वांश्च ब्राह्मणे दैवतं परं ॥३४॥

अग्नि का संस्कार किया गया हो या न किया गया हो, पर अग्नि महान् देव है, इसी तरह विद्वान् हो या अविद्वान् हो, ब्राह्मण महान् देव है।

अदैवं दैवतं कुर्यादुदैवतं चाप्यदैवतं ।
ब्राह्मणा लोकपालांश्च सृजेपुरतिकोपिताः ॥३५॥

क्रोध करने पर ब्राह्मण देवता को अदेवता और अदेवता को देवता बना देते हैं, नये लोकपालों की भी वे सृष्टि करते हैं।

युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ।
तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपाहि वै द्विजाः ॥३६॥

जिस समय जो धर्म हो और उस धर्म के पालने वाले जो ब्राह्मण हों उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि समय का प्रभाव उन पर भी पड़ता है। वे भी समय के अनुरूप ही होते हैं।

आक्रम्य ब्राह्मणैर्भुक्तं परिक्षीणैश्च बांधवैः ।
गोभिश्च नृपशार्दूल राजसूयाद्विशिष्यते ॥३७॥

ब्राह्मण यदि ज़बरदस्ती भी खाजायं, बांधवों के पालन पोषण करने के कारण जो नष्ट हो गया, जो गौ खा ले, तो इनका राजसूय यज्ञ से बढ़कर पुण्य होता है।

गतश्रीर्गणकान्द्वेष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् ।
गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्वेष्टि भारत ॥३८॥

जिसकी लक्ष्मी जाने वाली होती है वह ज्योतिषियों से द्वेष करता है, जिसकी आयु थोड़ी रह गयी है वह वैद्यों से द्वेष करता है, और जिसकी लक्ष्मी तथा आयु जाने वाली होती है वही ब्राह्मणों से द्वेष करता है।

बुद्धाकलुष भूतायां विकारे प्रत्युपस्थिते ।
अनयोनयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥३९॥

जब बुद्धि विपर्यय हो जाती है, जब सब बातें विपरीत दिखायी पड़ने लगती हैं, तब अन्याय भी न्याय के समान मालूम पड़ता है और वह मन से दूर भी नहीं होता ।

न कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृतति कस्यचित् ।
कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनं ॥४०॥

काल तलवार उठाकर किसी का सिर नहीं काटता, काल का बल केवल इतना ही है कि मनुष्य उलटा समझने लग जाय ।

जानन्नपिजनो दैवात्प्रकरोति विगर्हितं ।
न कर्म गर्हितं लोके कस्यचिद्रोचतेकृतं ॥४१॥

मनुष्य जानता भी है पर वह निन्दित काम करता है, निन्दित काम संसार में किसी को भी प्रिय नहीं है ।

मा तात संपदामग्र मा रूढोस्मीतिविश्वसीः ।
दुरारोह परिभ्रंश विनिपातोति दारुणः ॥४२॥

भाई, मैं बहुत अधिक धनी हो गया हूं इस बात पर विश्वास मत करो, क्योंकि जो बहुत ऊंचा चढ़ता है उसका गिरना भी बड़ा ही भयानक होता है ।

कितवा यं प्रशंसंति यं प्रशंसंति चारणाः ।
यं प्रशंसंति वंधक्यः स पार्थ पुरापधमः ॥४३॥

धूर्त जिसकी प्रशंसा करें, चारण जिसकी प्रशंसा करें और दुराचारिणी स्त्रियां जिसकी प्रशंसा करे उसे नीच मनुष्य समझना चाहिए ।

राजानो यं प्रशंसंति यं प्रशंसंति वै द्विजाः ।
साधवो यं प्रशंसंति स पार्थ पुरुषोत्तमः ॥४४॥

राजा जिसकी प्रशंसा करे, ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करे और सज्जन जिसकी प्रशंसा करें, वह श्रेष्ठ पुरुष है।

प्रज्ञागुप्तशरीरस्य किं करिष्यंति संहताः ।
गृहीतहस्तछत्रस्य वारिधारा इवारयः ॥४५॥

जिसने बुद्धि के द्वारा अपने शरीर की रक्षा कर ली है, उसका दलवद्ध होकर भी कोई शत्रु क्या करेगा, जिसके हाथ में छाता है उसका वृष्टि क्या करती है।

बहूनामप्यसाराणां समुदायो हि दारुणः ।
तस्याभृत्याः प्रकर्तव्यास्तेहि सर्वं क्रियाक्षमाः ॥४६॥

अनेक निर्बलों का समुदाय भी वड़ा भयानक होता है। राजा को वैसे नौकर रखने चाहिए जो सब काम कर सकें।

तृणैरावेष्ट्यते रज्जुस्तया नागोहि बध्यते ।
एवं ज्ञात्वा नरेंद्रेण भृत्या कार्या विचक्षणाः ॥४७॥

तिनकों से रस्सी बनायी जाती है जिससे हाथी भी बांध लिया जाता है यह समझकर राजा को नौकर रखने चाहिए।

ताड़ितोपि दुरुक्तोपि दंडितोपि महीभुजा ।
न चिंतयति यः पापं स भृत्योर्हो महीभुजां ॥४८॥

राजा मारें गाली दें दण्ड दें फिर भी जो उनके विषय में बुरी बातें न सोचे, उनके अपकार करने का विचार न करे, वही राजा का भृत्य होने के योग्य है।

योनाहूतः समभ्येति द्वारे तिष्ठति सर्वदा ।
पृष्ठः सत्यं मितं ब्रूते स भृत्योर्हांमहीभुजां ॥४९॥

जो बिना बुलाये आवे, और सदा द्वार पर खड़ा रहे, पूछने पर सत्य और थोड़ा बोले, वही मनुष्य राजा के भृत्य होने के योग्य है ।

सालस्यं मुखरं क्रूरं स्तब्धं व्यसनिनं शठं ।
असंतुष्टमभक्तं च त्यजेद्भृत्यं नराधिपः ॥ ५० ॥

जो आलसी है बकबादी है, क्रूर है, जड़ है, व्यसनी है शठ है, असन्तुष्ट है, जो राजा का भक्त नहीं है, ऐसे भृत्य को राजा त्याग कर दे ।

रिक्ताः कर्मणि पटवस्तृप्तास्त्वलसाभवंति भृत्या ये ।
तेषां जलौकसामिव पूर्णानांरिक्तताकार्या ॥ ५१ ॥

जो जब तक खाली रहते हैं तब तक बड़े प्रेम से काम करते हैं, पर पूर्ण होने पर आलसी हो जाते हैं, राजा ऐसे भृत्यों की जोंक के समान पूर्णता दूर कर दे, उन्हें खाली कर दे ।

क्रूरं व्यसनिनं लुब्धमप्रगल्भं भयाकुलं ।
मूर्खमन्यायकर्तारं नाधिपत्येन योजयेत् ॥ ५२ ॥

क्रूर, व्यसनी, लोभी, कायर, डरपोंक, मूर्ख, अन्यायकारी मनुष्य के हाथ में अधिकार न दे ।

न योगिभिर्विना राज्यं नास्ति भूपेहि केवले ।
तस्मादमीविधातव्यारक्षितव्याः प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥

योगियों के बिना केवल राजाओं से ही राज्य नहीं चलता इस कारण बड़े यत्न से योगियों की रक्षा करनी चाहिए ।

वेदवेदांगतत्वज्ञो जपहोमपरायणः ।
आशीर्वादपरो नित्यमेष राजपुरोहितः ॥ ५४ ॥

जो वेद वेदांग के तत्त्वों को जाने जो जप होम आदि करै, प्रतिदिन राजा की कल्याण-कामना करे, वही राज पुरोहित होने के योग्य है ।

क्रमागतो हितमतिः सर्वभावपरीक्षकः ।
धीरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ॥ ५५ ॥

वंश-परम्परा से जो आया हो, हित चाहने वाला हो लोगों के भाव परखने वाला हो, धीर हो, जैसा सुने वैसा कहने वाला हो ऐसे मनुष्य को दूत बनाना चाहिए ।

प्रवीणो वाक्पटुर्धीमान् स्वामिभक्तश्च नित्यशः ।
अलुब्धः सत्यवादी च एष शासन लेखकः ॥ ५६ ॥

प्रवीण, वक्ता, स्वामीभक्त, अलोभी और सत्यवादी, ऐसा मनुष्य राजा का शासन-लेखक (मीरमुंशी) होना चाहिए ।

इङ्गिताकारतत्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः ।
समयज्ञः स्वामिभक्तः प्रतीहारः स उच्यते ॥ ५७ ॥

इङ्गित और आकार समझने वाला, बलवान्, देखने में सुन्दर, समय जानने वाला और स्वामीभक्त मनुष्य प्रतोहार कहा जाता है ।

मेधावी वाक्पटुर्धीमांल्लघुहस्तो जितेन्द्रियः ।
शब्दशास्त्रपरिज्ञाता एष लेखक उच्यते ॥ ५८ ॥

मेधावी, वक्ता, बुद्धिमान् शीघ्र काम करने वाला जितेन्द्रिय और जो व्याकरण का ज्ञाता हो वह लेखक कहा जाता है ।

शूरोर्थशास्त्रनिपुणः कृतशास्त्र कर्मा
संग्रामकेलिचतुरश्चतुरंगयुक्तः ।
भर्तुर्निर्देशवशगोभिमतश्चतंत्रे,
सेनापतिर्नरपतेर्विजयागमाय ॥ ५९ ॥

वीर, अर्थशास्त्र का ज्ञाता, शस्त्र प्रयोग में चतुर, स्वामी की आज्ञा मानने वाला और राज्य में प्रतिष्ठा रखने वाला सेनापति राजा को विजयी बनाता है। अर्थात् सेनापति में उक्त गुण होने चाहिए।

काणाः कुब्जाश्च षंढाश्च तथा वृद्धाश्च पंगवः ।
एतेश्चांतःपुरे नित्यं नियोक्तव्याः क्षमाभृता ॥ ६० ॥

काना, कुबड़ा, नपुंसक बूढ़े और पंगु रनिवास में मुक़र्रर करने चाहिए, क्योंकि ये लोग क्षमाशील होते हैं।

सिद्धान्नमिव राजेंद्र सर्वसाधारणास्त्रियः ।
परोक्षे च समक्षे च रक्षितव्याः प्रयत्नतः ॥ ६१ ॥

पकाये हुए अन्न के समान स्त्रियाँ सब के उपयोग में आ सकती हैं। इस कारण परोक्ष या प्रत्यक्ष सर्वदा इनकी रक्षा करनी चाहिए।

सूक्ष्मेभ्योऽपिप्रसंगेभ्योरक्ष्यानार्योहि सर्वदा ।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ६२ ॥

छोटी छोटी बातों से भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि विना रक्षा किये पतिकुल और पितृकुल दोनों को दुःखी बना सकती हैं।

महिष्या हृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ६३ ॥

महारानी को सदा प्रसन्न रहना चाहिए, घर के कामों में प्रवीण होना चाहिए, अपने सब सामान स्वच्छ तथा सुन्दर रखने चाहिए, और हाथ खोल कर व्ययन करना चाहिए ।

धर्मशास्त्रार्थकुशलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।
समाः शत्रौ च मित्रे च नृपतेः स्युः सभासदः ॥ ६४ ॥

जो धर्मशास्त्र जानते हों, कुलीन हों सत्यवादी हों शत्रु और मित्र दोनों को एक दृष्टि से जो देखें, वे ही राजा के सभासद बनाये जांय ।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते येन वदंति धर्मं ।
नासौ धर्मो यत्र नैवास्ति सत्यं न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धं ॥ ६५ ॥

वह सभा नहीं है जहां अनुभवी वृद्ध न हों, वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्मानुकूल न बोलें । वह धर्म नहीं है जहां सत्य न हो, और वह सत्य सत्य नहीं हैं जो कपटहीन न हो ।

सभावा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं नासमंजसं ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरः किल्विपमश्नुते ॥ ६६ ॥

सभा में जाय ही नहीं, यदि जाय तो ठीक ठीक कहे, क्योंकि सभा में जाकर बिना बोले या उल्टा बोले मनुष्य पापभागी होता है ।

तस्मात्सभ्यः सभां गत्वा रागद्वेषविवर्जितः ।
वचस्तथा विधं ब्रूयाद्यथा न नरकं व्रजेत् ॥ ६७ ॥

इस कारण सभ्य मनुष्य सभा में जाय, रागद्वेष दूर करके वह वैसी बात कहे जिससे नरकभागी होना न पड़े ।

माता पिता गुरुर्भ्राता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
न दंड्यो नाम राज्ञोस्तिस्वधर्मे योनुतिष्ठति ॥ ६८ ॥

माता, पिता, गुरु, भाई, स्त्री, पुत्र और पुरोहित ये राजा के, जो अपने धर्म का पालन करते हैं, दण्डनीय नहीं हैं ।

अवध्यो ब्राह्मणो बालः स्त्री तपस्वी च रोगवान् ।
क्रियंते व्यंगताह्यर्थेषां ततो दोषैर्न लिप्यते ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण, बालक, स्त्री. तपस्वी और रोगी, इनसे कोई बड़ा भारी अपराध भी हो जाय तो भी राजा को चाहिए कि वह इनका वध न करे, केवल कोई अङ्ग काट ले इससे उसे पाप नहीं होता ।

न तु हन्यान्महीपालो दूतं कस्यां चिदापदि ।
दूतान्हत्वातु नरकमाविशेत्सचिवैः सह ॥ ७० ॥

बड़ी भारी आपत्ति की सम्भावना रहने पर भी राजा दूत को न मारे, दूत का वध करने से राजा अपने दीवानों के साथ नरकगामी होता है ।

विशोधयेन्महीपालो मंत्रिशालामशेषतः ।
अयुक्तोनार्हतिस्थातुमस्यां मंत्ररहस्यचित् ॥ ७१ ॥

विचार करने के समय राजा मन्त्रिशाला को खूब ढुढ़वाले, बिना सावधान हुए वह मन्त्रिशाला में न बैठे ।

मंत्र तंत्रांतर प्रीतिर्देशकालोचितस्थितिः ।
यश्चराज्ञिभवेद्भक्तः सोमान्यः पृथिवीपतेः ॥ ७२ ॥

जो मंत्र-तन्त्र में प्रेम रखता है, देशकाल के अनुसार रह सकता है, और जो राजा में प्रेम रखता हो, वह राजा का मान्य हो सकता है ।

अंतःसारैरकुटिलैः सुस्निग्धैः सुपरीक्षितैः ।
मन्त्रिभिर्धार्यंते राज्यं सुस्तंभैरिव मंदिरे ॥ ७३ ॥

भीतर से बलवान् सीधे स्नेही और खूब परीक्षित मन्त्रियों के द्वारा ही राज्य स्थिर रहता है जिस प्रकार खम्भों पर मकान ठहरा रहता है।

नरपतिहितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्तामुच्यते पार्थिवेन्द्रैः ।
इति महति विवादेवर्तमाने समाने-
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥ ७४ ॥

राजा का हित चाहने वाला मनुष्य प्रजा का शत्रु हो जाता है, प्रज़ा का हित चाहने वाला राजा का विरागभाजन हो जाता है राजा उसे निकाल देता है । इस प्रकार दोनों ओर के विकट विवाद में वैसा मनुष्य मिलना बड़ा कठिन है जो राजा और प्रजा दोनों का कल्याण करे ।

षट्कर्णो भिद्यतेमंत्रश्चतुःकर्णः स्थिरोभवेत् ।
द्विकर्णस्य तु मंत्रस्य ब्रह्माप्यंतं न गच्छति ॥ ७५ ॥

छ कानों में पहुचने पर मंत्र प्रकाशित हो जाता है, चार कानों में वह स्थिर रहता है, कोई तीसरा नहीं जानता, और जो मन्त्र दो ही कानों में रहे, उसका पता ब्रह्मा को भी नहीं लगता ।

एक हन्यान्न वाहन्यादिषुर्मुक्तोधनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतायुक्ता हंति राज्यं सनायकं ॥ ७६ ॥

धनुर्धारी का छोड़ा हुआ बाण एक मनुष्य को मार सकता है या न भी मार सकता है । पर बुद्धिमान् की बुद्धि

का यदि विनियोग किया जाय तो वह समूचे राज्य तथा राज्य के अधिपति का भी नाश कर देती हैं।

न तद्रथैर्न नागेंद्रै र्नहयैर्नच पत्तिभिः।
कार्यं संसिद्धिमभ्येति यथा बुध्या प्रसाधितं ॥ ७७ ॥

रथों हाथियों घोड़ों और सैनिकों से भी जो कार्य सिद्ध नहीं होता, वह बुद्धि के द्वारा सिद्ध हो जाता है।

दुर्योधनः समर्थोपि दुर्मंत्री प्रलयं गतः।
राज्यमेकश्चकारोच्चैः सुमंत्री चन्द्रगुप्तकः ॥ ७८ ॥

दुर्योधन समर्थ था, पर बुरे मन्त्री के कारण उसका नाश हो गया। एक चन्द्रगुप्त ने ही राज्य किया जिसका मन्त्री श्रेष्ठ था, योग्य था।

अशृण्वन्नपिबोद्धव्यं मंत्रिभिः पृथिवीपतिः।
यथा स्वदोषनाशाय विदुरेणांबिकासुतः ॥ ७९ ॥

राजा न सुने तो भी मन्त्रियों को राज्य की बातें उससे कहनी चाहिए। जिस प्रकार स्वयं दोषमुक्त होनेके लिए विदुर धृतराष्ट्र को समय समय पर समझा दिया करते थे।

पृष्टो ब्रूते मितं ब्रूते परिणामे सुखावहं।
मंत्री चेत्प्रियवक्तास्यात्केवलं स रिपुः स्मृतः ॥ ८० ॥

पूछने पर बोले, थोड़ा बोले और वैसा बोले जो परिणाम में सुखकारी हो। जो मन्त्री केवल प्रियवक्ता हो वह शत्रु है, वह राजा और राज्य का नाश कर देता है।

सुलभाः पुरुषान् राजन्सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ताश्रोता च दुर्लभः ॥ ८१॥

महाराज प्रिय बोलने वाले मनुष्यों का धारा नहीं है पर अप्रिय किन्तु हितकारी ब त क। बोलने और सुनने वाला दोनों ही दुर्लभ हैं ।

दुर्गाणि राज्ञ कार्याणि सजलानि दृढ़ानिच ।
द्रव्यमन्नं च तेष्वेव स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ८२ ॥

राजा को सजल और मज़बूत किला बनवाना चाहिए, और धन अन्न उसी में यत्न पूवक रखना चाहिए ।

दुर्गं बहुविधं ज्ञेयं पर्वतस्य जलस्य च ।
प्राकारस्य वनस्यापिभूमेरपि भवेत्कचित् ॥ ८३ ॥

किला अनेक प्रकार का होता है, पर्वत का किला, जल का किला, चार दीवारी का किला, वन का किला और कहीं कहीं पर जमीन का भी किला होता है ।

न गजानां महस्रेण न रथैनैंव वाजिनां ।
तथा सिध्यंति कार्याणि यथा दुर्गं प्रभावतः ॥ ८४ ॥

हजारों हाथियों रथों और घोड़ों से जो कार्य नहीं होता, वह काम किले से हो जाता है ।

विषहीनो यथा नागो मदहीनो यथा गजः ।
सर्वेषां पश्यतां याति दुर्गहीनश्च भूपतिः ॥ ८५ ॥

बिषहीन सांप, मदहीन हाथी जिस प्रकार सबके देखते देखते ही अपमानित हो जाते हैं, उसी प्रकार दुर्गहीन राजा भी ।

शतमेकोहि संधत्ते दुर्गस्थोहि धनुर्द्धरः ।
तस्माद्दुर्गं प्रशंसंति नीतिशास्त्रविदोजनाः ॥ ८६ ॥

किले में रहकर एक धनुर्धारी भी सौ वीरों से युद्ध कर सकता है, इसी कारण नीतिशास्त्र जाननेवाले दुर्ग की प्रशंसा करते हैं।

एकः शतंयोधयते प्राकारस्थोधनुर्धरः।
शतं सहस्राणि तथा सहस्रं लक्षमेव च॥ ८७॥

किले के चार दीवारी पर से एक धनुर्धारी सौ आदमियों को लड़ा सकता है. सौ मनुष्य हज़ार को और हजार लाख को लड़ा सकते हैं।

त्रिविधाः पुरुषा राजनुत्तमाधममध्यमाः।
नियोजयेत्तथैवैतांस्त्रिविधेष्वपि कर्मसु॥ ८८॥

उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं, इनको उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार के कार्यों में लगावे।

तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनं।
अर्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात्स हन्यते॥ ८९॥

जो धन और पराक्रम में बराबर हो, रहस्य जानता हो, उद्योगी हो और आधे का हिस्सेदार हो, ऐसे को जो नहीं मरवा डालता, वह खुद मारा जाता है।

निर्विशेषं यदा राजा समं भृत्येषु तिष्ठति।
तत्रोद्यमः समर्थानामुत्साहः परिहीयते॥ ९०॥

जो राजा अपने सब भृत्यों को समान देखता है, उसके उद्योगी भृत्यों का उत्साह कम हो जाता है।

प्रसादो निष्फलो यस्य यस्य क्रोधो निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छंति पतिं वृद्धमिवांगनाः॥ ९१॥

जिसकी प्रसन्नता निष्फल हो, जिसका क्रोध निरर्थक हो, वैसे स्वामी को लोग नहीं चाहते, जैसे स्त्रियाँ वृद्ध को पति बनाना नहीं चाहतीं।

त्यजेत्स्वामिनमत्युग्र मत्युग्रात्कृपणं त्यजेत् ।
कृपणादविशेषज्ञं तस्माच्च कृतनाशकं ॥९२॥

जो स्वामी बड़ा क्रोधी हो उसका त्याग कर दे, उसकी अपेक्षा भी जो कृपण हो उसका त्याग करे, कृपण की अपेक्षा जो भृत्यों के कार्यों का अन्तर न समझे उसका त्याग करे, उसकी अपेक्षा भी उसका त्याग करे जो भृत्य के कार्यों को भूल जाय।

अविवेकिनि भूपाले नश्यति गुणिनां गुणाः ।
प्रवासरसिके कांते यथा साध्व्यास्तनोन्नतिः ॥९३॥

जहाँ का राजा अविवेकी रहता है वहां गुणियों के गुण नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार प्रवासी पति की स्त्री के स्तनों का बढ़ना रुक जाता है।

किंशुके किं शुकः कुर्यात्फलितेपि बुभुक्षितं ।
अदातरि समृद्धेपि किं कुर्युरुपजीविनः ॥९४॥

शुक भूखा होने पर भी फलित पलाश वृक्ष पर क्या लाभ उठा सकता है? इसी प्रकार मालिक धनी भी हो पर कृपण हो तो भृत्यों को क्या लाभ हो सकता है।

सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्ययत्कृतं ।
स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितं ॥९५॥

सेवा के द्वारा धन चाहने वाले सेवकों ने क्या किया है? उसे देखो। मूर्खों ने अपने शरीर की स्वतन्त्रता भी बेंच दी।

वरं वनं फलं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवनं ।
पुंसां विवेकहीनानां सेवया न धनार्जनम् ॥ ९६ ॥

बन का वास अच्छा, फल भोजन भी अच्छा, भार ढोकर जीना भी अच्छा, अथवा जीवन को भार होना भी अच्छा, पर विवेकहीन पुरुषों को सेवा द्वारा धनार्जन अच्छा नहीं।

जीवंतोपि मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्तिताः ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ॥ ९७ ॥

व्यासदेव ने इन पाँच मनुष्यों को जीते हुए भी मृत बतलाया है, दरिद्र, रोगी, मूर्ख, प्रवासी और सेवक।

न कश्चिच्चंड कोपानामात्मोयोनामभूभृतां ।
होतारमपिजुव्हंतन्दहत्येव हुताशनः ॥ ९८ ॥

क्रोधी राजाओं का कोई भी अपना नहीं होता। हवन करनेवाले होता को भी अग्नि जलाता ही है। इसी प्रकार क्रोधी राजा भी अपने सेवक को जला सकता है।

गृध्राकारोपि सेव्यः स्याद्धंसाकारैः सभासदैः ।
हंसाकारोपि संत्याज्यो गृध्राकारैः सभासदैः ॥ ९९ ॥

राजा चाहे गीध के आकार का हो और सभासद हंस के आकार के हों, फिर भी वे राजा की सेवा करें ही गे। हंस के आकार का भी मनुष्य यदि निर्धन है तो गीध के आकार वाला भी उसका त्याग कर देगा।

चक्रं सेव्यं नृपः सेव्यो न सेव्यः केवलो नृपः ।
पश्य चक्रस्य माहात्म्यं मृत्पिंडः पात्रतांगतः ॥ १०० ॥

राजा के चक्र (नौकर चाकर आदि) की सेवा करनी चाहिये, केवल राजा की नहीं । चक्र का बड़ा महत्व है, देखो चक्र के कारण मृत्पिण्ड पात्र बन गया ।

गंतव्या राज्यसभा द्रष्टव्या राजपूजिता लोकाः ।
यद्यपि न भवंत्यर्थास्तथाप्यनर्था विनश्यंति ॥ १०१ ॥

राजसभा में जाना चाहिए, राजसम्मानित मनुष्यों को देखना चाहिए। यद्यपि इनसे कोई फल नहीं होता है, पर विपत्ति का नाश अवश्य होता है ।

अत्यासन्न विनाशाय दूरतश्चाफलप्रदाः ।
मध्यभावेन सेव्यंते राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः ॥ १०२ ॥

बहुत पास जाने से नाश हो जाता है, दूर रहने से कोई फल नहीं होता । इस कारण राजा, अग्नि, गुरू और स्त्री की सेवा मध्य भाव से करनी चाहिए ।

आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं
विद्याविहीनमकुलीनमसंगतं वा ।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च
यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयंति ॥ १०३ ॥

राजा पास वाले मनुष्य पर ही प्रसन्न रहता है, वह चाहे मूर्ख हो, अकुलीन हो या अयोग्य हो । प्रायः राजा, स्त्रियां और लताएं उसी का आलिंगन करती हैं जो उनके पास रहता है ।

यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः ।
कुलीनो वाकुलीनोवा स श्रियो भाजनं भवेत् ॥ १०४ ॥

राजा जिसकी ही ओर अधिक ध्यान दे, वह कुलीन हो या अकुलीन वह लक्ष्मी का भाजन हो जाता है ।

धवलान्यातपात्राणि वाजिनश्च मनोरमाः ।
सदा मत्ताश्च मातंगाः प्रसन्ने सति भूपतौ ॥ १०५ ॥

राजा जब प्रसन्न हो जाता है तब श्वेत छत्र, सुन्दर घोड़े, और मतवाले हाथी मिलते हैं ।

राजमातरि देव्यां च कुमारो मुख्य मन्त्रिणि ।
पुरोहिते प्रतीहारे समं वर्तेत राजवत् ॥ १०६ ॥

राजमाता, महारानी, राजकुमार, प्रधान मंत्री, पुरोहित और प्रतीहार इनका राजा के समान आदर करे ।

यत्राहवेषु बध्यंते सामर्थ्यमपराङ्मुखाः ।
विकटैरायुधैर्यांति ते स्वर्गः योगिनो यथा ॥ १०७ ॥

जो युद्ध में बिना पीठ दिखाये भयानक अस्त्रों के द्वारा मारा जाता है वह स्वर्ग जाता है, जिस प्रकार योगी लोग स्वर्ग जाते हैं ।

पदानि क्रतु तुल्यानि आहवेष्वनिवर्त्तिनां ।
राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनां ॥ १०८ ॥

जा लाग युद्ध में नहीं मुड़ते, आगे बढ़ते जाते हैं, उनका एक एक पैर बढ़ना यज्ञ के समान है । जो युद्ध से भाग आते हैं, उनका पुन्य राजा ले लेता है ।

तवाहंवादिनं क्लीबं निर्हेतिं परमां गतिं ।
न हन्याद्विनिवृत्तं च युद्ध प्रेक्षणमागतं ॥ १०९ ॥

इतने प्रकार के मनुष्यों को युद्ध में न मारना चाहिए, जो कहे कि मैं आपकी शरण हूं, जो नपुंसक हो, जो अस्त्रहीन हो, जो युद्ध से लौटा जाता हो और जो युद्ध देखने आया हो ।

द्विजा अपि न गच्छंति यां गतिं नापि योगिनः ।
स्वाम्यर्थे संत्यजन्प्राणांस्तां गतिं याति सेवकः ॥ ११० ॥

ब्राह्मणों को भी जो गति नहीं मिलती, योगियों को भी जो गति नहीं मिलती, सेवक स्वामी के लिए प्राण त्याग कर के उस गति को पाता है।

राजा तुष्टोपि भृत्यानां मानमात्रं प्रयच्छति ।
तेपि संमान मात्रेण प्राणैः प्रत्युपकुर्वते ॥ १११ ॥

राजा प्रसन्न होकर अपने भृत्यों को केवल सम्मानित करता है, और वे भी सम्मानित होने के कारण प्राणों से उस उपकार का प्रत्युपकार करते हैं।

सारासारपरिच्छेत्ता स्वामी भृत्यस्य दुर्लभः ।
अनुकूलः शुचिर्दक्षः प्रभोर्भृत्योहि दुर्लभः ॥ ११२ ॥

यथार्थ और अयथार्थ का ज्ञान रखने वाला स्वामी भृत्य को दुर्लभ है और अनुकूल शुद्ध तथा दक्ष भृत्य भी स्वामी को दुर्लभ है।

पान भक्षास्तथा नार्यो मृगया गीत वादिने ।
एतानि युक्त्या सेवेत प्रसंगो यत्र दोषवान् ॥ ११३ ॥

शराब, भोजन, स्त्रियां, आखेट, गाना बजाना इनका नियमित उपयोग करे, क्योंकि इनमें आसक्ति से हानि होती है।

अतितेजस्वपिनृपः पानासक्तो न साधयत्यर्थान् ।
तृणमपि दग्धुमशक्तो वडवाग्निः स पिबन्नब्धिं ॥ ११४ ॥

शराबी राजा चाहे बड़ा तेजस्वी हो, पर वह कोई काम सिद्ध नहीं कर सकता। बड़वाग्नि एक तिनके को भी नहीं ज़ला सकता। क्योंकि वह समुद्र पान करता है।

नृपः कामासक्तो गणयति न कार्यं न च हितं-
यथेष्टं स्वच्छंदश्चहति किल मत्तोगज इव ।
ततो मानाध्मातः पतति स यदा शोक गहने
तदामात्ये दोषान्क्षिपति न निजं वेत्य विनयं ॥ ११५ ॥

कामी राजा कोई कार्य नहीं कर सकता, और वह हिता-हित भी नहीं समझता, मतवाले हाथी के समान जो चाहता है, वही करता है । अभिमान में फूलकर जब वह बड़ी विपत्ति में फँसता है, तब सारा दोष मन्त्री को दे देता है, पर अपनी बुराइयों को नहीं समझता ।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वतः कार्यजातं
परिणतिहवधाया यत्नतः पंडितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणा मा विपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्य तुल्यो विपाकः ॥ ११६ ॥

अच्छा या बुरा कोई भी कार्य करने के पहले उसके फल का निश्चय कर लेना चाहिए, जल्दी में किये हुए काम विपत्ति के लिए होते हैं, उनसे सदा कष्ट उठाना पड़ता है ।

आयाच्चतुर्थ भागेन व्ययं कर्म प्रवर्तयेत् ।
प्रभूत तैलदीपोहि चिरं भद्राणि पश्यति ॥ ११७ ॥

अपने चौथे हिस्से का व्यय करना चाहिए, जिस दीपक में अधिक तेल रहता है वह बहुत देर तक जलता है ।

अर्थानामर्जनं कार्यं वर्धनं रक्षणं तथा ।
भक्ष्यमाणो निरादाया सुमेरुरपि हीयते ॥ ११८ ॥

अर्थका अर्जन करना चाहिए, आय के विना केवल खर्च करने से सुमेरुका भी नाश हो सकता है, वह भी खतम हो सकता है ।

कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषां च चतुर्विधं ।
प्रसादयति लोकं यस्तं लोकोनुप्रसीदति ॥ ११९ ॥

कर्म मन बचन और चक्षु इन चारों के द्वारा जो लोक को प्रसन्न कर सकता है उसी पर यह लोक प्रसन्न होता है ।

संभोजनं संकथनं संप्रश्नोथसमागमः ।
ज्ञातिभिः सहकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ १२० ॥

जाति वालों के साथ भोजन, वार्तालाप, कुशल प्रश्न, आना जाना करना चाहिए, विरोध कभी नहीं करना चाहिए ।

संहतिः श्रेयसी राजन्विगुणेष्वपिबंधुषु ।
तुषेनापि परित्यक्ता न पुरोहंति तंडुलाः ॥ १२१ ॥

बंधु गुणहीन भी हों पर उनकी संहति अच्छी होती है, चावल जब भूसों को छाड़ देता है तब उसकी आंकुर उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो जाती है ।

मृदोः परिभवोनित्यं वैरं तीक्ष्णस्यनित्यशः ।
उत्सृज्य तद्द्वय तस्मान्मध्यां वृत्तिं समाश्रयेत् ॥ १२२ ॥

कोमल प्रकृति वाले मनुष्य का पराजय होता है, तीखी प्रकृति वाले का लोगों से विरोध हो जाता है । इस कारण इन दोनों का त्याग करके मध्यम वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिए ।

अबुद्धिमाश्रितानां च क्षंतव्यमपराधिनां ।
नहि सर्वत्र पांडित्यं सुलभं पुरुषे क्वचित् ॥ १२३ ॥

मूर्ख मनुष्य के अपराधों को क्षमा कर देना चाहिये, क्योंकि सब मनुष्यों में पाण्डित्य होना सम्भव नहीं है ।

तेजस्वि निक्षमोपेते नातिकर्कशमाचरेत् ।
अति निर्मंथनादग्निश्च ंदनादपि जायते ॥ १२४ ॥

क्षमाशील तेजस्वी मनुष्य के प्रति कठोर व्यवहार नहीं करना चाहिए, क्योंकि अधिक रगड़ने से चन्दन से भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है।

किमप्यसाध्यं महतां सिद्धिमेतिलघीयसां ।
प्रदीपो भूमिगेहांतर्ध्वान्तहंति न भानुमान् ॥ १२५ ॥

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो बड़ों से सिद्ध नहीं होते, किन्तु वे छोटों के द्वारा ही सिद्ध होते हैं। घर के भीतर का अन्धकार दीपक हटाता है, सूर्य नहीं, ।

अटावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुमप्यागतेच्छायां नोपसंहरतेद्रुमः ॥ १२६ ॥

घर आये हुए शत्रु का भी उचित अतिथि-सत्कार करना चाहिए। पेड़ उसको भी छाया देते हैं जो उन्हें काटने आता है।

हंतुमेंपोपसरतिमृगेंद्रः संकुचत्यपि ।
बुद्धिमंतः सहंते च निधाय हृदि किंचन ॥ १२७ ॥

मारने वालों को देखकर भेड़ा भाग जाता है, और सिंह सकुचा जाता है, बुद्धिमान् मनुष्य मन में कुछ विचार कर विपत्ति का सामना करते हैं।

व्रजंति ते मूढधियः पराभवं भवंतिमाया विषये न मायिना ।
प्रविश्यहिघ्नंति शठास्तथा विधा न संवृतांगा निशिता इवेषवः ॥ १२८॥

वे मूर्ख मनुष्य पराजित होते हैं जो मायावियों के प्रति मायावी नहीं होते। वैसे मनुष्यों के भीतर घुसकर शठ उनका

बध करते हैं, जैसे, नङ्गे बदन वाले मनुष्य का बध तीखे बाण करते हैं।

कोहं कौ देशकालौ समविषम गुणा केरयः के सहायाः
का शक्तिः कोभ्युपायः फलमिहचकियत्कीदृशीदैवसंपत् ।
संपत्तौ को निबधः प्रविदित वचनस्योत्तरं किंनुमेस्या-
दित्येवं कार्यसिद्धावबहितमनसोहस्तगाः संपदः स्युः ॥१२९॥

मैं कौन हूँ, कैसा देश काल है, अच्छे बुरे गुण वाले कितने शत्रु हैं और कितने सहायक हैं, मेरी शक्ति क्या है, उपाय क्या है, इसका फल क्या है, भाग्य अनुकूल है कि नहीं, सम्पत्ति में रुकावट क्या है, मेरा रह य प्रकट होने पर मैं क्या उत्तर दूँगा, इस प्रकार कार्य-साधन में जो सावधान रहते हैं सम्पत्ति उनके हाथ में रहती है ।

स्वधर्मे राघवश्चैव ह्यधर्मे दशकंठकः ।
एवं वदंति लोकाश्च यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १३० ॥

स्वधर्म में रामचन्द्र थे और अधर्म में रावण । लोग कहते हैं कि जिधर धर्म रहता है उधर विजय रहती है । रामचन्द्र विजयी हुए, और रावण पराजित ।

धर्मः प्रागेवचिंत्यः सचिवगतमतिः सर्वदा लोकनीयो
प्रच्छाद्यौरोषरोगौ मृदु कठिन रसौ योजनीयौ च काले ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं वरचयनचरैर्मंडलं वीक्ष्यणीय-
मात्मायत्नेनरक्ष्योरण शिरसिपुनः सोपिनापेक्षणीयः ॥१३१॥

धर्म का विचार पहिले करना चाहिए, मन्त्री को अपना मत बतला कर सब राज्यकार्य सदा देखना चाहिए, क्रोध और रोग छिपाना चाहिए, समय पर कोमल या कठिन रस की योजना करनी चाहिए। प्रजासंबन्धी बातों को विश्वसनीय

चरों के द्वारा जानना चाहिए, अपने राज्य का निरीक्षण करना चाहिए, यत्न पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए, पर रण में उसकी भी उपेक्षा कर देनी चाहिए, ।

क्रतौ विवाहे व्यसने रिपुक्षये
यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे ।
प्रिया सुनारीष्वधनेषु बंधुषु
धनव्ययस्तेषु न गण्यते बुधैः ॥ १३२ ॥

यज्ञ, विवाह, दुःख, शत्रुनाश, यश बढ़ाने वाले कार्य, मित्रों का संग्रह, प्रिय स्त्री, गरीब बन्धु इनके लिए धन का खर्च होना बुद्धिमान् नहीं गिनते ।

स्वाम्यमात्यश्च राज्यं च कोशो दुर्गं बलं सुहृत् ।
एतावदुच्यते राज्यं सत्व बुद्धिव्यपाश्रयं ॥ १३३ ॥

राजा मन्त्री, राज्य, खज़ाना, क़िला, सेना और मित्र ये ही राज्य कहे जाते हैं । यह राज्य पराक्रम और बुद्धि पर स्थित है ।

संधि विग्रह यानानि संस्थितिः संश्रयस्तथा ।
द्वैधीभावश्चभूपानां षड्गुणाः परिकीर्तिताः ॥ १३४ ॥

संधि, विग्रह, आक्रमण, घेरा, शरणागत, भेद ये राजाओं के छः गुण कहे जाते हैं ।

उत्साहस्य प्रभोर्मंत्रस्यैवं शक्तित्रयं जगुः ।
आत्मनः सुहृदश्चैवतन्मित्रस्योदयास्त्रयः ॥ १३५ ॥

राजा की तीन शक्तियाँ होती हैं, उत्साह शक्ति, प्रभु शक्ति और मन्त्र शक्ति । उसका उदय भी तीन प्रकार का होता है, अपना उदय, मित्र का उदय और मित्र के मित्र का उदय ।

सामं दानं भेद दंडा वित्युपाय चतुष्टयं।
हस्त्यश्वरथपादाताः सेनांगस्याच्चतुष्टयं ॥ १३६ ॥

साम, दान, दण्ड और भेद ये चार राजा के उपाय हैं। हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल ये चार सेना के अंग है।

दुष्टाविनीत शत्रूणां भयकृद्बंधुसन्निभं।
शस्त्रधारणमौज्यस्यं रक्षो विद्यु द्ग्रहापहं ॥ १३७ ॥

शस्त्र धारण करना दुष्ट और अविनयी शत्रु को भयभीत करता है, वह एक मित्र के समान है, बल का द्योतक है तथा राक्षस, विद्युत् और ग्रह के दोषों को दूर करनेवाला है।

वर्षानिलरजोघर्म हिमादिनां निवारणम्।
राज्यलक्ष्मी गृहं वर्ण्यं चक्षुष्यं छत्र धारणं ॥ १३८ ॥

छत्र धारण करना वर्षा, हवा, धूल, धूप, शीत आदि से रक्षा करता है. राजा की लक्ष्मी का वह आश्रय है, वर्ण बढ़ाने वाला और नेत्रों का तेज बढ़ाने वाला है।

चामरं श्रीकरं दिव्यं राज्यशोभाकरं परं।
सिंहासनं सुखैश्वर्य करं लोकानुरंजनं ॥ १३९ ॥

चामर धारण करने से शोभा होती है, उससे राज्य की भी शोभा होती है, वह दिव्य है। सिंहासन से सुख और ऐश्वर्य बढ़ता है और लोग प्रसन्न होते हैं।

सुमनो वर रत्नानां धारणं दिव्य रूपकृत्।
पापलक्ष्मीप्रशमनंचंदनाद्यनुलेपनं ॥ १४० ॥

फूलों की माला और रत्नों की माला धारण करने से दिव्यरूप हो जाता है। चन्दन आदि के अनुलेपन से पाप दूर होता है, शोभा बढ़ती है।

स्नानं नाम मनः प्रसाद जननं दुःस्वप्न विध्वंसने-
शौचस्यायतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसां।
रूपोद्योतकरं रिपुप्रमथनं कायाग्नि संदीपनं-
नारीणां च मनोहरं श्रमहरं स्नाने दशैतेगुणाः ॥ १४१ ॥

स्नान करने से मन प्रसन्न होता है, बुरे स्वप्न नहीं आते वह शुद्धि का स्थान है, मल स्वच्छ करता है, तेज बढ़ाता है, रूप बढ़ाता है, शत्रुओं को नष्ट करने वाला है, शरीर की अग्नि को दीप्त करने वाला है, स्त्रियों के लिए मनोहर है थकावट दूर करने वाला है। स्नान में ये दश गुण हैं।

तांबूलं मुखरोगनाशिनिपुणं संवर्धनं तेजसो
नित्यंजाठरवह्निवृद्धिजननं दुर्गंध दोषापहं।
वक्त्रालंकरणं प्रहर्षजननं विद्वन्नृपाग्रेरणे
कामस्यायतनं समुद्भवकरं लक्ष्म्या सुखस्यास्पदं ॥ १४२ ॥

ताम्बूल (पान) मुंह के रोगों को नष्ट करता है, तेज बढाता है, जठराग्नि को वढ़ाता है और दुर्गन्ध नष्ट करता है मुँह की शोभा बढ़ाता है, मन प्रसन्न करता है, काम वर्द्धक है, लक्ष्मी बढ़ाता है, और सुखी करता है।

देवता तिथि विप्राणां पूजनं पापनाशनं।
लोकद्वयेपि शुभकृद्दानं धर्म यशस्करं ॥ १४३ ॥

देवता अतिथि और ब्राह्मण की पूजा से पाप नष्ट होता हैं, दान से धर्म होता है यश बढ़ता है और इससे दोनों लोकों में कल्याण होता है।

सुत भृत्य सुहृद्वैरिस्वामि सद्गुरुदैवते।
एकैकोत्तरतो वृद्धया श्रीकराः पतसूर्धिनि ॥ १४४ ॥

पुत्र भृत्य मित्र शत्रु स्वामी गुरु और देवता इनको पत्र लिखे तो एक एक श्री बढ़ावे । अर्थात् पुत्र को एक श्री, भृत्य को दो, मित्र को तीन, शत्रु को चार, स्वामी को पाँच गुरू को छः और देवता को सात ।

राजानं प्रथमं विंदेत्ततो भार्यां ततोधनं ।
राजन्यसतिलोकेस्मिन् कुतो भार्या कुतो धनं ॥ १४५ ॥

पहले राजा को प्राप्त करे तब स्त्री और पुनः धन राजा के बिना स्त्री कहां मिलेगी और धन कहाँ मिलेगा ।

यः कुलाऽभिजनाऽऽचारैरतिशुद्धः प्रतापवान् ।
धार्मिको नीतिकुशलः स स्वामी युज्यते भुवि ॥ १४६ ॥

जो कुलीन आचारवान् शुद्ध प्रतापी, धार्मिक और नीति निपुण हो, वही संसार में स्वामी हो सकता है ।

कथं नाम न सेव्यंते यत्नतः परमेश्वराः ।
अचिरेणैव ये तुष्टाः पूरयन्ति मनोरथान् ॥ १४७ ॥

परमेश्वरों (धनियों) की क्यों न सेवा की जाय, जो शीघ्र ही प्रसन्न होकर मनोरथ पूर्ण करते हैं ।

सुहृदामुपकार कारणात् द्विषतामप्यपकार कारणात् ।
नृप संश्रय इष्यतेबुधैर्जठरं को न बिभर्ति केवलं ॥ १४८ ॥

मित्रों के उपकार करने के लिए और शत्रुओं के अपकार करने के लिए विद्वान् राजाश्रय चाहते है । केवल पेट तो कोई भी पाल लेता है ।

बालोऽपिनाऽवमंतव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवताह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ १४९ ॥

बालक राजा को भी मनुष्य समझ कर तिरस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह मनुष्य शरीरधारी एक बड़ा देवता है।

यस्य प्रसादे पद्माऽस्ते विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयोहि सः॥ १५०॥

जिसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी रहती हैं, पराक्रम में विजय, और क्रोध में मृत्यु, वह राजा सर्वतेजोमय है।

यस्मिन्नेवाऽधिकं चक्षुरारोहयति पार्थिवः।
सुतेऽमात्येप्युदासीने सलक्ष्म्याऽऽश्रीयते जनः॥ १५१॥

राजा जिसकी ओर प्रेम से देखें, वह पुत्र हो, मन्त्री हो या उदासीन हो, वही लक्ष्मी का भाजन होता है।

राजान् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां-
तेनाऽद्यवत्समिव लोकममुं पुषाण।
तस्मिंश्चसम्यगनिशं परितुष्यमाणे
नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः॥ १५२॥

राजन् यदि तुम इस पृथिवी रूपी गौ को दूहना चाहते हो तो बछड़े के समान अपनी प्रजा को पुष्ट करो, उसके अच्छी तरह पुष्ट हो जाने पर यह भूमि कल्पलता के समान अनेक फल देगी।

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपिचाऽर्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुर नित्यधनाऽऽगमा च
वेश्यांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा॥ १५३॥

राजा की नीति वेश्या के समान अनेक रूप की होती है। कहीं सत्य, कहीं झूठी, कहीं कठोर, कहीं प्रियवादिनी, कहीं

हिंसक कहीं दयालु, कहीं लोभी, कहीं दानी, और कहीं खूब खर्चने वाली और कहीं खूब धन बटोरने वाली ।

राजंस्त्वद्दर्शनेनैव गलंति त्रीणितत्क्षणात् ।
रिपोः शस्त्रं कवेर्दैन्यं नीवीबंधोमृगीदृशां ॥ १५४ ॥

राजन् आपके दर्शनमात्र से ही तीन चीजें गिर जाती हैं, शत्रु का शस्त्र, कवि की दीनता, और स्त्रियों का वस्त्र, अर्थात् आप वीर, दाता और सुन्दर हैं ।

आज्ञा कीर्त्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्र-संरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवापाश्रयेण ॥ १५५ ॥

जिसका हुक्म न चला, कीर्ति न हुई, जिसने ब्राह्मणों का पालन न किया, दान न दिया, भोग न किया, मित्रों की रक्षा न की, ये छः गुण जिसके न हुए, उसको राजा का आश्रित होने का क्या लाभ हुआ ।

बहुधा राज्यलाभेन यस्तोपस्तव भूपते ।
बहुधाराऽज्य लाभेन यस्तोपो मम भूपते ॥ १५६ ॥

राजन् अनेक राज्यों के लाभ से जो प्रसन्नता आपको हुई वही प्रसन्नता मोटी धार से घी मिलने के कारण मुझे हुई ।

राजसेवा मनुष्याणामसिधाराऽवलेहनं ।
पंचाननपरिष्वंगो व्यालीवदनचुंबनं ॥ १५७ ॥

राजा की सेवा मनुष्यों के लिए तलवार की धार चाटना है, सिंह का आलिंगन करना है, और सर्पिणी का चुम्बन करना है ।

इच्छेद्यस्तु सुखं निवस्तु भवनौगच्छेत् स राज्ञःसभां
कल्याणीं गिरमेव शंसदिवदेत्कार्यं विदध्यात्कृती ।

अक्लेशात्धनमर्जयेदधिपतेरावर्जयेद्वल्लभान्-
कुर्वीतोपकृतिं जनस्य जनयेत्कस्यापिनाऽपक्रियां ॥ १५८ ॥

जो सुखपूर्वक राजसभा में रहना चाहे, उसे राज सभा जाना चाहिए, उस विद्वान् को सभा में उत्तम बचन बोलने चाहिए, और अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए, बिना परिश्रम के मालिक से धन कमाय, मित्रों को प्रसन्न करे, लोगों का उपकार करे, पर अपकार किसी का न करे।

अयुक्तं युक्तं वा यदि भिहितमज्ञेन विभुना-
स्तुयादेतन्नित्यं जडमपि गुरुं तस्य विनयात्।
विवत्सुर्नैस्पृह्यं कथमपि सभायामभिनये-
त्स्वकार्यं संतुष्टे क्षितिभृतिरहस्येव कथयेत् ॥ १५९ ॥

मूर्ख स्वामी योग्य अयोग्य जो कुछ कहे उसकी स्तुति करे, उसके मूर्ख गुरु की भी प्रशंसा करे, सभा में अपनी निस्पृहता का अभिनय करे, इस प्रकार जब राजा प्रसन्न हो जाय, तो एकान्त में अपना अभिप्राय कह सुनावे।

सिद्धयन्ति कर्म सुमहत्स्वपि यन्नियोज्याः-
संभावना गुणमवेहितमीश्वराणां।
किं प्राभविष्यदरुणस्ततसांवधाय-
तंचेत्सहस्र किरणोधुरिनाऽकरिष्यत् ॥ १६० ॥

भृत्य जो बड़े बड़े कामों को भी कर देते हैं वह प्रभु की ही महिमा है, वह प्रभु के आदर का ही फल है। अरुण क्या अन्धकार को दूर कर सकता था यदि सूर्य उसको अपने आगे न करते।

अचिराऽधिष्ठित राज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढ़ मूलत्वात्।
नवसंरोपण शिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुं ॥ १६१ ॥

जिस शत्रु ने शीघ्रही राज्य पाया है, प्रजा पर उसका दब दबा अभी नहीं बैठा है वह थोड़े ही परिश्रम से उखाड़ा जा सकता है। क्योंकि वह शीघ्र रोपा गया है इसलिए जड़ जमी नहीं है।

सप्रतिबंधं कार्यं प्रभुरधिगंतु सहायवानेव।
दृश्यन्त्यपि न पश्यति दीपेन विना स चक्षुरपि ॥ १६२ ॥

जिस कार्य में विघ्न है वैसे कार्यों की सिद्धि बिना सहायक के नहीं होती। आंख वाला भी मनुष्य अन्धकार में विना दीपक की सहायता के नहीं देख सकता।

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्धं धनैरीश्वरं-
कार्येण द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णाशनैर्बांधवान्।
अत्युग्रंस्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं-
विद्याभिर्रसिकंरसेन सकलं शीलेन कुर्याद्वशं ॥ १६३ ॥

शुद्धता से मित्र को, नीति से शत्रु को, लोभी को धन से, प्रभु को कार्य से, ब्राह्मण के आदर से, युवती को प्रेम से, भोजन से बन्धुओं को, स्तुति से गुरु को, खुशामद से मूर्ख को, विद्या से विद्वान् को, रस से रसिक को और शील से सब को वश करे।